ISSN 2277-5587
Impact Factor 5.465
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

शोध श्री

Issue - 1 January-March 2022 RNI No. RAJHIN/2011/40531

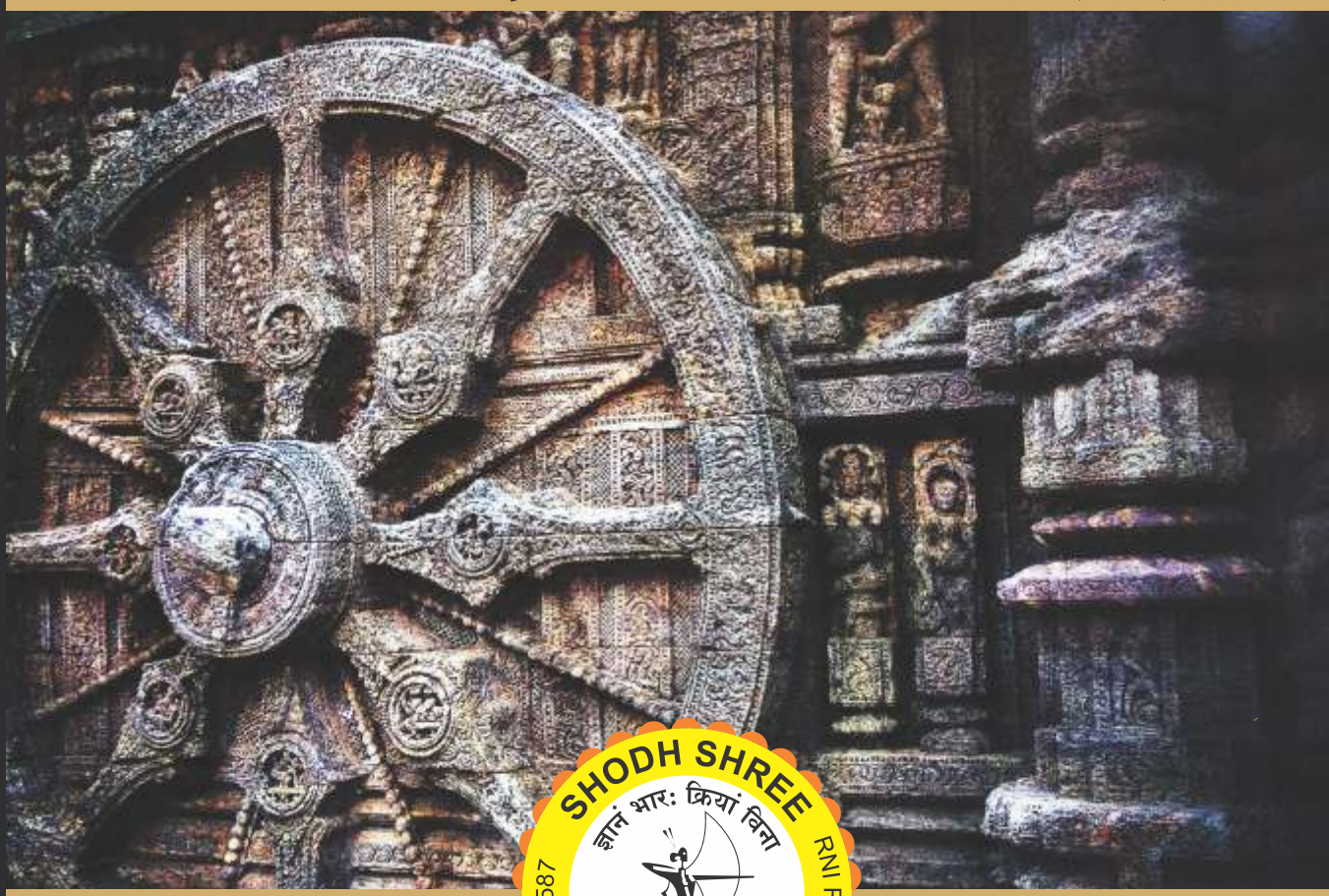

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

CHIEF EDITOR
Dr. Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

Shodh Shree
Issue - 1
Volume-42
January-March 2022

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Dr. Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof. H.S. Sharma (Retd.)
University of Rajasthan, **Jaipur**

Prof. T.K. Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma (Retd.)
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P. Saraswat (Retd.)
Dean of Commerce, M.D.S, University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Manorama Upadhayay
Principal, Mahila P.G. Mahavidyalaya, **Jodhpur**

Dr. Veenu Pant
Associate Professor & Head, Department of History, Sikkim University, Gangtok **(Sikkim)**

Dr. Rajesh Kumar
Director (Journal, Publicaiton & Library), I.C.H.R., **New Delhi**

Dr. Pankaj Gupta
Assistant Professor, Department of College Education, **Jaipur**

Dr. Rajendra Singh
Archivist, Rajasthan State Archives, **Jodhpur Division**

Dr. Ram Chandra
Assistant Professor, (STRIDE),Indira Gandhi National Open University, **New Delhi**

Advisory Board

Prof. S.N. Tailor (Retd.)
S.D. Government P.G. College, **Beawar**

Prof. S.P. Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Dr. Kate Boehme
University of Leicester, **United Kingdom**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.), National Archives of India, **New Delhi**

ISSN 2277-5587
Impact Factor 5.465
Indexed in ULRICH, ISIFI, SJIF & DOJI
UGC Valid Journal (The Gazette of India,
Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

शोध श्री

Volume-42 Issue-1 January-March 2022 RNI No. RAJHIN/2011/40531

Published by
DR. S. N. TAILOR FOUNDATION
(A Tribute to Late Shri Paras Hemendra G Tailor)

Prof. (Dr.) S. N. Tailor
Managing Director

Chief Editor
Dr. Virendra Sharma

Editor
Dr. Ravindra Tailor

ISSN 2277-5587
RNI No. RAJHIN/2011/40531

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Editors take no responsibility for inaccurate misleading data, opinion and statement appeared in the articles published in the journal. It is the sole responsibility of contributors.

©Editors also hold of the copyright of the Journal

Published By
Dr. S. N. Tailor Foundation
Munot Nagar, Beawar (Rajasthan)

To be had from
Dr. Virendra Sharma
54-A, Jawahar Nagar Colony
Tonk Road, Jaipur (Rajasthan)

Printed at
Ganesh Printers, Jaipur

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

Contents

Volume-42 **Issue-1** **January-March 2022**

1. **समस्या नाटक और डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल** 1–6
   डॉ. प्रतिभा शुक्ला, किशनगढ़

2. **निराला का कुकुरमुत्ता : एक नई पहचान** 7–9
   डॉ. सुनीता देवी एवं मनमोहन आर्य, जयपुर

3. **पश्चिमी राजस्थान के प्रसिद्ध संत श्री सदाराम जी की धार्मिक यात्रा** 10–12
   डॉ. अशोक गाड़ी, सेड़वा (बाड़मेर)

4. **राजस्थान में क्रांतिकारी गतिविधियों का केन्द्र : अजमेर : ऐतिहासिक अध्ययन** 13–15
   डॉ. भगवान सिंह शेखावत, जोधपुर

5. **राजस्थान का एकीकरण** 16–23
   डॉ. पीयूष भादविया, उदयपुर

6. **मनीषा कुलश्रेष्ठ के साहित्य का लोकपक्ष** 24–26
   आरती अमरावत, जोधपुर

7. **भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में 'मालवा अखबार' की भूमिका** 27–31
   डॉ. मनीष कुमार दासौंधी, बडवानी (मध्यप्रदेश)

8. **राजस्थान में भक्ति–संस्कृति का स्वरूप** 32–37
   देवपाल सिंह चारण, जोधपुर

9. **राजस्थानी लोक–संस्कृति, भाषा एवं साहित्यिक–धरोहर** 38–44
   डॉ. नेमीचंद कुमावत, रायपुर

10. **संतकवि मोहनदास व उनकी रचनाएँ** 45–48
    डॉली प्रजापत, जोधपुर

11. **वेलि क्रिसन रुकमणी री में लोक संस्कृति** 49–53
    डॉ. प्रेरणा माहेश्वरी, बीकानेर

12. **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं भारतीय समाज** 54–58
    डॉ. राजेन्द्र सिंह खीची, जोधपुर

13. **शेखावाटी की लोक गाथाए** 59–63
    डॉ. रोहिताश कुमावत, मसूदा (अजमेर)

14. **महात्मा ज्योतिबा फूले, शिक्षा क्रान्तिकारी दूत** 64–68
    पपेन्द्र सैनी, जयपुर

15. **ऑगनबाड़ी कार्यकत्री महिलाओं की समाजाकि–आर्थिक प्रस्थिति** 69–71
    दिव्या राव एवं डॉ. एम. पी. सिंह, हल्द्वानी (उत्तराखंड)

16. **राजस्थान में जैन सन्तों द्वारा स्त्री शिक्षा के विकास में योगदान** 72–74
डॉ. सुनिता टांक, ब्यावर

17. **प्रेमचन्द के कथा साहित्य में दलित–चेतना** 75–78
डॉ. हरिकेश मीना, करौली

18. **महिला मानवाधिकार : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में** 79–84
डॉ. चित्रा आचार्य, फलौदी

19. **1857 ई. के विद्रोह में उत्तर भारतीय राज्यों की भूमिका** 85–89
डॉ. बृजेश कुमार, फिरोजाबाद (उत्तरप्रदेश)

20. **आशा प्रभात के उपन्यासों में नारी अस्मिता का स्वरुप** 90–92
दीपिका चौहान, संबलपुर (ओड़िशा)

21. **डॉ. भीमराव अम्बेडकर का शैक्षिक दृष्टिकोण एवं प्रांसगिकता** 93–96
विशाखा सिंह नेहा, जयपुर

22. **आई पंथ का मुख्य स्तम्भ – बडेर** 97–100
तुलसीराम सीरवी, जोधपुर

23. **जितेन्द्र निर्मोही के साहित्य में चेतना के विविध स्वर** 101–104
राजाराम धाकड़, कोटा

24. **सामाजिक न्याय की अवधारणा** 105–108
डॉ. आशा भार्गव, बारां

25. **शिव लिंग एवं ज्योतिर्लिंग** 109–113
डॉ. अतुल कुमार श्रीवास्तव, छबड़ा

26. **सिरोही राज्य में ठिकाणो की संरचना** 114–120
विक्रमसिंह देवड़ा, उदयपुर

27. **Women Empowerment and Decision Making: A Survey** 121-128
Prof. A. P. Singh, Rishikesh (Uttarakhand) & Dr. Ram Singh Samant, Yamkeshwar, Pauri

28. **Water Management of Historic Mandore Fort: A Geographical Survey** 129-134
Moola Ram, Jodhpur

29. **Women Entrepreneur and Innovation** 135-138
Dr. Anuja Jain, Jaipur

30. **Public Grievance Redressal: With Special Reference to the Rajasthan Sampark Portal** 139-144
Raj Kamal Soni, Jodhpur

समस्या नाटक और डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल

डॉ. प्रतिभा शुक्ला
सह आचार्य, श्री रतनलाल कंवरलाल पाटनी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, किशनगढ़

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

आत्मानुभवों को दूसरों के समक्ष प्रकट करने की सहज प्रवृत्ति नाटक के जन्म का कारण होती है। समसामयिक समस्याओं को अपने नाटकों का आधार बनाने वाले नाटककारों में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का नाम प्रमुख है। आपने सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक जीवन से संबधित समस्याओं को लेकर अनेक नाटकों की रचना की है। नाटकों में केवल समस्या ही नहीं अपितु उनका निदान भी खोजने का सार्थक प्रयास आपके नाटकों में दृष्टिगत होता है। इन समस्याओं का संबंध केवल व्यक्ति और समाज से ही नहीं अपितु व्यापक स्तर पर सार्वभौमिक और सार्वकालिक भी है, जो आपके नाटकों को व्यापक और प्रासंगिक बनाता है।

संकेताक्षर : *समस्या नाटक, अंधा कुआँ, मादा कैक्टस, रक्त कमल, कलंकी, रातरानी, मिस्टर अभिमन्यु, करफ्यू, सुंदर रस, दर्पन, तीन आँखों वाली मछली, सूखा सरोवर, सूर्यमुख, यक्ष प्रश्न, बसंत की प्रतीक्षा आदि।*

नाटक की दृश्यात्मकता और अभिनयशीलता इसकी व्युत्पति से ही स्पष्ट है। पाणिनी के अनुसार नाटक या नाट्य शब्द की उत्पति 'नट' धातु से हुई है। इस धातु का अर्थ है 'अभिनय करना'। साहित्य की वह विधा जिसमें अभिनय की प्रधानता होती है, नाटक कहलाता है, अथवा वह कृत्य जो मुख्यरुपेण अभिनय से संबंधित होता है नाटक कहलाता है। जब भावों और अनुभूतियों की प्रेरणा मानव के मन और मस्तिष्क में घनीभूत हो जाती है तो वह उनकी प्रभावपूर्ण अभिव्यंजना में संलग्न होता है, अर्थात किसी न किसी न किसी प्रकार से अपनी उन अमूर्त भावनाओं को मूर्त रुप देने का प्रयास करता है। आत्मानुभवों को दूसरों के समक्ष प्रकट करने की उसकी यह सहज प्रवृत्ति ही नाटक के जन्म का कारण होती है।

हिन्दी नाटक परम्परा अनुदित और मौलिक दोनों रुपों में, संस्कृत नाटकों के प्रभाव और प्रेरणा से आरम्भ हुई थी। हिन्दी नाटक के प्रथम काल – भारतेन्दु युग में नाटकों का विकास तीव्र गति से हुआ, वहीं द्विवेदी युग की मन्द धारा में नाट्यकारों में दो मुख्य धारायें प्रवाहित हुई–रंगमंचीय नाटककार तथा साहित्यिक नाटककार। रंगमंच पर हिन्दी नाटकों का आरम्भ पारसी एवं पश्चिमी रंगमंच है के समन्वय से हुआ। हिन्दी–नाटक साहित्य में श्री जयशंकर प्रसाद के नाटकों से एक नया उत्थान माना जाता है। इस समय भारतवर्ष में राष्ट्रीय चेतना प्रबलता से प्रकट हो रही थी। अतः प्रसादजी ने ऐतिहासिक नाटकों के द्वारा राष्ट्रीय जागृति, नये आदर्श, भारतीय संस्कृति के प्रति अगाध श्रद्धा प्रस्तुत की।

स्वतन्त्रता के पश्चात हमें तीन प्रकार के नाटक मिलते है। पहला वर्ग तो उन नाटककारों का है, जिनकी शिक्षा–दीक्षा गांधीयुग में हुई थी और जिन्होंने देशभक्ति, आदर्शवादिता, संयम और सेवा, धर्म और कर्तव्य, स्नेह और सहानुभूति को देश और समाज के लिए अनिवार्य माना। इस वर्ग में लक्ष्मीनारायण मिश्र, डॉ. रामकुमार वर्मा, सेठ गोविन्ददास, चतुरसेन शास्त्री, जगदीशचन्द्र माथुर तथा उदयशंकर भट्ट है। दूसरा वर्ग उन नाटककारों का है जो बदलते हुए समाज के अनुरुप नाटक और रंगमंच के निर्माण में अग्रणी भूमिका निभाई। इस वर्ग में उपेन्द्रनाथ अश्क, मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर माचवे, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल तथा नरेश मेहता मुख्य है तथा तीसरे वर्ग में नये नाटककार गिरिराज किशोर, श्याम उमाठे, सुरेन्द्र वर्मा, ज्ञानदेव अग्निहोत्री, रमेश बख्शी तथा भूटानी आदि के नाम प्रमुख हैं।

इन तीनों वर्गों के नाटककारों में डॉ. लाल का स्थान दूसरे वर्ग में आता है। यह वह वर्ग है जिन्होंने परिवर्तित समाज के अनुरुप नाटक और रंगमंच का निर्माण किया था। डॉ. लाल ने सूर्यमुख, कलंकी मिस्टर अभिमन्यु, सुन्दर रस, दर्पन, रक्त कमल, मादा कैक्टस, अब्दुल्ला दीवाना, तीन आँखों वाली मछली, करफ्यू, यक्ष प्रश्न, धरती की आँखें, रुपा जीवा, मन वृन्दावन, श्रृंगार, बसन्त की प्रतीक्षा, एक बूँद जल, एक और कहानी तथा रात रानी आदि नाटक लिखे हैं। इनमें आपने आधुनिक जीवन की निराशा, कुण्ठा, संत्रास, दुश्चरित्रता, व्यभिचार, भ्रष्टाचार आदि समस्याओं को दिखाने का सफल प्रयत्न किया है। इस संदर्भ शॉ लिखते हैं – ''समस्या नाटक का शिल्प मानो–आत्मा के साथ (बौद्धिक) क्रीड़ा करने का शिल्प है।''[1]

अपने नाटकों में डॉ. लाल ने जो कुछ कहना चाहा है, वह स्पष्ट शब्दों में कहा है, इसे कहने में चाहे नाटक के सिद्धान्त पूर्ण हों अथवा ना हों इसकी चिन्ता नहीं की है। इस सन्दर्भ में जै.डब्ल्यू मैरियट का कथन प्रासांगिक है – ''थीसिस नाटक (समस्या नाटक) एक उत्पत्ति सिद्ध करने के लिए नाटक कला के सभी अवयवों को बलिदान कर देता है।''[2] इस प्रकार डॉ. लाल ने प्रायः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की समस्या को अपने नाटक का आधार बनाया है।

अपने प्रथम नाटक अन्धा कुआँ नाटक में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने पति–पत्नी के एक दूसरे के प्रति सन्देह के कारण जो संघर्ष उत्पन्न होता है, उसे वर्णित किया हैं। पारस्परिक विश्वास, दाम्पत्य जीवन का सुदृढ़ आधार होता है। पति–पत्नी में परस्पर सन्देह उत्पन्न होने पर विश्वास को धक्का पहुंचता है और उनमें संघर्ष का आरम्भ होता है। अन्धा कुँआ नाटक के संघर्ष का कारण सूका की सुन्दरता है। इस सुन्दरता को लेकर भगौती के मन में सन्देह उत्पन्न होता है।

भगौती के अत्याचारों से तंग आकर सूका इन्दर नामक युवक के साथ कलकत्ता भाग जाती है, भगौती पुलिस के द्वारा उसे पकड़वाता है और घर ले आता है। लेकिन इस घटना के बाद से सूका पर अत्याचार और अधिक बढ़ जाते हैं। परेशान होकर सूका एक दिन आत्मघात करने के इरादे से कुँए में कूद जाती है, लेकिन वह कुँआ 'अंधा–कुँआ' होता है और सूका बच जाती है।

इन्दर सूका को दुबारा से भगाने का प्रयत्न करता है लेकिन अब सूका भगौती का साथ नहीं छोड़ना चाहती। वह भगौती के अत्याचारों को स्वीकार करती है और कहती है– 'मुझे मालूम है– ऐसे कुएँ में एक बार गिरकर आज तक कोई जिन्दा बाहर नहीं निकला है– लेकिन मैं निकली हूँ।' अन्धा–कुँआ यही है जिसके संग में ब्याही गयी हूँ– जिसमें एक बार मैं गिरी, और ऐसी गिरी कि फिर न उबरी। न कोई मुझे निकाल पाया, न मैं खुद निकल सकी और न कभी निकल ही पाऊँगी। बस धीरे–धीरे इसी में चुककर मर जाऊँगी।''[3] इस कथन में सूका के रुप में एक स्त्री की, एक पत्नी की हृदयद्रावक विवशता व्यक्त हुई है।

पुरानी रंजिशों को लेकर एक दिन भगौती और इन्दर में लड़ाई होती है। इस लड़ाई में भगौती बुरी तरह घायल होता है। अर्न्तद्वन्द्व से ग्रस्त सूका घायल भगौती की सेवा करती है। सूका की सेवा से भगौती का हृदय परिवर्तन होता है, और अन्त में वह सूका को प्रिय पत्नी के रुप में देखने लगता है।

अन्त में प्रतिशोध से भरा इन्दर जब गंड़ासा लेकर भगौती की ओर बढ़ता है तब सूका इन्दर के विरोध में तनकर खड़ी हो जाती है और मर्दानी आवाज में गरजती है 'नामर्द कहीं का। यह घायल है लेकिन बेआसरा नहीं है।' सूका के इस मर्दाने रुप को देखकर इन्दर सहम जाता है। सूका आगे बढ़कर इन्दर के हाथ पर गंडासे का प्रहार करती है। इन्दर के बाएँ हाथ में चोट लगती है, उन्मत्त इन्दर सूका के हाथ से गंडासा छीनने की कोशिश करता है। सूका इन्दर को धमकाती है– मेरे जिन्दा रहते तू उसे नहीं मार सकता। मैं तेरा खून पी लूँगी।[4]

इन्दर एक हाथ में कटार और दूसरे हाथ में गंडासा लेकर भगौती की ओर झपटता है। सूका झटपट बीच में कूदती है इन्दर के दोनों उठे हुए वार सूका पर सही उतर जाते है। सूका भगौती की छाती पर गिर जाती है तभी बाहर से अलगू आदि दौड़कर आते है और इन्दर को घेर लेते है। भगौती सूका को अपनी बांहों से जकड़ करुण आवाज में चिल्लाता है। इस प्रकार सूका जीवनभर कष्ट भोगती हुई विघटित होती रही परन्तु किसी ने उसको सहारा नहीं दिया। सूका की भांति भगौती भी परिस्थितियों के प्रहारों के कारण टूटता रहा। उसने अपने जीवन में दो विवाह किये परन्तु सन्तान उत्पन्न नहीं हुई, दो व्यक्तियों से ऋण लिया जिसे वह जीवन–पर्यन्त चुका न सका। अन्त में सूका के मरने पर भी वह कुछ न कर सका। समग्र रुप में वे दोनों ही अपने जीवन में कुछ न कर सके, धीरे–धीरे उनके

जीवन का विघटन होता ही चला गया। आज भी गांवों में अनगिनत भगौती अपनी सूकाओं के साथ यातनाओं के जंगल में भटक कर अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं।

आधुनिक जीवन का नवीन के प्रति आकर्षण एवं प्राचीन के प्रति नकारात्मक दृष्टि 'मादा कैक्टस' का मूल है। नाटक में जीवन के प्रति बदलती हुई दृष्टि और उसी के साथ बदलते हुए मूल्यों का आकलन डॉ. लाल की नाट्य प्रतिभा का परिचायक है। नवीन के प्रति आकर्षण एवं उसे अपनाने हेतु छटपटाहट आधुनिकता के रुप में हमारे साहित्य में आये, जिसके साथ जुड़े थे व्यक्ति के संस्कार और उसकी परम्परायें। इसी कारण अरविन्द जीवन में विवाह के बदले प्रेम संबंध को महत्वपूर्ण मानता है।

अरविन्द अपने दाम्पत्य जीवन में अनुभव करता है कि चित्र-निर्माण के लिए चित्रकार को जो एक प्रेरणा मिलनी चाहिए वह पत्नी से नहीं मिल पा रही है, अतः वह अपनी पत्नी सुजाता से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेता है और चित्रकला में निपुण मीनाक्षी से घनिष्ठ मित्रता स्थापित करता है। अब वह मीनाक्षी से प्रेरणा पाकर अनोखे चित्रों का निर्माण करता है, पर वह मीनाक्षी से विवाह नहीं करना चाहता, क्योंकि वह मानता है कि कला निर्माण में पत्नी का स्थान बाधक है, तो मित्र का स्थान प्रेरणा और उत्तेजना का है। इस मान्यता के कारण अरविन्द विवाह के स्थान पर प्रेम संबंध को अधिक पसन्द करता है।

जब पिता अरविन्द को मीनाक्षी से विवाह कर लेने का आग्रह करते हैं इस पर अरविन्द कहता है – ''आपसे मैंने कई बार कहा है कि किसी स्त्री पुरुष के संबंध में ब्याह से भी बड़ी कोई चीज होती है। उसके सामने ब्याह तो महज एक बच्चों का घरौदा है, और घरौदा भी ऐसा जो बहुत पुराना हो चला है। मैं उस रास्ते पर चलकर देख आया हूँ, उसमें गति नहीं है, प्रेरणा नहीं है। सबसे बड़ी चीज है आपस की अन्डरस्टेन्डिंग, सिम्पैथी। मैं फिर विवाह नहीं करना चाहता।''[5] अरविन्द की मान्यता और विश्वास है कि जैसे 'मादा कैक्टस' के निकट सम्पर्क में जाकर नर कैक्टस सूख जाता है, नीरस एवं शुष्क होकर निःशेष हो जाता है उसी तरह किसी नारी के निकट सम्पर्क में कलाकार की निजता और उसकी कला निष्प्राण हो जाती है।

डॉ. लाल ने 'रक्त कमल' नाटक में पारस्परिक भेदभाव तथा मजदूरों और किसानों में व्याप्त निर्धनता की समस्या को उठाया है। आज स्वतंत्र भारत में भेदभाव के कारण ही अपेक्षित जागरण नहीं हो रहा है। इस नाटक का नायक उद्योगपति महावीर का छोटा भाई कमल है। कमल पूंजीवाद, जातिवाद, प्रान्तवाद, संप्रदायवाद, अमीरी और गरीबी के विरुद्ध संघर्ष करता है। कमल शोषण नीति को नष्ट करने हेतु संघर्ष का आरम्भ अपने ही घर से अर्थात अपने बड़े भाई महावीर और उसके साथियों से संघर्ष छेड़ कर करता है।

डॉ. लाल का ''कंलकी'' नाटक प्रतीकात्मक, कल्पना प्रधान तथा ऐतिहासिक नाटक है। इसमें उस समय का चित्र अंकित किया गया है, जिस समय भारत पर बर्बर हूणों के आक्रमण हो रहे थे। इन आक्रमणकारियों का प्रतिकार करने का बल न तो सामन्तों में था और न जन साधारण में। जन साधारण कभी विद्रोह न कर सके, इसलिए उन पर सामन्तों ने अमानवीय अधिकार जमा रखे थे। अपनी विलासिता, कर्तव्य- विमुखता, निष्क्रियता और निर्वीर्यता को ओट में रखकर सामन्तों ने तन्त्र विद्या की सहायता से जनता को अन्धविश्वासों में फंसा कर अपनी ही तरह निष्क्रिय और निवीर्य बना दिया था। वे लोगों को कर्मशील के बदले अकर्मण्य और भाग्यहीन बना रहे थे।

''कलंकी'' में मिथुन को आधार बनाकर आधुनिक जीवन की ज्वलन्त समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है। आज का मनुष्य जीवन की विसंगतियों और विषमताओं से छुटकारा पाने के लिए अवतार की प्रतीक्षा करता है, परन्तु उसकी प्रतीक्षा निष्फल हो जाती है। इन शासकों के प्रति क्रान्तिकारी हेरुप का, धूर्त शासक की शोषक नीति से संघर्ष है। वे अवधूत को महासिद्ध मानते है और उसके कहने के अनुसार प्रश्न करना महापाप समझते है। ''कलंकी नाटक में आधुनिक शासन – तंत्र की ओर संकेत किया गया है, जिसमें व्यक्ति को विवेकहीन और अस्तित्वहीन बताया जाता हैं कलंकी नगर के लोग सीधे-साधे है। इनको ऐसे शासक या नेता की आवश्यकता हे जो इन पर शासन और इनका नेतृत्व ही नहीं करे बल्कि जो इन्हें इसके योग्य भी बनाये रखे।''[6]

'रातरानी' नाटक में अनेक सामाजिक समस्याओं को यथार्थता और जीवन्तता से उभारा गया है। रातरानी नाटक का नायक जयदेव है तथा नायिका कुन्तल है। नाटक का आरम्भ पति-पत्नी के संघर्ष से होता है। जयदेव प्रेस का मालिक है। वह व्यसनी दोस्तों के साथ समय तथा धन दोनों को बर्बाद करता है। लालची एवं

व्यसनी जयदेव कुन्तल को भी उपयोगिता की दृष्टि से देखता है। घर की आर्थिक दशा सुधारने के लिए वह कुन्तल को नौकरी करने के लिए विवश करता है। जयदेव का मत है आज की स्त्री को पत्नी और लक्ष्मी दोनों–एक साथ होना है।'[7] वह पत्नी में दो रुप चाहता है ''आज हर स्त्री पुरूष को अपने दो व्यक्तित्व रखने पडेंगे। मैं कुन्तल को बेहद प्यार करता हूँ। पर मैं कुन्तल को समान रुप से उपयोगी भी देखना चाहता हूँ।''[8]

डॉ. लाल ने इस नाटक में दहेज की समस्या को भी उठाया है। कुन्तल अपनी सखी सुन्दरम से कहती है – ''मेरे पिताजी लड़के वालों को अपनी खुशी से पाँच हजार रुपये दहेज में दे रहे थे, किन्तु लड़के के पिता एडवोकेट साहब आठ हजार रुपयों से एक रुपया भी कम नहीं कर रहे थे। मेरी वह शादी क्या टूटी, पिताजी ही टूट गये।''[9] इस प्रकार दहेज न देने के कारण विवाह टूट जाते हैं और बालिकाओं का जीवन तो नष्ट होता ही है, साथ ही परिवार में भी अनेक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। मजदूरों की निर्धनता का वर्णन करते हुए कुन्तल पति जयदेव से कहती है – ''किसी के तन पर न ठीक से कोई कपड़ा था, न किसी का पिछले चार दिनों से पेट भरा था। सब भूखे और नंगे।''[10]

'मिस्टर अभिमन्यु' एक पौराणिक प्रतीक है इस प्रतीक के माध्यम से डॉ.लाल ने आधुनिक समाज पर तीखा व्यंग्य किया है। मिस्टर अभिमन्यु में जिस आदमी का चेहरा है, वह चक्रव्यूह में फँसा हुआ तो है, पर बाहर निकलने को तैयार नहीं है। हाँ, उसे ऐसी शंका अवश्य है शंका और भ्रान्ति का शिकार होने के कारण ही वह मिस्टर अभिमन्यु है।''[11] डॉ. लाल ने राजन के इन दोनों पहलुओं को तोड़ने में अपना कौशल दिखाया है। राजन आत्मन होकर जीना चाहता है। उसका सरकारी व्यवस्था में दम घुटता है, इसलिए वह इसके बाहर निकलने की सोचता है, किन्तु निकल नहीं पाता। अन्त में आत्मन की मौत हो जाती है और राजन गयादत्त होकर रह जाता है।

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के ''करफ्यू'' नाटक में प्रमुख रुप से दो समस्यायें उठाई गई हैं। पहली वैवाहिक जीवन की विफलता की और दूसरी पुलिस के अत्याचारों की। करफ्यू के कारण रात्रि के समय मनीषा अपरिचित गौतम के घर पहुंचती है और उससे निःशंक भाव से वार्तालाप करती है। परिचित व्यक्तियों से ऊबकर कहती हैः नाउ आई लाइक ओनली स्ट्रेजर्स। एण्ड यू आर ए स्ट्रेजर।'[12] मनीषा धीरे धीरे गौतम के विचारों को जगाती है, जिससे गौतम सांसारिक अनुभूतियों को महसूस करता है और वह अपना खोया हुआ व्यक्तित्व प्राप्त करता है।

''नाटककार के अनुसार ऐसा लगता है कि कहीं न कहीं शायद हर आधुनिक स्त्री जीवन की कायरताओं से गुजरकर ही सुविधाओं और समाज में इज्जत तथा सुख पाने के लिए अन्तः विवाह कर लेती है।''[13] डॉ. लाल ने दूसरी ओर पुलिस के अत्याचारों का पर्दाफाश किया है और बताया है कि आज भी पुलिस स्टेशन गुण्डागर्दी के अड्डे बने हुए हैं। पुलिस आज भी जनता पर अत्याचार कर रही है और बेकसूर लोगों को दंडित कर रही है।

'सुन्दर रस' नाटक में डॉ. लाल ने स्पष्ट किया है कि फैशन के कारण लोगों को कितना कष्ट उठाना पड़ता है। आजकल के साधु किस प्रकार अनेक प्रकार के ढोंग रचकर पैसा कमाते हैं। 'सुन्दर रस' नाटक में पंडितराज ने ऐसी ही एक औषधि तैयार की है। उनका कहना है कि जो इस रस को पीयेगा वह अवश्य सुन्दर हो जायेगा। पंडितराज द्वारा निर्मित सुन्दर रस का सेवन भट्टाचार्यजी ढ़ाई महीने तक करते रहे किन्तु सुन्दर न हो सके पर उनके घर उनकी पत्नी ने महाभारत जरुर छेड़ दी – 'ढाई महीने का मेडीकल लीव लिया, घर आया। पत्नी को बताने गया कि मैं मौन होने जा रहा हूँ। वह हमसे पहले ही मौन हो गयी। किन्तु हमने उसकी परवाह नहीं की कमरे में आया, सुन्दर रस पीकर चुप हो गया। उसने गुस्से में आकर कमरे में ताला डाल दिया। बाहर से साक्षात् चण्डी के माफिक बोली, बोल अब भी सुन्दर होना मांगता है।'[14] केदारनाथ की नयी–नयी वकालत भी सुन्दर रस के सेवन से समाप्त हो जाती है। इन सब घटनाओं से पंडितराज बहुत दुःखी हो जाते हैं और अपनी सच्चाई भट्टाचार्य से स्पष्ट करते हैं – ''उन दिनों मेरी आर्थिक हालत बहुत बिगड़ गयी। फिर मैंने यह सुन्दर रस दवा बनायी, और इसकी बिक्री के लिए मैंने यह झूठा प्रचार किया।

डॉ. लाल के ''दर्पन'' नाटक में यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार रूढ़िवादी एवं अन्धविश्वासी माता–पिता और धर्म के ठेकेदारों ने दर्पन को विवाह से वंचित कर दिया। दर्पन के घरवालों ने पाँच वर्ष की आयु दर्पन को बौद्ध मठ में दान कर दिया था। मठवालों ने दर्पन को पढ़ाया–लिखाया और उसे डाक्टर बना दिया। युवा दर्पन के मन में अनुकूल दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने की

तीव्र आकांक्षा जगाती है, इसलिए वह मठ के नियमों के विरुद्ध संघर्ष करती है और मठ को छोड़कर चली जाती है।

पूर्वी से विवाह करने के निर्णय को जानकर हरिपदम के पिता जातिभेद और संक्षिप्त परिचय की दुहाई देते हैं, किन्तु हरिपदम लिए जाति, स्थान, कुल, मर्यादा के प्रति कोई मोह नहीं, उसे पूर्वी के आन्तरिक परिचय का महत्व ज्ञात है, इसीलिए वह दृढ़-प्रतिज्ञ होकर पिता से पूर्वी से विवाह की बात स्पष्ट रुप में कह देता है आप महज किसी के परिचय को ही महत्व देते है। परिणामस्वरुप पिता विवाह की अनुमति दे देते है, विवाह की तिथि भी निश्चित हो जाती है।

''तीन आंखों वाली मछली'' नाटक में डॉ. लाल ने यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य को मरने के लिए जीना चाहिए या फिर जीने के लिए जीना चाहिए। मृत्यु तथा भाग्य से मुक्त होने पर मनुष्य अपने जीवन का नियन्ता स्वयं बन सकता है। नाटक की प्रस्तावना में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल लिखते हैं- जो मृत्यु एडवोकेट श्यामबिहारीदास के लिए प्रथम अंक में भय है, त्रास है। वही मृत्यु और संघर्ष उत्तरोत्तर उन्हें मुक्तिदायक अनुभूति देती है- जैसे पुराण की गाथा की वह छोटी-सी मछली एक जीवन को छोड़ती हुई, उससे आत्म विकास करती हुई मृत्यु के अन्धकार से चलकर मुक्तिमय, गहन प्रशस्त सागर में पहुँच जाती है।''[15]

एडवोकेट श्यामबिहारी का ज्योतिष पर बहुत अधिक विश्वास था। श्यामबिहारी का बड़ा पुत्र रामचन्द्र पिता के इस विश्वास से अनुचित लाभ उठाता है। लेकिन श्यामबिहारी के छोटा बेटा कमलनयन पिता के इस विश्वास का विरोध करता है उसे ज्योतिष पर विश्वास नहीं है। मृत्यु से भयभीत श्यामबिहारी बहुत अधिक बैचेन रहने लगते हैं और उनके मानस में द्वन्द्व तीव्र रुप धारण करता जाता है। श्यामबिहारी अपने को अमर बनाने के लिए परिवार के साथ अपना फोटो खिंचवाते हैं। वे अपने जीवन को प्रत्येक पल को मौत के लिए जीते रहे हैं। अस्थिर श्यामबिहारी मौत पर विजय पाने के लिए सोचते है। मेरे सामने मेरी तीन पीढियां है। मैं इन्हीं में अमर रहूंगा।''[16] किन्तु ऐसा सोच लेने से भी उनका द्वन्द्व समाप्त नहीं होता। अतः श्यामबिहारी मृत्यु के भय से मुक्त होकर जीने का निश्चय करते है। ईश्वर के प्रति विश्वास और आस्था भारतीयता की पहचान है। आज का मनुष्य चाहे धर्म के कितना ही विरुद्ध हो जाये, किन्तु वह ईश्वर में विश्वास अवश्य रखता है।

डॉ. लाल के ''सूर्यमुख'' नाटक की मूल समस्या यह है कि प्रेम किसी का भी हो, वह अपने मूल रुप में उदात, तेजस्वी, कर्म प्रेरक और त्यागपूर्ण होता है। एक पक्ष प्रद्युम्न और बेनुरती का है, जो उदात्त, त्यागपूर्ण एवं कर्मप्रेरक प्रेम का समर्थन करता है। दूसरा पक्ष वभ्रु आदि परम्परावादी लोगों का है, जो विमाता और सौतेले पुत्र के प्रेम को पाप मानता है। परिणामस्वरुप इन दोनों पक्षों में संघर्ष छिड़ता है।

रुक्मिणी और कृष्ण ने दण्ड के रुप में प्रद्युम्न को नगर के बाहर निकाल दिया है। बेनुरती को नगर की यह स्थिति असह्य हो जाती है और वह द्वारिका को सर्वनाश से बचाने के लिए प्रद्युम्न को ले आती है। 'सचमुच वेनुरती और प्रद्युम्न का प्रेम जितना सहज और स्वाभाविक है, उतना ही विलक्षण है, जितना लौकिक है, उतना ही अलौकिक, जितना विषययुक्त है, उतना ही उदात्त और कर्म प्रेरक! यह प्रेम जन्म-जन्मान्तर से चला आ रहा है! ''[17]

इस प्रकार हम देखते हैं कि डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने अभिशप्त, कुंठित एवं विसंगतिपूर्ण जिन्दगी के अनेक वृत्तों को बड़ी सहजता और यथार्थता से व्यक्त किया है। इन सभी नाटकों में आधुनिकता की चुनौती को स्वीकारने की भरपूर कोशिश दिखाई देती है। डॉ. मदान ने इन नाटकों के बारे में लिखा है - इन नाटकों में आधुनिकता का बोध कहाँ कैसे और किस तरह है। यह सही है कि आधुनिक मानस में विगत से टूटने का बोध सजग रुप में पाया जाता है इसे कलागत अनिरन्तरता के रुप में आँका जा सकता है जो इसका ऐतिहासिक पहलू है। इसी तरह आधुनिकता का बोध नगर बोध से भी जुड़ गया है, जो नगरीकरण की प्रक्रिया का परिणाम है।'' [18]

पति-पत्नी के परस्पर सन्देह की समस्या, आधुनिक जीवन का नवीन के प्रति आकर्षण एवं प्राचीनता के प्रति नकारात्मकता, मजदूरों व कृषकों की गरीबी, पारस्परिक मतभेद, जीवन की विसंगतियाँ और उनसे छुटकारा पाने के लिए कलंकी के अवतार की कल्पना, धोखे, छल और कपट से लाखों रुपया कमाना, हड़ताल, दहेज प्रथा, भारतीय अर्थ-व्यवस्था के बिगड़ने के कारण, वैवाहिक जीवन की असफलता, पुलिस के अत्याचार, साधु-सन्तों के पाखण्ड, अन्धविश्वास एवं रुढ़िवादिता, कुर्सी और सत्ता का लोभ तथा प्रेम का

उदात्त एवं तेजस्वी रुप आदि का सफलतापूर्वक वर्णन किया है। डॉ. लाल ऐसे नाटककार हैं जिनसे जीवन की कोई भी समस्या, कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं रहा, जिसे उन्होंने स्पर्श करते हुए उसके समाधान-संकेत प्रस्तुत ना किये हों।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मान्धाता ओझा- हिन्दी समस्या नाटक, पृ.सं.-128*
2. *मान्धाता ओझा- हिन्दी समस्या नाटक, पृ.सं.-282*
3. *डॉ. लाल- अन्धा कुँआ पृ.सं.- 129*
4. *डॉ. लाल- अन्धा कुँआ, पृ.सं.- 156*
5 *डॉ. लाल- मादा कैक्टस पृ.सं.-48*
6. *डॉ. लाजपतराय गुप्त- बीसवी शताब्दी के हिन्दी नाटकों का समाजशास्त्रीय अध्ययनरू पृ.सं.- 272*
7. *डॉ. लाल-रातरानी, पृ.सं.- 26*
8. *डॉ. लाल-रातरानी, पृ.सं.- 43*
9. *डॉ. लाल-रातरानी, पृ.सं.- 37-38*
10. *डॉ. लाल-रातरानी, पृ.सं.- 24*
11. *डॉ. सुषमा अग्रवाल- समकालीन नाट्य साहित्य और मोहन राकेश के नाटक, पृ.सं.- 34*
12. *डॉ. लाल- करफ्यू, पृ.सं.- 40*
13. *डॉ. लाजपतराय गुप्त- बीसवीं शताब्दी के हिन्दी नाटकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ.सं.- 276*
14. *डॉ. लाल- सुन्दररस, पृ.सं.- 66*
15. *डॉ. लालः तीन आंखों वाली मछलीः (प्रस्तावना)*
16. *डॉ. लाल- तीन आँखें वाली मछली, पृ.सं.- 13*
17. *डॉ. ज्ञा.का. गायकवाड- आधुनिक हिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्व, पृ.सं.- 124*
18. *डॉ. मदान - आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, पृ.सं.- 202*

निराला का कुकुरमुत्ता : एक नई पहचान

डॉ. सुनीता देवी
जयपुर

मनमोहन आर्य
सहायक आचार्य, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का वह कुकुरमुत्ता जो कल तक नितान्त उपेक्षित समझा जाता था आज मशरुम बनकर अपनी उच्च स्तरीय गुणवत्ता के कारण देश-विदेश में अपना परचम लहरा रहा है। गुलाब और कुकुरमुत्ता को माध्यम बनाकर पूँजीपति एवं सर्वहारा वर्ग पर लिखी यह कविता 'कुकुरमुत्ता' 1941 ई. में ही हमें मशरुम की महत्ता समझा गई थी। मशरुम ना केवल आज की ट्रेंडिंग सब्जियों में से एक है अपितु अपने बहुप्रतिभाशाली गुणों के कारण अति उपयोगी पाया गया है। यह एक ऐसा खाद्य पदार्थ है जो मांसाहारी एवं शाकाहारी दोनों तरह के लोगों को काफी पसंद आता है। कोरोना वायरस की दहशत के दौरान सब्जियों में मशरुम को काफी पसंद किया गया। यह स्वास्थ्यवर्धक एवं औषधीय गुणों से युक्त खाद्य पदार्थ है। इसमें विटामिन से लेकर खनिज लवण अमीनो एसिड जैसे पोषक तत्व पाये जाते हैं। यह विटामिन डी एवं एन्टिकेन्सर तत्व सेलेनियम का एक प्रमुख स्त्रोत है। भरपूर एन्टी-आक्सीडेन्ट युक्त मशरुम रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है। इसके अनगिनत फायदे हैं अतः 'सुपर फूड' मशरुम को हमें अपनी डाइट में अवश्य शामिल करना चाहिए।

संकेताक्षर : *निराला, कुकुरमुत्ता, मशरुम, गुलाब स्वास्थ्यवर्धक, औषधीय महत्व, पौष्टिक, पूँजीपति, सर्वहारा, विटामिन डी, सेलेनियम, मशरुम कृषि।*

वक्त का पहिया सदैव एक जैसा नहीं होता, बदलता अवश्य है। कल तक नितान्त उपेक्षित एवं सर्वहारा वर्ग का प्रतीक समझा जाने वाला 'कुकुरमुत्ता' आज स्वाद और सेहत का पर्याय बन चुका है। पूर्व में जो कुकुरमुत्ता के नाम से जाना जाता था अब वह मशरुम बनकर बड़े लोगों के साथ बैठने लगा है। इतना ही नहीं मशरुम आमदनी का अच्छा जरिया होने के साथ-साथ स्वास्थ्यवर्धक और औषधीय गुणों से भरपूर ऐसा खाद्य पदार्थ है जिसमें विटामिन से लेकर खनिज लवण एवं अमीनो एसिड जैसे पोषक तत्व पाये जाते हैं। विशेषज्ञ कहते हैं कि मशरुम का सेवन सेहत के लिए रामबाण है।

हिन्दी साहित्य में जब भी इस विषय पर चर्चा होती है निराला द्वारा रचित कविता 'कुकुरमुत्ता' (सन् 1941 ई.) को भुलाया नहीं जा सकता। 'कुकुरमुत्ता' निराला जी द्वारा रचित एक लम्बी कविता है जो दो खण्डों में है – प्रथम खण्ड में कुकुरमुत्ता गुलाब (पूंजीवादी सभ्यता) पर व्यंग्य करता है एवं स्वयं की श्रेष्ठता का बखान करता है। द्वितीय खण्ड में नवाब की बेटी 'बहार' को अपनी हमजोली 'गोली' की माँ द्वारा बनाया 'कुकुरमुत्ते का कबाब' बहुत पसंद आता है। अन्ततः नवाब साहब माली को गुलाब की जगह 'कुकुरमुत्ता' उगाने का आदेश दे देते हैं। इस कविता में कुकुरमुत्ता श्रमिक, सर्वहारा, शोषित वर्ग का प्रतीक/प्रतिनिधि है, तो गुलाब सामंती, पूँजीपति वर्ग का प्रतीक है।

देख मुझको मैं बढ़ा
डेढ़ बालिस्त और उंचा पर चढ़ा

तू है नकली, मैं हूं मौलिक
तू है बकरा, मैं हूं कौलिक...[1]

नवाब साहब के उस बगीचे में गुलाबों के बीच एक 'कुकुरमुत्ता' गर्व से अपना सिर उठाए खड़ा था। गुलाब उसे हेय दृष्टि से देख रहा था, किन्तु कुकुरमुत्ता उस गुलाब का उपहास करता हुआ कहता है –

अबे, सुन बे, गुलाब
भूल मत जो पाई खुशबू रंगोराब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पे इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।[2]

दुनिया भर में गुलाब सबसे सुन्दर माना जाता है। लेकिन कुकुरमुत्ता द्वारा अपनी प्रशंसा किये जाने का तात्पर्य यह है कि दिन सबके आते हैं चाहे वह कितना ही निम्न क्यों न हो उसका अपना महत्व होता है, अपनी एक विशेषता होती है जो दूसरों से उसको अलग करती है। इसको खाने वाले इसको आज 'कुकुरमुत्ता' न कहकर 'मशरुम' कहने लगे हैं, जैसे बचपन में हम सलाद खाते थे और आज 'सैलैड'। यह एक लिपलिपा सा पदार्थ है जिसका सिर है ना पैर, फल है ना फूल, जो आसमान में है ना जमीन में। कुछ गोल है तो कुछ चपटे और कुछ सुडौल तो कुछ बेडोल भी। हाँ वे कुकुरमुत्ते ही तो है जिन्हें परिभाषित करना मुश्किल है। कुकुरमुत्ता नाम का कवक, मांसल बीजाणु युक्त फलने वाला पिण्ड है जिन्हें हिन्दी में छत्रक, खुम्भी, भुछत्र, भूछत्री भी कहते हैं।[3]

देश–विदेश में खाने योग्य मशरुम की कई प्रजातियां पाई जाती है जो काफी महंगी और फायदेमंद होती है। हिमालय क्षेत्र में पाई जाने वाली गुची मशरुम करीब 20,000 रु. किलो तक मिलती है। भारत में दो प्रजातियां सर्वाधिक देखने को मिलती है – व्हाइट बटन मशरुम (एगेरिकस बाइस्पोरस), आयस्टर (ढींगरी) मशरुम (प्लूरोटस स्पेशीज)। इसके अलावा – दूधिया मशरुम (केलोकाइब), पेडीस्ट्रा मशरुम (बोल्बोरिएला), शिटाके मशरुम का उत्पादन भी भारत में किया जाता है।

पिछले कुछ वर्षों में लोगों का रुझान मशरुम की खेती की तरफ तेजी से बढ़ा है यह बेहतर आमदनी का जरिया बन कर उभरा है। कम जगह में कम समय के साथ इसकी खेती बहुत फायदेमंद साबित हुई है। मशरुम की खेती कोई भी कर सकता है – स्त्री–पुरुष, शिक्षित–अशिक्षित। इसके लिए किसी भी कृषि विज्ञान केन्द्र या फिर कृषि विश्वविद्यालय से प्रशिक्षण लिया जा सकता है। भारत विविध प्रकार के कृषि जलवायु परिस्थितियों से युक्त कृषि प्रधान देश है। यहाँ वर्षभर में तापमान के अनुसार विभिन्न प्रकार के मशरुमों को लगाया जा सकता है।

मशरुम खाने में स्वादिष्ट होने के साथ–साथ इसमें मौजूद पोषक तत्व हमारे शरीर को कई खतरनाक बीमारियों से बचा कर रखते हैं। मशरुम में विटामिन बी, डी, पौटेशियम कॉपर, आयरन और सेलेनियम भरपूर मात्रा में होता है। यह मांसपेशियों की सक्रियता में बेहद फायदेमंद होता है। इसमें भरपूर एन्टी आक्सीडेन्ट होते हैं जो बढ़ती उम्र के लक्षणों को कम करने और वजन घटाने में मदद करते हैं।

कोराना महामारी के चलते हमारा देश ही नहीं पूरी दुनिया इस विषाणु (Viral) से परेशान रही है। अब तक यह वायरस लाखों लोगों की जान ले चुका है। वैज्ञानिकों का मानना है कि कोरोना से बचने के लिए पौष्टिक खाद्य पदार्थो की आवश्यकता है। बहुत ऐसे खाद्य पदार्थ हैं जिनसे शरीर की इम्युनिटी बढ़ती है ऐसे में मशरुम भी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने का बेहतर विकल्प बनकर उभरा है जो हमारे इम्यून सिस्टम को मजबूत रखता है। यह शाकाहारी आहार है जिसमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण एंटी–आक्सीडेन्ट आदि प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। शोध से पता चला है कि विटामिन डी वायरल संक्रमण और अन्य स्वास्थ्य संबंधी संक्रमण रोकने में लाभदायक होता है। मशरुम में विटामिन डी प्रचुर मात्रा में होता है। कोराना वायरस की दहशत के दौरान मांसाहार खाने वालों की थाली में चिकन की जगह मशरुम काफी पसंद किया गया।

आज कुकुरमुत्ता (मशरुम) अपने बहुप्रतिभाशाली गुणों के कारण सारी दुनिया में मशहूर हो गया है। निराला का कुकुरमुत्ता गुलाब को अपनी महत्ता बताते हुए कहता है कि संसार के लिए जितना उपयोगी मैं हूँ उतना तुम नहीं। मुझे यहां अनेक रुपों में देखा जा सकता है –

चीन में मेरी नकल छाता बना
छत्र भारत का वही कैसा तना
सब जगह तू देख ले
आज का फिर रुप पैरा शूट ले
विष्णु का मैं ही सुदर्शन चक्र हूँ

उलट दे, मैं ही जसोदा की मथानी

और भी लम्बी कहानी .....[4]

ठीक उसी प्रकार आज के वैज्ञानिकों ने इसके औषधीय गुणों की महत्ता बताते हुए इसे सर्वोत्तम आहार में शामिल किया है।

औषधीय महत्व

1. मांसाहार का प्रयोग हृदय, गुर्दे एवं मधुमेह में वर्जित है, अतः इसके स्थान पर उपयुक्त मसालों के प्रयोग से मशरुम का स्वाद मांस, मछली जैसा बनाकर प्रयोग किया जा सकता है।
2. हृदय रोगियों की आहार योजना में मशरुम को सम्मिलित करना उपयोगी पाया गया है क्योंकि मशरुम शर्करा एवं कोलेस्ट्राल को नियंत्रित कर रक्त संचार बढ़ाता है।
3. मशरुम गर्भवती महिलाओं, बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था सभी चरणों में अति उपयोगी पाया गया है।
4. शर्करा व कोलेस्ट्रोल की कम मात्रा, सुपाच्य रेशों की बहुलता, पौष्टिक होने के कारण यह आदर्श आहार है।
5. मशरुम से पकौड़ा, सब्जी, सूप, पिज्जा, बिस्किट, पापड़, सलाद, अचार, चटनी कई भारतीय व्यंजन बनाये जा सकते हैं।
6. इसमें फफूँद, जीवाणु एवं विषाणु अवरोधी गुण पाये जाते हैं, इसका लगातार प्रयोग ट्यूमर, मलेरिया, मिर्गी, कैंसर, मधुमेह, रक्तस्त्राव आदि रोगों से लड़ने में क्षमता प्रदान करता है।
7. होम्योपैथी चिकत्सा पद्धति में मशरुम की विभिन्न प्रजातियों का प्रयोग बहुलता से हो रहा है तथा असाध्य रोगों के निवारण में सहायक सिद्ध हो रही है।[5]

मशरुम (कुकुरमुत्ता) पर्यावरण संरक्षण एवं किसान की समृद्धि का बेजोड़ कोम्बो भी है। इसकी फसल कृषि अवशेषों पर उग जाती है जो बहुत अच्छी बात है। आमतौर पर किसान पुआल का प्रयोग पशु के सूखे चारे के रुप में करते हैं जिसे पशु भी बहुत कम खाते हैं। पुआल का चारा के रुप में खपत कम होने से किसान इसे बड़ी मात्रा में जला देते हैं जिससे पर्यावरण प्रदूषित होता है। इसे मशरुम उगाने के काम में लेने से जलाने की नौबत नहीं आती और पर्यावरण को भी क्षति नहीं पहुंचती।

इस संदर्भ में इतना कहा जा सकता है कि मशरुम खाने का शौकीन भले ही कोई न हो लेकिन पोषक तत्व एवं औषधीय गुणों की वजह से प्रत्येक घर में इसके उपयोग की आवश्कयता है। मशरुम हैल्दी और लाभदायक वेजिटेबल में से एक है इसके अनगिनत फायदे हैं। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला तो हमें सन् 1941 ई. में ही मशरुम (कुकुरमुत्ता) की महत्ता समझा गये थे जो आज की ट्रेंडिंग सब्जियों में से एक है। कार्बोहाइड्रेट की मात्रा से भरपूर मशरुम का सेवन अपच, पेट दर्द, कब्ज, गैस और एसिडिटी की समस्या को दूर करता है। खून की कमी होने पर भी हम मशरुम का सेवन कर सकते हैं इसमें फॉलिक एसिड अच्छी मात्रा में पाया जाता है जो हमारे शरीर के हीमोग्लोबिन के स्तर को बढ़ाता है। ओएस्टर और फ्लोरिडा मशरुम खाने से बहुत सी बीमारियां ठीक की जा सकती है। इसलिए 'सुपर फूड' मशरुम को हमे अपनी डाइट में अवश्य शामिल करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *निराला : राग विराग, कुकुरमुत्ता, पृ.सं. 146, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नई दिल्ली।*
2. *निराला : राग विराग, कुकुरमुत्ता, पृ.सं. 145, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नई दिल्ली।*
3. *https#//hi.M.wikipedia.org*
4. *निराला : राग विराग, कुकुरमुत्ता, पृ.सं. 147, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नई दिल्ली।*
5. *www.krishisew.com*

पश्चिमी राजस्थान के प्रसिद्ध संत श्री सदाराम जी की धार्मिक यात्रा

डॉ. अशोक गाड़ी
सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, सेड़वा (बाड़मेर)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

पश्चिमी राजस्थान के धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन की वैभवशाली परम्परा को गतिमान करने एवं ग्रामीण अंचलों में सांस्कृतिक नेतृत्व प्रदान करने के लिए माड़धरा पर कई संतो व महापुरुषों ने जन्म लिया है। इन्हीं संतों में से श्री सदाराम जी महाराज ने हिन्द व सिन्ध सूफी भक्ति उपदेशों को देकर पश्चिमी राजस्थान के दुर्गम व बंजर क्षेत्रों में अलख जगाकर समाज को नई दिशा प्रदान की। जैसलमेर रियासत में अकाल की विभीषिका के चलते ये अपने परिवार व अन्य लोगों के साथ पाकिस्तान के सिन्ध क्षेत्र चले गए। वहां इनको सिंध प्रांत के कण्ढड़ी के फकीर रोहिल व साओ सांई के सूफीयाना प्रभाव से आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। इनसे प्रेरणा पाकर सिन्धी भाषा में इश्क समुण्ड नामक पुस्तक की रचना की साथ ही अपने भजनों, उपदेशों व वाणियों पर केन्द्रित 9 ग्रंथों की रचना की। सदाराम जी ने सिन्ध क्षेत्र के मुल्तान के मीठण में फरीदशाह के पवित्र स्थल जिला मीरपुर माथेला, जिला घोटकी पिताफी व जरवारा के पवित्र स्थलों एवं जैसलमेर के कोहरा गाँव, देवीकोट के समीप लाला कराड़ा गाँव तथा हाबुर गाँव में पहाड़ी के पास धूणे स्थापित कर कठोर तप व साधना की, इनके आशीर्वाद से सभी लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण होने लगी। जैसलमेर रियासत के भाटी राजा केसरीसिंह को भी इन्होनें अपना चमत्कार दिखाकर उनका भ्रम दूर किया, तब उन्होंने प्रभावित होकर सदाराज जी को राजगुरु बनाया। सिन्ध व हिन्द संस्कृति में समन्वय के प्रतीक सदाराम जी ने भक्ति व सुफी समिश्रित संत के रुप में तपोबल एवं उपदेशों से हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द को मानव कल्याण व ईश्वर प्रेम से जोडकर सभी के कल्याण का संदेश दिया।प्रस्तुत शोध पत्र में संत सदाराम जी महाराज जो सूफी व भक्ति संत के रुप में पश्चिमी राजस्थान में अपने अलौकिक शक्ति के रुप में प्रतिष्ठित है। उनके जीवन चरित्र, सिन्ध क्षेत्र में उनके चमत्कार व पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर बाड़मेर की सरहद पर स्थित उनके पवित्र धूणा व आराध्य स्थल गुहड़ा के बारे में विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर : *सदारामजी, पश्चिमी राजस्थान, सिन्ध संस्कृति, सांस्कृतिक सौहार्द, संत, संगत, धार्मिक यात्रा।*

राजस्थान की मरुभूमि पर संतो व भक्तों की गौरवपूर्ण परम्परा रही है जिनके प्रमाण के रुप में विभिन्न स्थानों पर संत महात्माओं की समाधियां मंदिर, आश्रम तथा मठ अवस्थित है। इनके प्रति लोक जनमानस में अगााध श्रद्धा है।[1] इसी परिप्रेक्ष्य में जैसलमेर के दक्षिणी भाग के ग्राम गुहड़ा जोकि बाड़मेर व जैसलमेर की सीमा व पाकिस्तान के सिन्ध प्रान्त की सरहद पर स्थित है जहां पर संत सदाराम जी का जन्म 211 वर्ष पूर्व वि.स. 1863 चैत्र शुक्ता द्वितीया को हुआ, इनके पिता का नाम जीवणराम व माता का नाम इतु बाई था, इनका ननिहाल गाँव जोगीदास (जैसलमेर) था। बचपन से ही इनके जीवन-चरित्र पर अपने माता-पिता के आदर्शो का गहरा प्रभाव पड़ा।[2]

ईश्वरीय चिन्तन, ध्यान, योग तथा प्राणी मात्र की सेवा करना उन्हें अपनी माता के संस्कारों से प्राप्त हुआ था। संत सदाराम जी को कविता लिखने व शायरी करने का शौक था जिनके उनका जीविकोपार्जन भी होता था।[3] कुछ वर्ष गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के उपरांत एक दिन अचानक इनके मन में ईश्वरीय प्रेरणा से तीव्र वैराग्य भाव उत्पन्न हुआ। अपनी माता की आज्ञानुसार इन्होंने ईश्वर मार्ग की खोज हेतु जैसलमेर जिले के शाखारानी गाँव के गुरु सेवाराम जी को अपना सतगुरु बनाया तथा प्रभु की उपासना मे लग गए।[4]

 ISSN 2277-5587

गुरु सेवाराम जी ने उनकी कई परीक्षाएं ली, लेकिन अंत में सदाराम जी के गुरु के प्रति समर्पण व भक्ति भाव से प्रभावित होकर उनको आध्यात्मिक दिव्य ज्ञान प्रदान किया। गुरु सेवाराम जी साओ सांई रोहल फकीर के फरजन्द (बेटा) के तालिब थे। संत सदाराम जी को सिंध प्रांत के कण्ढड़ी के फकीर रोहिल व साओ सांई के सूफीयाना प्रभाव से आत्मज्ञान प्राप्त हुआ।

इन्होंने इनसे प्रेरणा पाकर सिन्धी भाषा में इश्क समुण्ड नामक पुस्तक की रचना की, साथ ही लेखनी के माध्यम से कविता व शायरी के अलावा भजनों, उपदेशों व बाणियों पर केन्द्रित 9 ग्रंथों की रचना की, इन ग्रथों में मूल दीप, ज्ञान दीप, ज्ञानसागर, निर्वाण सागर, समझसागर, रामसागर गीता, सादुल गीता, इश्क समुण्ड (समुन्द्र) तथा शुद्ध सागर शामिल है।

इनके भजनों व बाणियों में इनका नाम सादुल सांई मिलता है।[5] हजारों भजनों, काफियां, बैत एवं वायु लिखी जिनका उल्लेख कुदरत का इसरार ए आशिक में मिलता है। इनके भजन व बाणियां गूढ़ रहस्यों से परिपूर्ण होने के बाद भी सरल, सहज, बोधगम्य है जिनका सभी भक्तगण श्रद्धापर्वक गान करते हैं। प्राचीन भाषा व लिपि में रचित इनके गंथों की पाण्डुलिपियां वर्तमान में भी सुरक्षित है, जिनका हिन्दी भाषा में अनुवाद कार्य प्रगति पर है।[6]

तत्कालीन जैसलमेर रियासत में अकाल की त्रासदी के चलते लोगों को जीवकापार्जन हेतु सिन्ध क्षेत्र में जाना पड़ता था। अतः अन्य लोगों के साथ सदाराम जी भी अपने भाई गोविन्दराम जी के साथ सिन्ध क्षेत्र चले गए वहां पर शाह सांई भिंटाई साहब के बैतों की जब उन्होनें भजनकार सुनी तो उनके मन में भी भक्ति भाव का संचार हुआ। श्रेष्ठ कोटि के शायर होने के कारण उन्होनें प्रत्येक राग में उत्पन्न भाव को परख लिया था। वहां एकत्रित संगत मण्डली को उन्होंने इश्क समुण्ड झनकार से सूर में सूर मिलाकर प्रभावित किया। उनके इस प्रकार के अलौकिक ज्ञान से सिन्ध क्षेत्र में उनकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी थी।[7]

सिन्ध क्षेत्र के मुल्तान के कोट मीठण में फरीदशाह के पवित्र स्थल जिला मीरपुर माथेला, जिला घोटकी पिताफी व जरवारा, रोहल साहब के कनड़ी व झोक शरीफ मे शाह अनाथ के पवित्र स्थलों पर संत सदाराम कर तपस्या की। इन्होंने अपने तपोबल पर सभी प्रकार के रोगियों यथा सांप का काटा हुआ आंखों से अंधा, शरीर पर कोढ़ के निशान तथा निःसंतान वाले सभी लोगों को अपनी दिव्य शक्ति से प्रसन्न कर अनके दुखः दर्द को दूर किया।[8]

संत सदाराम जी के वर्षो तक कठोर तप साधना व जनकल्याण के बाद ईश्वर से आत्म साक्षात्कार से उन्हें लोक कल्याण करने की प्रेरणा प्राप्त हुई, तब वे अपने जन्म स्थान ग्राम– गुहड़ा (जैसलमेर) आए तथा वहां धूणा स्थापित किया, इसके अतरिक्त उनके आराध्य स्थल कोहरा गाँव, देवीकोट के समीपस्थ लाला कराड़ा गाँव, हाबुर गाँव में पहाड़ी के पास भी धूणा स्थापित कर इन्होंने कठोर तप किया।[9]

संत सदाराम जी अलौकिक चमत्कारों की कीर्ति दूर–दूर तक फैलने लगी तथा उनका आर्शीवाद पाकर लोगों की मनोकामनाएं पूर्ण हाने लगी तथा दीन–दुखियों के कष्ट दूर होने लगे जिससे गुहड़ा ग्राम पवित्र धाम के रुप में संत महात्माओं, तपस्वियों व लोगों का आस्था स्थल बन गया।

संत सदाराम जी के चमत्कारों का वृत्तांत जैसलमेर रियासत के राजा केसरसिंह भाटी ने सुना तो उन्हें निमन्त्रण देकर अपने दरबार मे बुलाया कुछ समय सत्संग हुआ,पर राजा को दो बातों का अभिमान था कि अमुख साधु शक्ति वाला है या नहीं, साधु गर्ग जाति का है उसे गुरु करना चाहिए या नहीं।

राजा ने अपने अन्तकरणः मे चल रही सभी शंकाओं को दूर करने की प्रार्थना की तभी सादुल सांई ने कहा कि मेरी पुस्तके मेरे घर पर गुहड़ा गाँव मे रखी हुई है, आप किसी विश्वासपात्र व्यक्ति को भेजकर वो पुस्तकें ले आओ ताकि में आपको समझा सकू।[10]

राजा केसरीसिंह ने अपने भरोसे के सरदार ईसरीसिंह को ऊँट पर सवार करके भेज दिया। ईसरीसिंह ने दूसरे दिन गुहड़ा गाँव पहुँचकर जब उनके नाम से आवाज दी तो वे स्वयं आए, यह देखकर ईसरीसिंह आश्चर्य में पड़ गए कि अमुख साधु को तो मैं राजा के दरबार में छोड़कर आया था। वह यहां कैसे पहुचाँ व यह ऊँट की गति से भी तेज कैसे हो गया। ईसरीसिंह से उनसे पुस्तकें लेकर उन्हें भी अपने साथ चलने का आग्रह किया, तब साधु महाराज ने प्रत्युत्तर में कहा कि आप चले जाओ, मैं अपने आप आऊँगा।

ईसरीसिंह वापस रवाना होकर दूसरे दिन जब जैसलमेर दरबार में पहुँचा तो वहां पर सदाराम जी महाराज को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ उन्होनें अपने साथ हुई वृत्तांत से राजा केसरीसिंह को अवगत करवाया तब राजा ने कहा कि यह महाराज(साधु) तो पूरे समय यही पर था, तुम भूल गए होगें, तब भी उनका भ्रम नहीं दूर हो पाया, तभी उन्होनें महाराज से विनयपूर्वक प्रार्थना की कि मेरा भ्रम दूर कीजिए।[11]

केसरीसिंह सदाराम जी महाराज को दूसरे दिन अपने घर ले गए तब उन्होनें राजा से कहा कि आप आंखे बंद करके देखे आपको क्या नजर आ रहा है, यहीं पर राजा का भ्रम दूर हो गया और उन्होंनें सदाराम जी को अपना गुरु बना दिया। इसके बदले मे उन्हें मंडी का खर्चा चलाने के लिए नजराने के तौर पर पीपलिया गाँव, घोड़े, सामान व तंबू दिए इसका उल्लेख तत्कालीन लिख गए ताम्र पत्र व जैसलमेर की तवारीख में भी मिलता है।[12]

सदाराम जी ने 21 साखियां भी दी उनमें से कुछ इस प्रकार थी–

सादुल मेलो सन्त को, धन–धन –धन सोई
सोई मेलो सन्त से तो हर सी मेलो होई
सादुल मेलो सन्त को, मेले मे मजबूत
राम दुहाई राम की, तो भडक गई सभु भूत।।[13]

संत सादुल सदाराम जी का मेला– प्रतिवर्ष भारतीय विक्रम संवत्सर के चैत्र माह मे शुक्ल पक्ष की द्वितीया से लेकर चौथ तक जैसलमेर के गुहड़ा ग्राम मे भरता है। इसी दिन जैसलमेर के विभिन्न ग्रामीण अंचलों से भक्तगण, श्रद्धालु लोगों सदाराम जी के दर्शनार्थ व अपने मन्नत पूर्ण होने पर इनके प्रमुख धाम गुहड़ा पहुँचते हैं। रात्रि को मेघवाल परिवार के रिखियों द्वारा सदाराम जी की वाणियां भजन गाये जाते हैं। प्रसाद के रुप में मिश्री, पताशा, मखाणा, नारियल, गेंहूं का चूरमा व मिठाई का चढावा किया जाता है। भक्तजनों द्वारा वीणा व मंजीरों पर सदाराम जी गुणगान किया जाता है। गुहड़ा ग्राम इन तीन दिनों मे भक्ति से सरोबार हो जाता है।[14]

इस धाम मे आने वाला प्रत्येक यात्री सदाराम जी की अलौकिक शक्ति व चमत्कार से उत्साहित नजर आता है। मंदिर परिसर मे श्रद्धालुओं विश्राम हेतु विशाल धर्मशालाए व सत्संग भवन बने हुए है जिनमें निःशुल्क ठहरने की व्यवस्था है। इस मंदिर परिसर मे सदाराम जी के वंशजो की भी समाधि स्थल है। लोकमान्यता प्रचलित है कि संत सदाराम जी आज भी सूक्ष्म रुप से गुहड़ा ग्राम की इस पावन धरा पर विद्यमान है।[15]गुहड़ा ग्राम के अतिरिक्त छत्तीसगढ के न्यू रायपुर मे संत सदाणी नगर स्थित सादाणी दरबार तीर्थ, अमरावती मे सिंधु नगर सादाणी दरबार साहेल, हरिद्वार मे सप्त सरोवर मार्ग पर संगमपुरी माता लाल देवी के पास, भोपाल में सोहनगिरी स्थित लटकी नगर के पीछे स्थित सादाणी परिवार समिति मे भी चैत्र माह मे पक्ष की द्वितीया से लेकर चौथ तक संत सदाराम जी के मेले लगते हैं।[16]

सदाराम जी महाराज के विशाल मेले भारत में ही नहीं बल्कि सिन्ध क्षेत्र में भी इनकी पूजा भारत प्रवासित मेघवाल परिवारों द्वारा की जाती है। सिन्ध क्षेत्र को इस मेले मे भाग लेने के लिए लोगों की आस्था का ज्वार उमड़ता है।

सिन्ध व हिन्द संस्कृति में समन्वय के प्रतीक सदाराम जी ने भक्ति व सूफी समिश्रित संत के रुप में अपने तपोबल एवं उपदेशो से हिन्दु–मुस्लिम सौहार्द को मानव के कल्याण व ईश्वर प्रेम से जोड़कर मानवता का संदेश दिया। उन्होंने समाज मे फैल रही सामाजिक कुरीतियों, बुराइयों, बाहा आडम्बरों, भेदभाव व छूआछूत का विराध कर मानव कल्याण का संदेश दिया। वि.सं. 1936 चैत्र सुदी चौथ को सदाराम जी महाराज पंचतत्व में विलीन हो गए। इनकी स्मृति में गुहड़ा ग्राम में प्रतिवर्ष मेले का आयोजन होता है।[17]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *संत सदाराम जी का परिचय, सार्दुल सेवा समिति, गुहड़ा, जैसलमेर पृ. 02*
2. *गुहड़ा गाँव मे बहती है लोक श्रद्धा की सरिताएं– डॉ. दीपक आचार्य का आलेख पृ.03*
3. *जैसलमेर रियासतकालीन इतिहास रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर वर्ष 2017– गाड़ी डॉ. अशोक पृ.135*
4. *वही पृ.136*
5. *वहीं पृ.137*
6. *इश्क समुण्ड अल्फा ऑफसेट, अजमेर महाराज मजनाराम जी पृ. 05*
7. *वहीं पृ. 06*
8. *पूर्वोक्त, डॉ. दीपक आचार्य का आलेख*
9. *वहीं पृ. 06*
10. *पूर्वोक्त, महाराज मजनाराम जी*
11. *वहीं पृ. 06*
12. *तवारीख जैसलमेर लक्ष्मीचंद पृ. 24*
13. *पूर्वोक्त, गाडी ड़ॉ. अशोक पृ. 13*
14. *संत श्री सदाराम जी मेंले मे अवलोकन के दौरान जातरु से भेंटवार्ता*
15. *डॉ. दीपक आचार्य का आलेख– आर्यावर्त डेस्क अप्रैल–2013 पृ. 01*
16. *वहीं पृ. 01*
17. *श्री पीयूष कुमार गर्ग(RAS), ग्राम गुहडा से भेंटवार्ता*

राजस्थान में क्रांतिकारी गतिविधियों का केन्द्र : अजमेर : ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. भगवान सिंह शेखावत
सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में राजपूताना का योगदान उल्लेखनीय रहा है। प्रजामंडल व किसान आंदोलन के माध्यम से गांधीवादी मार्ग से स्वतंत्रता हेतु अलख जगाई वही क्रांतिकारी गतिविधियों में भी राजपूताना अछूता नहीं रहा। क्रांतिकारी संघर्ष में अजमेर व राजनीतिक परिस्थितियों के कारण अग्रणी रहा है। अजमेर 1857 के विप्लव का मुख्य साक्षी रहा है। आर्य समाज के सामाजिक जागरण ने राजनीतिक आंदोलन में सहायक की भूमिका निभाई। क्रांतिकारी श्याम जी कृष्ण वर्मा, ठाकुर गोपाल सिंह खरवा, केसरी सिंह बारहठ, अर्जुनलाल सेठी आदि ने अजमेर को केन्द्र बनाकर ब्रितानी हुकुमत के विरुद्ध शंखनाद किया।

संकेताक्षर : *राजपूताना, अजमेर, विप्लव, छावनी, खरवा, आर्य समाज, रियासत।*

वर्तमान राजस्थान के हृदय में बसा अजमेर राजपूताना का ऐतिहासिक नगर रहा है जो मध्यकालीन राजनीतिक गतिविधियों व आधुनिक भारत में ब्रिटिश प्रशासन व उसके समानांतर स्वतंत्रता आंदोलन का साक्षी रहा है। अजयराज चौहान ने 1113 ई. में अजयमेरु की स्थापना की जिसका नाम कालांतर में अजयमेर व तत्पश्चात अजमेर पड़ा। अजमेर चौहान वंश के शासकों की राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र रहा, मध्यकाल में ही ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती ने अजमेर में अपना खानकाह स्थापित किया जिसे वर्तमान में 'गरीब नवाज' (दरगाह) के नाम से जाना जाता है। मुगल काल में बादशाह अकबर जियारत के लिए अजमेर आता रहा जिसने दौलत खाना बनवाया जो अकबर का किला के नाम से जाना जाता है जहां हल्दीघाटी युद्ध की रुपरेखा बनी थी। बादशाह जहांगीर ने अजमेर में 3 वर्ष तक लगातार निवास कर मुगल साम्राज्य की कैंप राजधानी बनाया। आधुनिक काल में मराठों के बाद अंग्रेजों ने अजमेर को राजपूताना का केंद्र बनवाया तथा पॉलिटिकल एजेंट के माध्यम से रियासतों पर नियंत्रण स्थापित किया गया। राजपूताना में स्वतंत्रता आंदोलन गतिविधियों के संदर्भ में यह मिथक है कि यहां ब्रिटिश विरोधी किसी भी तरह की विरोधी आवाज नहीं उठी, यह वस्तुतः यथार्थ से परे है। 1938 के हरिपुरा अधिवेशन जिसमें ही सर्वप्रथम अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने रियासती भारत (राजपूताना सहित) में पार्टी के नेतृत्व में ब्रिटिश विरोधी आंदोलन प्रारंभ करने का निर्णय किया था के पूर्व भी अजमेर सहित राजपूताना के अन्य भागों में ब्रितानी हुकूमत के विरुद्ध आंदोलन हुए थे।

1857 का विप्लव आधुनिक भारत के इतिहास में ब्रिटिश शासन (कंपनी शासन) के विरुद्ध प्रथम सुनियोजित क्रांति थी जिसमें अजमेर का प्रमुख योगदान था। इस समय राजपूताना में 6 सैनिक छावनियाँ थी – नसीराबाद, नीमच, देवली, ब्यावर, एरिनपुरा एवं खैरवाड़ा। नसीराबाद सैनिक छावनी अजमेर से 10 मील दूरी पर थी। नसीराबाद सैनिक छावनी से नीमच, देवली क्रमशः 120 व 60 मील दूरी पर थी। ब्यावर सैनिक छावनी अजमेर से मात्र 35 मील की दूरी पर स्थित थी। 1857 की क्रांति से पूर्व लॉर्ड विलियम बेंटिक ने 31 जनवरी 1832 ई. में अजमेर में राजपूताना के सभी शासकों को 'अजमेर दरबार' में बुलाया और राजपूताना एजेंसी की स्थापना की। 10 मई 1857 को मेरठ में हुए विद्रोह की सूचना जब अजमेर में नियुक्त ए.जी.जी (एजेंट टू गवर्नर जनरल) जॉर्ज पैट्रिक लोरेंस को मिली तो उसके सामने सबसे बड़ी समस्या अजमेर की सुरक्षा थी क्योंकि अजमेर शहर में भारी गोला–बारुद व सरकारी खजाना था।[1] यदि यह सब क्रांतिकारी सैनिकों के हाथ लग जाता तो स्थिति विस्फोटक हो सकती थी। अजमेर की

सुरक्षा के लिए 15वीं बंगाल नेटिव इन्फेंट्री बटालियन तैनात थी, जो मेरठ से अजमेर आई थी अतः इस पर ए.जी.जी को संदेह था। ए.जी.जी ने अजमेर की सुरक्षा के लिए डीसा से अंग्रेज सैनिकों को बुलवाया।[2] 15 वीं बंगाल नेटिव इन्फेंट्री को नसीराबाद भेज दिया गया। 28 मई 1857 को नसीराबाद में इसी बटालियन के सैनिकों ने अपने ऊपर किए गए अविश्वास व राष्ट्रीय क्रांति की घटनाओं से प्रेरित होकर विद्रोह कर दिया जिसका नेतृत्व बख्तावर सिंह नामक जवान कर रहा था । क्रांतिकारी सैनिकों ने कर्नल न्यूबरी तथा मेजर स्पाटवुड़ को मार गिराया साथ ही लेफ्टिनेंट लॉक व कैप्टन हार्डी को लहूलुहान कर दिया। सैनिकों ने अंग्रेज अधिकारियों के घरों में आग लगा दी और तिजोरियाँ तोड़ धन को लूट लिया। डीसा व मुंबई के सैनिकों के नसीराबाद छावनी पहुंचने की सूचना मिलते ही अजमेर पर अधिकार करने की योजना त्यागकर ये विद्रोही सैनिक दिल्ली रवाना हो गए। अजमेर के आस–पास सैनिक छावनियों में भी विद्रोह के स्वर गुंजायमान हुए।[3]

अजमेर की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति (अरावली पर्वत माला से आच्छादित) क्रांतिकारी गतिविधियों के अनुकूल थी। अजमेर शहर के ग्रामीण क्षेत्र का मगरा भौगोलिक क्षेत्र भी ऐसी गतिविधियों हेतु उपयुक्त था। अजमेर स्वामी दयानंद सरस्वती की कर्मभूमि रहा है। आर्य समाज स्थानीय क्षेत्र के सामाजिक सुधारवादी आंदोलन के माध्यम से सक्रिय रहा जिसने अप्रत्यक्ष रुप से राजनीतिक आंदोलन में सहायक की भूमिका निभाई। ईसाई शिक्षक संस्थाओं के माध्यम से भी अजमेर में शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ।

क्रांतिकारी गतिविधियों के माध्यम से भारत की स्वतंत्रता के संकल्प को गतिशील करने में श्यामजी कृष्ण वर्मा का महत्वपूर्ण योगदान था, आप आर्य समाज की विचारधारा से प्रभावित थे ने 1888–89 ई. में अजमेर से अपनी वकालत प्रारंभ की।[4] 1889 ई. में अजमेर म्यूनिसिपल कमेटी के उपाध्यक्ष भी बने। अजमेर में रहते हुए आप जन आंदोलनों के अप्रत्यक्ष रुप से प्रेरक बने, आगे चलकर ब्रिटेन जाकर आपने 'इंडिया हाऊस' की स्थापना की। क्रांतिकारी रासबिहारी बोस ने राष्ट्रीय स्तर पर जब सशस्त्र क्रांति की तैयारी किया जाना प्रारंभ किया उस समय राजपूताना में इस प्रस्तावित क्रांति का नेतृत्व ठाकुर गोपाल सिंह खरवा, केसरी सिंह बारहठ, अर्जुनलाल सेठी के पास था।[5]

अजमेर के खरवा ठिकाने के राव गोपाल सिंह खरवा राजपूताना की समस्त क्रांतिकारी गतिविधियों को आर्थिक सहायता देते थे। उनका सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी राजा महेंद्र प्रताप के साथ भी संपर्क था। कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में (1929) में राव साहब 'रण मृत्यु' का संकल्प लेकर केसरिया वस्त्र धारण कर गए थे। 1931 में जब राव गोपाल सिंह को कश्मीर में मुस्लिम विद्रोह की जानकारी मिली तो वहां के डोगरा राजा की सहायता के लिए शस्त्रों से सुसज्जित बलिदानी जत्था लेकर कश्मीर की तरफ रवाना हुये, जब लाहौर पहुंचे तो उनके इरादे भांपकर पंजाब के गवर्नर ने उनके कश्मीर जाने पर पाबंदी लगा दी और उन्हें संतुष्ट किया कि अब कश्मीर में शांतिपूर्ण स्थिति है। लाहौर में सर्व समाज ने आपका जोरदार स्वागत किया। राव गोपाल सिंह खरवा की राष्ट्रीय स्तर पर चल रही क्रांतिकारी गतिविधियों पर सूक्ष्म नजर थी, आप 1907 में में कोलकाता गए जहां सुरेंद्रनाथ बनर्जी व विपिनचंद्रपाल से आपकी मुलाकात हुई। 1909–10 में रासबिहारी बोस ने भूप सिंह (विजय सिंह पथिक) को राजपूताना के राजाओं से पुरानी तोड़ेदार हैड्री मार्टिन बंदूके और कारतूस खरीदने के लिए भेजा। भूप सिंह, खरवा ठाकुर गोपाल सिंह के सचिव बन गए और उनके निर्देशन में हथियार खरीदने का काम करने लगे, इतना ही नहीं कारतूसों को बनाने, भरने और बंदूकों की मरम्मत करने के कई गुप्त कारखाने राजपूताना में स्थापित किये।[6] उक्त क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए अपार धन की आवश्यकता थी अतः राव साहब से स्थानीय रियासतों से सहायता ली। जोधपुर ईडर के सरप्रताप, बीकानेर के गंगा सिंह राव साहब की 'वीर भारत समिति' के सदस्य बन गए। दिसंबर 1914 में बनारस में भारत के समस्त क्रांतिकारियों का सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें सशस्त्र क्रांति की योजना बनाई गई। 21 फरवरी 1915 क्रांति प्रारंभ करने की निश्चित तिथि थी। राजपूताना की जिम्मेदारी राव गोपाल सिंह खरवा के पास थी। 21 फरवरी को खरवा स्टेशन के पास जंगल में अपने 2000 सशस्त्र सैनिकों का दल लेकर तैयार थे, लेकिन किसी भेदिये के कारण अंग्रेजों को भनक लग गई और यह कार्य पूरा नहीं हो सका। अंग्रेजी सेना ने खरवा दुर्ग को घेर लिया लेकिन किले में सशस्त्र क्रांति से संबंधित कोई साक्ष्य उन्हें नहीं मिले। राव गोपाल सिंह, बाबा नाड़ सिंह, विजय सिंह

पथिक को टॉडगढ़ के किले में नजरबंद कर दिया और ठिकाने के सभी शस्त्र, राजकोष, घोड़े आदि नीलाम कर दिये। केसरी सिंह बारहठ के घर तलाशी ली गई जहां से अंग्रेजों को क्रांति से संबंधित दस्तावेज मिले। अंग्रेजों ने अपने शस्त्राघारों की सुरक्षा से भारतीयों को हटा दिया और सेना में अंग्रेज सिपाहियों की संख्या बढ़ा दी। राव गोपाल सिंह अवसर पाकर टॉड़गढ़ के किले से फरार हो गये लेकिन सलेमाबाद (किशनगढ़) में अंग्रेजों द्वारा पकड़ लिए गये और उन्होंने कुछ शर्तों पर आत्मसमर्पण कर दिया।[7]

हिंगलाज कविया ने राव गोपाल सिंह खरवा के लिए लिखा है–

डारण भुज डंडांह, रजवट वट गोपाल है।
खरवो नव खंड़ांह, कमधज तूं चावो कियो।।
भारत धर भोपाल, सिंह बिट्रिश हिरण हुवा।
गिड़ एकल गोपाल, कमधजियो भेवो करै।।
गीदड़ कई गुलाम, मतलब माया में मगन।
नेक उबारण नाम, गिणां एक गोपाल नै।।
बीजा चित बोदाह, कलजुगिया दीठा कीता।
जग मालम जोधाह, त्याग खाग भुज ताहरै।।
जसनै धन जाणैह, धन जाणै कै धरम नै।
तू मूंछां ताणैह, सोहे भड़ गोपालसी[8]

राजपूताना में क्रांतिकारी गतिविधियों के क्रम में 1930 में चन्द्रशेखर आजाद अजमेर आए, उन्होंने अजमेर के कमिश्नर हैल्पोज को बम से उड़ाने की योजना बनाई, वे साधु के वेश में रहने लगे और मौका देखकर उन्होंने सर्किट हाऊस के रास्ते बारुदी सुरंग बिछा दी, लेकिन हैल्पोज बच गया, इस घटना के बाद आजाद तीन दिन तक केसरगंज आर्यसमाज भवन तथा चांदबावड़ी की कोठरी में छुपे रहे।

अजमेर में रुद्रदत्त जगदीश व्यास तथा लक्ष्मीनाराण पहलवान ने व्यायामशाला के माध्यम से क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन किया जिससे कई युवा उनके इस अभियान के साथी बने। अंतेड़ के पर्वतीय क्षेत्र में गौशाला के रुप में एक विप्लवकारी केन्द्र की स्थापना की गई। अजमेर पर्वतीय प्रकोष्ठ ने बंगाल व महाराष्ट्र के क्रांतिकारियों की ब्रिटिश सरकार के गुप्तचरों के जाल से रक्षा की। किसी अपराधी को रियासतों से गिरफ्तार करने के लिए ब्रिटिश सरकार को रियासती सरकार से अनुमति लेनी पड़ती थी। रियासतों में शस्त्र रखने पर कोई रोक नहीं होती थी। अजमेर में रियासती शासन नहीं होकर सीधे ब्रिटिश शासन के अधीन था अतः अजमेर के क्रांतिकारी ब्रिटिश पुलिस से बचने के लिए अजमेर से भागकर रियासतों में चले जाते थे। अग्रेंजो को रियासती सरकार से इन क्रांतिकारियों को गिरफ्तार करने की अनुमति मिलती तब तक वे दूसरी रियासत में भाग जाते थे।

महाराष्ट्र–बंगाल से प्रकाशित क्रांतिकारी साहित्य जिनमें भवानी मंदिर सर्वप्रमुख था अजमेर में काफी लोकप्रिय हुआ, युगांतर व संध्या जैसे समाचारपत्रों की प्रतियाँ भी छिपे छिपाये यहाँ के नवयुवकों तक पहुँच जाती थी। जब स्थिति ज्यादा गंभीर हो गई तो रियासतों को भी मजबूरन कठोर कदम उठाने पड़ते हालांकि रियासती पुलिस का रवैया सहानुभूतिपूर्ण होता था। 1932 ई. में अजमेर–मेरवाड़ा कारावास महानिरीक्षक गिब्सन की हत्या के अभियोग में नरहरि बापट को 10 वर्ष की कैद हुई। 1935 ई. में पुलिस उप अधीक्षक डोगरा की हत्या के अभियोग में ज्वाला प्रसाद शर्मा, रामसिंह व रमेशचन्द्र को बंदी बनाया गया।

सुस्पष्ट है कि राजपूताना में प्रजामंडल व किसान आंदोलन के समानान्तर क्रांतिकारी गतिविधियाँ भी चलती रही व अजमेर क्षेत्र ने इसके मुख्य केन्द्र के रुप में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उल्लेखनीय योगदान दिया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *जी.एच. ट्रेवोर, चैप्टर ऑफ द इंडियन म्यूटिनी, पृ. 150*
2. *एस.एन.सेन, एटीन फिफ्टी सेवन, पृ. 309*
3. *डॉ. के. एस. गुप्ता, डॉ. जे.के. ओझा, डॉ. गोपाल व्यास, राजस्थान का इतिहास व संस्कृति, पृ. 201*
4. *त्यागभूमि (हिन्दी समाचार पत्र), 14 जनवरी, 1930, पृ. 2*
5. *बी.एल. पनगड़िया, राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम, राज. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पृ. 18*
6. *ज्ञान दर्पण पत्रिका में प्रकाशित लेख, स्वतंत्रता समर के योद्धा–राव गोपाल सिंह खरवा, लेखन रतन सिंह, 11 अप्रैल 2010*
7. *श्री विजय सिंह पथिक स्मृति ग्रंथ, जगदीश प्रसाद श्रीमती पुष्पा देवी हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ. 158*
8. *हिंगलाजदान कविया (लेखक) राजस्थान का स्वतंत्रता संग्राम काव्य, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, पृ. 127*

राजस्थान का एकीकरण

डॉ. पीयूष भादविया
सहायक आचार्य, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

यह शोध-पत्र राजस्थान के एकीकरण से जुडे तथ्यों, घटनाक्रमों, विभिन्न समस्याओं एवं समाधान को दर्शाता है। राजस्थान, आजादी से पूर्व राजपूताना नाम से जाना जाता था। यहां 19 रियासतें, 3 चीफ-शिप/ठिकाने तथा 1 केन्द्रशासित प्रदेश था। कैबिनेट मिशन की घोषणा के आधार पर एकीकरण का कार्य प्रारम्भ किया गया। यह कार्य चरणबद्ध तरीके से सात महत्त्वपूर्ण चरणों में सम्पूर्ण होता है। इस कार्य की शुरूआत प्रथम चरण में मत्स्य संघ के निर्माण 18 मार्च, 1948 से हुआ। 30 मार्च, 1948 को लगभग राजपूताना आज का राजस्थान नजर आने लगता है तथा 30 मार्च को ही हम राजस्थान दिवस मनाते है। 1 नवम्बर, 1956 को वर्तमान राजस्थान का निर्माण या एकीकरण पूर्ण हो जाता है। राजस्थान के एकीकरण में सरदार वल्लभभाई पटेल एवं उनके विभागीय सचिव वी. पी. मेनन के साथ-साथ राजाओं, प्रजामण्डलों के नेताओं एवं जनता का पूर्ण योगदान रहा।

संकेताक्षर : *राजपूताना, राजस्थान, एकीकरण, रियासत, चीफ-शिप, ठिकाने, प्रजामण्डल।*

आजादी से पूर्व राजपूताना तीन भागों में विभाजित था : रियासतें, चीफ-शिप एवं ब्रिटिश शासित प्रदेश। राजपूताना में 19 रियासतें (अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली, कोटा, बूंदी, झालावाड़, बांसवाड़ा, डूँगरपुर, प्रतापगढ़, शाहपुरा, किशनगढ़, टोंक, उदयपुर जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, सिरोही), 3 चीफ-शिप/ठिकाने (नीमराना, लावा, कुशलगढ़) तथा 1 केन्द्रशासित प्रदेश (अजमेर मेरवाड़ा) थे। ब्रिटिश सरकार ने प्रशासनिक दृष्टि से राजपूताना को चार भाग में बांट दिया था : पूर्वी राजपूताना स्टेट्स एजेन्सी, जयपुर एजेन्सी, मेवाड़ और दक्षिण राजपूताना स्टेट्स तथा पश्चिमी राजपूताना स्टेट्स एजेन्सी। राजपूताना की रियासतों में राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था थी, साथ ही प्रजामण्डल भी अपनी भूमिका निभा रहे थे।

इन रियासतों, ठिकानों एवं केन्द्र शासित प्रदेश को एकसूत्र में पिरोकर एक सुदृढ़ प्रशासनिक इकाई राजस्थान का निर्माण हुआ। ये प्रक्रिया 18 मार्च 1948 से प्रारम्भ होकर 1 नवम्बर, 1956 तक सात चरणों में पूर्ण हुई। यही प्रक्रिया राजस्थान का एकीकरण कहलाती हैं।[1]

16 मई, 1946 में केबिनेट मिशन ने भारतीय संविधान सम्बन्धी अपनी योजना में स्पष्ट किया कि भारत के स्वतंत्र होते ही, देशी राज्यों ने ब्रिटिश क्राउन के साथ संधियाँ करके जो अधिकार सौंपे थे, वे उन्हें वापस लौटा दिए जाएगे। अतः देशी राज्यों को ब्रिटिश सरकार की उत्तरदायी भारतीय सरकार से वार्त्ता करके अपना भविष्य तय करना चाहिए।[2] केबिनेट मिशन के 22 मई, 1946 ई. के ज्ञापन के आधार पर ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की थी कि छोटी-छोटी रियासतों को चाहिए कि वे आपस में मिलकर बड़ी इकाइयों का गठन करे, ताकि वे भारत के भावी संविधान के निर्माण में प्रभावी योगदान दे सके। यथासम्भव छोटी रियासतें अपनी पड़ोसी बड़ी रियासत या प्रान्त में मिल जायें। इस सम्बन्ध में राजपूताना के शासकों ने अपने स्तर पर छोटी-छोटी रियासतों को मिलाकर बडी इकाई बनाने के प्रयत्न किए थे।[3]

मेवाड के महाराणा भूपालसिंह ने 25 और 26 जून, 1946 को उदयपुर में छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर एक बडी इकाई 'राजस्थान यूनियन' बनाने के उद्देश्य से राजस्थान गुजरात और मालवा के राजाओं का सम्मेलन उदयपुर में

बुलाया। इस सम्मेलन में 22 राजा–महाराजा उपस्थित थे।

महाराणा भूपालसिंह ने सम्मेलन में उपस्थित राजाओं से अपील की कि, वे सभी मिलकर 'राजस्थान यूनियन' का गठन करे ताकि भावी भारतीय संघ में वे एक सबल इकाई के रूप में सम्मिलित होकर महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके। महाराणा ने सुझाव दिया कि प्रस्तावित यूनियन भारतीय संघ की एक सब–फैडरेशन के रूप में बनाई जाये, जिसमें रियासतें अपना अपना पृथक अस्तित्व कायम रखते हुए कतिपय विषय 'यूनियन' को सौंप दें। राजाओं ने महाराणा की योजना पर विचार करने का आश्वासन दिया।[4]

महाराणा भूपालसिंह ने अपनी कार्ययोजना को पूर्ण करने के लिए के. एम. मुंशी को अपना संवैधानिक सलाहकार नियुक्त किया। के.एम. मुंशी के सलाहानुसार महाराणा ने 23 मई, 1947 को पुनः राजाओं का सम्मेलन आयोजित किया। महाराणा ने सम्मेलन में राजाओं को चेतावनी दी कि ''हम लोगो ने मिलकर अपनी रियासतों की यूनियन नहीं बनाई तो सभी रियासतें, जो प्रान्तों के समकक्ष नहीं हैं, निश्चित रूप से समाप्त हो जाएँगी।'' जोधपुर, जयपुर, बीकानेर आदि बड़े राज्यों को छोड़कर राजस्थान के शेष राज्यों ने महाराणा भूपालसिंह के प्रस्ताव को सिद्धान्त रूप में स्वीकार कर लिया। प्रस्तावित 'राजस्थान यूनियन' का विधान तैयार करने के लिए एक समिति गठित की गई। 14 फरवरी, 1948 को राजाओं एवं उनके प्रतिनिधियों की सभा में यूनियन के विधान की रूपरेखा प्रस्तुत की गई। विधान में सभी राज्यों के शासकों को समान स्तर दिया गया। एक कार्यकारिणी के गठन का प्रस्ताव था जिसमें सभी शासक सदस्य थे, जो अपने में से किसी एक को तीन वर्षों के लिए अध्यक्ष चुनते। विधान में द्विसदनीय व्यवस्थापिका का प्रावधान किया गया। एक सदन में राज्यों से समान संख्या में सदस्य होंगे और दूसरे सदन में जनसंख्या के अनुपात में निर्वाचित सदस्य होंगे। मगर प्रत्येक राज्य का कम से कम एक प्रतिनिधि अवश्य होगा। इस विधान में मंत्रिमण्डल के गठन की भी व्यवस्था थी। राजाओं में यूनियन के इस विधान पर मतैक्य न हो सका।

महाराणा भूपालसिंह ने एक बार पुनः 6 मार्च, 1948 को राजस्थान एवं गुजरात के राजाओं से अपील की कि वे 'राजस्थान यूनियन' के रूप में संगठित हो जाएँ अन्यथा उनकी स्वतंत्रता समाप्त हो जाएँगी। लेकिन शासकों के पारम्परिक अविश्वास के कारण 'राजस्थान यूनियन' की योजना मूर्त रूप नहीं ले सकी।[5]

राज्यों का एक संघ बनाने का प्रयास जयपुर महाराजा मानसिंह ने भी किया। अपने राज्य के दीवान वी. टी. कृष्णामाचारी के सुझावानुसार राजस्थान के राजाओं व उनके प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन में उपस्थित राजाओं के समक्ष कृष्णामाचारी ने राज्यों का एक ऐसा संघ बनाने का प्रस्ताव रखा, जिसमें उच्च न्यायालय, उच्च शिक्षा, पुलिस आदि विषय संघ के नियंत्रण में रहे व शेष मामले राज्य के पास रहे। यदि इस पर सहमति न हो तो छोटे राज्यों को जो अपना पृथक अस्तित्व नहीं रख सकते, उन्हें अपने पड़ोस के बड़े राज्यों के साथ मिल जाने की सलाह दी गई। मगर इस सम्मेलन में भी शासक किसी एक ठोस निर्णय पर नहीं पहुँच सके और सम्मेलन का उद्देश्य पूरा नहीं हो सका।

कोटा महाराव भीमसिंह कोटा, बून्दी और झालावाड़ राज्यों को मिलाकर एक संयुक्त राज्य हाड़ौती संघ बनाने का इच्छुक थे। वह वृहत्तर कोटा का निर्माण करना चाहते थे, किन्तु पारस्परिक अविश्वास, ईर्ष्या एवं अपना पृथक अस्तित्व बनाये रखने की महत्वाकांक्षा के कारण 'हाड़ौती संघ' बनाने का प्रयास भी मूर्त रूप नहीं ले सका।

डूँगरपुर महारावल लक्ष्मणसिंह 'वृहत्तर डूँगरपुर' का निर्माण करना चाहते थे। उन्होंने डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, कुशलगढ़ और प्रतापगढ़ के राज्यों को मिलाकर 'वागड संघ' का निर्माण करने का प्रयास किया। मगर उन्हें भी अपने प्रयासों में सफलता नहीं मिली।[6]

इस प्रकार राजाओं के अहम्, महत्वाकांक्षा, पारस्परिक अविश्वास व ईर्ष्या के कारण राजस्थान के राज्य विलय से पूर्व आपस में मिलकर किसी इकाई का निर्माण करने में असफल रहे। संघ बनाने का प्रयास करने वाले मेवाड़, जयपुर, कोटा व डूँगरपुर के शासक भी अपनी महत्ता एवं स्वयं के राज्य की सर्वोपरिता के इच्छुक थे। अतः संघ निर्माण में इन्हें सफलता नहीं मिली।

प्रथम चरण : मत्स्य संघ (18 मार्च, 1948)

5 जुलाई, 1947 को रियासती विभाग द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार छोटे–छोटे राज्यों को मिलाकर बड़ी इकाइयों का निर्माण करना था। सरदार पटेल के नेतृत्व

में रियासती विभाग इस दिशा में सक्रिय था। मगर देश की स्वतंत्रता के साथ ही विभाजन का देश एवं इसके दुष्परिणामों ने देश में साम्प्रदायिक दंगों को जन्म दिया। पूर्वी राजस्थान में अलवर व भरतपुर राज्यों में भी मेव मुसलमानों ने अलग 'मेवस्तान' की माँग को लेकर उत्पात शुरू कर दिया था। इन दोनों राज्यों में साम्प्रदायिक तनाव के कारण प्रशासन शिथिल व शांति स्थापित करने में असक्षम हो रहा था। अलवर के दीवान एन. वी. खरे और महाराजा तेजसिंह पर साम्प्रदायिक उन्माद भड़काने के आरोप भी लगे। इसी दौरान 30 जनवरी, 1948 को महात्मा गाँधी की हत्या हो गई। उस समय ऐसी अफवाह थी कि गाँधीजी के हत्यारों को अलवर में शरण दी गयी और यहीं उनकी हत्या का षड्यंत्र रचा गया। अतः भारत सरकार ने अलवर का प्रशासन अपने हाथ में ले लिया।[7]

भरतपुर राज्य के विरुद्ध भी भारत सरकार को बहुत सारी शिकायतें मिली। वहाँ पर मुसलमानों के साथ अत्याचार हो रहे थे। राज्य में ट्रेनों की लूटपाट की घटनाओं की सूचना भारत सरकार को मिल रही थी। भरतपुर के शासक बृजेन्द्रसिंह ग्वालियर के महाराज के साथ वी. पी. मेनन से मिले। उन्हें वी.पी. मेनन ने भरतपुर राज्य का प्रशासन भारत सरकार को सौंपने की सलाह दी। महाराज ने वी. पी. मेनन की बात मान 14 फरवरी, 1948 को भरतपुर राज्य का प्रशासन भारत सरकार को सौंप दिया।[8]

इसी दौरान रियासती विभाग ने भौगोलिक, जातीय और आर्थिक दृष्टिकोण से समानता रखने वाले धौलपुर, करौली, भरतपुर और अलवर राज्यों को मिलाकर एक संघ बनाने का विचार किया। अतः 27 फरवरी, 1948 को चारों राज्यों के शासकों को वी. पी. मेनन ने दिल्ली बुलाकर उनके समक्ष संघ निर्माण का प्रस्ताव रखा। उस समय यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि भविष्य में इस संघ को राजस्थान या संयुक्त प्रान्त में सम्मिलित किया जाएगा। प्रस्तावित संघ को चारों शासकों ने स्वीकार कर लिया और 28 फरवरी, 1948 को इसके दस्तावेजों पर हस्तक्षर कर दिये। के. एम. मुंशी के सुझाव पर इस संघ का नाम 'मत्स्य संघ' रखा, क्योंकि महाभारत काल में यह क्षेत्र 'मत्स्य प्रदेश' के नाम से जाना जाता था। यह सुझाव शासकों ने मान लिया।

महत्व के आधार पर अलवर महाराज या भरतपुर महाराज को राज प्रमुख बनाना था, परंतु दोनों के खिलाफ जाँच के कारण उन्हें इस पद से दूर रखा गया।[9] धौलपुर महाराजा उदयभानसिंह को मत्स्य संघ का राजप्रमुख तथा करौली के महाराजा को उपराजप्रमुख बनाया गया। शोभाराम के नेतृत्व में एक लोकप्रिय मंत्रिमण्डल का गठन किया गया, जिसमें जुगल किशोर चतुर्वेदी (भरतपुर), मास्टर भोलानाथ (अलवर), गोपीलाल यादव, डॉ. मंगलसिंह (धौलपुर) और चिरंजीलाल शर्मा (करौली) को सम्मिलित किया गया। राजाओं के लिए प्रिवीपर्स निश्चित कर दिया गया।[10]

'मत्स्य संघ' का उद्घाटन 18 मार्च, 1948 को तत्कालीन केन्द्रीय खनिज एवं विद्युत मंत्री नरहरि विष्णु गाडगिल ने किया। अलवर को मत्स्य संघ की राजधानी बनाया गया। 'मत्स्य संघ' का क्षेत्रफल 7,589 वर्ग कि.मी., जनसंख्या 18,37,994 एवं वार्षिक आय 183 लाख रु. थी।[11]

मत्स्य संघ के निर्माण से धौलपुर और भरतपुर को मिलाकर 'ब्रज प्रदेश' तथा अलवर और भरतपुर को मिलाकर 'मेवस्थान' बनाने के स्वप्न चकनाचूर हो गए।[12]

द्वितीय चरण : राजस्थान संघ (25 मार्च, 1948)

कोटा, डूँगरपुर एवं झालावाड़ के शासकों ने 3 मार्च, 1948 को रियासती विभाग के समक्ष कोटा, बून्दी, झालावाड़, टोंक, किशनगढ़, बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, शाहपुरा एवं प्रतापगढ़ राज्यों तथा लावा एवं कुशलगढ़ के ठिकानों को मिलाकर एक संघ बनाने का प्रस्ताव रखा। इनको डर था कि कहीं इनके राज्यों को मालवा या मध्यभारत में न सम्मिलित कर दिया जाय। अतः इन्होंने स्वयं ही आगे होकर भारत सरकार के समक्ष उक्त प्रस्ताव रखा।

भारत सरकार ने इन राज्यों का संघ निर्माण का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। प्रस्तावित संघ के मध्य में मेवाड़ राज्य स्थित था। अतः रियासती विभाग चाहता था कि मेवाड़ भी इस संघ में सम्मिलित हो जाए। मगर उसके द्वारा निर्धारित मापदण्डों के अनुसार मेवाड़ अपना स्वतंत्र अस्तित्व रख सकता था। इसलिए मेवाड़ पर दबाव नहीं डाला जा सकता था। फिर भी रियासती विभाग एवं बून्दी महाराव बहादुरसिंह ने प्रयत्न किया कि मेवाड़ भी प्रस्तावित संघ में सम्मिलित हो जाय, मगर मेवाड़ महाराणा इसके लिए तैयार नहीं हुआ, वरन् उसने स्वयं सभी राज्यों के मेवाड़ में विलय का प्रस्ताव किया। प्रस्तावित संघ का राजप्रमुख कोटा महाराव को बनाये जाने पर बून्दी के शासक ने मेवाड़

को इस संघ में सम्मिलित करने के लिए विशेष निजी प्रयत्न किए क्योंकि कोटा के शासक बून्दी के शासकों के छुटभैये थे। अतः बून्दी का कोटा के अधीन होना वंश परम्परा के विरुद्ध था। यदि मेवाड़ इस संघ में सम्मिलित हो जाता तो मेवाड़ महाराजा राजप्रमुख बनते, जिससे बून्दी धर्मसंकट से बच जाता। मगर उसके प्रयत्न कारगर नहीं हो पाए।

मेवाड़ राज्य द्वारा प्रस्तावित संघ में सम्मिलित होने के प्रति अनिच्छा व्यक्त करने पर भारत सरकार के रियासती विभाग ने मेवाड़ के बिना ही दक्षिणी पूर्वी राजस्थान के राज्यों, कोटा, बून्दी, झालावाड़ टोंक, किशनगढ़, बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, शाहपुरा, प्रतापगढ़ तथा कुशलगढ़ एवं लावा ठिकानों को मिलाकर संघ बनाने का निर्णय किया। इस संघ का क्षेत्रफल 16807 वर्ग कि.मी., जनसंख्या लगभग साढ़े तेबीस लाख एवं वार्षिक आय दो करोड़ रुपये से अधिक थी। इस संघ के उद्घाटन की तिथि 25 मार्च, 1948 तय की गई।

इसी मध्य मेवाड़ में मंत्रिमण्डल गठन को लेकर महाराणा एवं प्रजामण्डल के मध्य मतभेद उत्पन्न हो गए। अतः 23 मार्च, 1948 को मेवाड़ राज्य ने भी प्रस्तावित संघ में सम्मिलित होने की इच्छा व्यक्त की। परन्तु इस संघ के शपथ ग्रहण की तिथि तय हो जाने से मेवाड़ को इस समय संघ में सम्मिलित करना संभव नहीं था। इसलिए मेवाड़ को बाद में सम्मिलित करने का निश्चय किया गया। इस संघ का उद्घाटन 25 मार्च, 1948 को कोटा में केन्द्रीय मंत्री नरहरि विष्णु गाडगिल ने किया। संघ में कोटा, सबसे बड़ा राज्य होने के कारण कोटा को राजधानी तथा कोटा महाराव भीमसिंह को राजप्रमुख बनाया गया। बून्दी के शासक बहादुर सिंह को वरिष्ठ उपराजप्रमुख तथा डूंगरपुर महारावल लक्ष्मणसिंह को कनिष्ठ उपराजप्रमुख पद दिया गया। शाहपुरा प्रजामण्डल के नेता गोकुल लाल असावा को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई गई, जबकि मंत्रिमण्डल निर्माण का कार्य स्थगित रखा गया।[13]

तृतीय चरण : संयुक्त राजस्थान (18 अप्रेल, 1948) (राजस्थान संघ में मेवाड़ का विलय)

मेवाड़ में मंत्रिमण्डल के गठन को लेकर प्रजामण्डल से विवाद होने पर 23 मार्च, 1948 को महाराणा भूपालसिंह ने राजस्थान संघ में सम्मिलित होने की इच्छा से रियासती विभाग को अवगत करा दिया था। 28 मार्च, 1948 को वी. पी. मेनन एवं मेवाड़ के प्रधानमंत्री एस. वी. राममूर्ति के मध्य मेवाड़ के विलय पर चर्चा हुई। मेवाड़ महाराणा भूपालसिंह ने औपचारिक रूप से मेवाड़ के राजस्थान संघ में विलय की स्वीकृति दे दी। एस. वी. राममूर्ति ने महाराणा की तीन प्रमुख मांगें रखी : (1) मेवाड़ महाराणा को संयुक्त राजस्थान का वंशानुगत राजप्रमुख बनाया जाये, (2) 20 लाख रु. वार्षिक प्रिवीपर्स दिया जाये, (3) उदयपुर को संयुक्त राजस्थान की राजधानी बनाई जाये।

रियासती विभाग ने केवल महाराणा भूपालसिंह को आजीवन राजप्रमुख बनाना स्वीकार किया और महाराणा को 10 लाख रुपये वार्षिक प्रिवीपर्स, 5 लाख रुपये राजप्रमुख के कार्य का भत्ता तथा 5 लाख रु. धार्मिक कार्यो के लिए देना स्वीकार कर लिया। 29 मार्च को एस. वी. राममूर्ति से चर्चा के समय वी. पी. मेनन के समक्ष कोटा, डूँगरपुर एवं झालवाड़ के शासक भी मौजूद थे।[14] उदयपुर को संयुक्त राजस्थान की राजधानी बनाने का भी निर्णय किया गया। मेवाड़ के प्रधानमंत्री एस. वी. राममूर्ति ने उदयपुर आकर महाराणा को दिल्ली के निर्णय से अवगत कराया। वी. पी. मेनन ने संबंधित शासकों को 10 अप्रैल 1948 को दिल्ली बुलाया। इस बैठक में कोटा, बूंदी, डूँगरपुर, झालवाड़, प्रतापगढ़ एवं टोंक के शासक मौजूद थे। एस. वी. राममूर्ति उदयपुर का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। साथ ही गोकुललाल असावा भी मौजूद थे। मेवाड़ महाराणा की सभी शर्तें पूरी हो जाने पर 11 अप्रेल, 1948 को उन्होंने विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। उस दिन राजस्थान संघ में शामिल शासकों ने भी संशोधित मसौदे पर हस्ताक्षर कर दिये। मेवाड़ के 'राजस्थान संघ' में सम्मिलित होने पर संघ को 'संयुक्त राजस्थान' नाम दिया गया।[15]

18 अप्रेल, 1948 को उदयपुर में प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने संयुक्त राजस्थान का उद्घाटन किया। मेवाड़ महाराणा भूपालसिंह को संयुक्त राजस्थान का आजीवन राजप्रमुख बनाया गया। कोटा महाराव भीमसिंह को वरिष्ठ उपराजप्रमुख बनाया गया। माणिक्यलाल वर्मा को संयुक्त राजस्थान का प्रधानमंत्री मनोनीत किया गया। संयुक्त राजस्थान में सम्मिलित राज्यों के प्रजामण्डल के प्रतिनिधियों गोकुललाल असावा (शाहपुरा) प्रेमनारायण माथुर, भूरेलाल बयाँ, मोहनलाल सुखाड़िया (उदयपुर), भोगीलाल पांड्या (डूंगरपुर), अभिन्न हरि (कोटा) और बृजसुन्दर शर्मा (बून्दी) को मंत्रिमण्डल में सम्मिलित किया गया। संयुक्त राजस्थान का क्षेत्रफल 29,777

वर्ग मील, जनसंख्या 42,60,918 और वार्षिक आय 316 लाख रु. थी।[16]

चतुर्थ चरण : वृहद् राजस्थान (30 मार्च, 1949)

(संयुक्त राजस्थान में जयपुर, जोधपुर, बीकानेर एवं जैसलमेर का विलय)

'मत्स्य संघ' एवं 'संयुक्त राजस्थान' के गठन के बाद जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर एवं सिरोही राज्य ही एकीकरण की प्रक्रिया से बचे थे। दिल्ली में यह निर्णय नहीं हो पा रहा था कि इन राज्यों को राजस्थान में शामिल करे या इन्हें चीफ कमिश्नर के अन्तर्गत केन्द्रीय प्रशासनिक क्षेत्र में रखा जाये।[17]

मई, 1948 मे सिरोही राज्य का प्रबन्ध बम्बई सरकार को सौंप दिया गया। जैसलमेर राज्य का शासन भारत सरकार के हाथ में ही था। जयपुर, जोधपुर एवं बीकानेर राज्य रियासती विभाग के निर्धारित मापदण्डों के अनुसार संघ के अन्तर्गत स्वतंत्र रहने के अधिकारी थे। यहाँ के शासक भी अपने राज्य को स्वतंत्र बनाये रखने के इच्छुक थे। लेकिन इन राज्यों की जनता एवं जनप्रतिनिधि इनका विलय कर वृहद राजस्थान का निर्माण करना चाहते थे। समाजवादी दल ने राममनोहर लोहिया की अध्यक्षता में 'राजस्थान आन्दोलन समिति' का गठन कर जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर एवं मत्स्य संघ को संयुक्त राजस्थान में सम्मिलित कर एक सुदृढ़ इकाई के गठन की माँग की। भारत सरकार भी इन राज्यों को मिलाकर वृहद राजस्थान का निर्माण करना चाहती थी।[18]

दिसम्बर, 1948 में रियासती विभाग के सचिव वी. पी. मेनन ने जयपुर, जोधपुर और बीकानेर के शासकों से वृहद् राजस्थान के निर्माण के सम्बन्ध में वार्ता प्रारम्भ की। 11 जनवरी, 1949 को उसने जयपुर महाराजा को वृहद् राजस्थान के लिए तैयार कर लिया। बीकानेर और जोधपुर के शासकों ने भी आनाकानी के बाद विलय के प्रारूप पर अपनी स्वीकृति दे दी। 14 जनवरी, 1949 को उदयपुर में एक जनसभा में सरदार पटेल ने वृहद् राजस्थान के निर्माण की घोषणा कर दी।

3 फरवरी, 1949 को सरदार वल्लभ भाई पटेल ने गोकुलभाई भट्ट, जयनारायण व्यास, माणिक्यलाल वर्मा और हीरालाल शास्त्री को दिल्ली में एक बैठक में बुलाया। इस बैठक में जयपुर महाराजा सवाई मानसिंह को राजस्थान का जीवन पर्यन्त राजप्रमुख, मेवाड़ महाराणा भूपालसिंह को महाराजप्रमुख, जोधपुर महाराजा हनुवन्तसिंह और कोटा महाराव भीमसिंह को वरिष्ठ उपराजप्रमुख तथा बून्दी महाराव बहादुरसिंह और डूंगरपुर महारावल लक्ष्मणसिंह को कनिष्ठ उपराजप्रमुख बनाने का निर्णय किया गया। वृहद राजस्थान की राजधानी के प्रश्न पर मतभेद होने पर एक समिति गठित की गई, जिसने जयपुर के पक्ष में अपनी राय दी। अतः जयपुर राजस्थान की राजधानी घोषित कर दी गई मगर अन्य बड़े नगरों का महत्त्व बनाये रखने के लिए हाइकोर्ट जोधपुर में, शिक्षा विभाग बीकानेर में, खनिज विभाग उदयपुर में तथा कृषि विभाग भरतपुर में रखने का निर्णय भी लिया गया।

30 मार्च, 1949 को सरदार वल्लभ भाई पटेल ने जयपुर में वृहद् राजस्थान का उद्घाटन किया। हीरालाल शास्त्री को वृहद् राजस्थान का मुख्यमंत्री मनोनीत किया गया। 7 अप्रैल, 1949 को हीरालाल शास्त्री ने अपने मंत्रिमण्डल का गठन किया, जिसमें सिद्धराज ढड्ढा (जयपुर), प्रेमनारायण माथुर, भूरेलाल बयाँ (उदयपुर), फूलचन्द बाफना, नरसिंह कच्छावा, महाराजा हनुवन्तसिंह (जोधपुर), रघुवरदयाल गोयल (बीकानेर) और वेदपाल त्यागी (कोटा) सम्मिलित थे। 30 मार्च, 1949 को वृहद् राजस्थान में अधिकांश रियासतों (कोटा, बून्दी, झालावाड़, टोंक, किशनगढ़, बाँसवाड़ा, डूँगरपुर शाहपुरा, प्रतापगढ़, मेवाड़, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, व जैसलमेर तथा कुशलगढ़ एवं लावा ठिकाने) के विलय होने के कारण 30 मार्च 'राजस्थान दिवस' के रूप में भी मनाया जाता है।[19]

पंचम चरण : संयुक्त वृहद् राजस्थान (15 मई, 1949) (वृहद् राजस्थान में मत्स्य संघ का विलय)

मत्स्य संघ के निर्माण के समय ही इसमें सम्मिलित चारों राज्यों के समक्ष यह स्पष्ट कर दिया गया कि भविष्य में इस संघ का विलय संयुक्त प्रान्त या राजस्थान में किया जा सकता है। ये संघ आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं था तथा किसान सभा एवं मेवों की गतिविधियों के कारण प्रशासन सुचारू रूप से चलाना कठिन हो रहा था। अतः वृहद् राजस्थान की निर्माण प्रक्रिया के दौरान ही 'मत्स्य संघ' के इसमें विलय के लिए वार्ता चल रही थी।

13 फरवरी, 1949 को अलवर, भरतपुर, धौलपुर व करौली के शासकों एवं मत्स्य संघ के मंत्रियों को रियासती विभाग ने दिल्ली बुलाया और 'मत्स्य संघ' के संयुक्त प्रान्त या राजस्थान में विलय के लिए वार्ता की। अलवर और करौली के शासकों ने राजस्थान में

विलय के लिए सहमति व्यक्त की। मगर भरतपुर व धौलपुर के शासक अपने राज्यों को राजस्थान में विलय के लिए सहमत नहीं हुए। 23 मार्च, 1949 को इन शासकों से वी. पी. मेनन ने पुनः वार्ता की। भरतपुर ने भी राजस्थान में विलय की सहमति दे दी। धौलपुर के शासक ने प्रजा की इच्छानुसार निर्णय लेने की बात रखी। जब ये विषय सरदार पटेल को बताया गया तो उन्होंने दोनों राज्यों भरतपुर एवं अलवर की प्रजा के इच्छानुसार निर्णय लेने की बात रखी। इसके लिये 4 अप्रैल, 1949 को शंकर राव देव की अध्यक्षता में 3 सदस्य समिति गठित की। अन्य सदस्य थे आर. के. सिंधवा और प्रभुदयाल हिम्मत सिंगका। इस समिति को एक महीने में अपनी रिपोर्ट देनी थी। प्रजा का बहुमत राजस्थान में शामिल होने का रहा। इस आधार पर समिति ने इन दोनों राज्यों को राजस्थान में मिलाने की अनुंशसा की। साथ ही यह सुझाव भी दिया कि भविष्य में जरुरत पड़ने पर पुनः प्रजा का विचार जाना जाए। इस आधार पर 1 मई, 1949 को मत्स्य संघ के राजस्थान में विलय के संबंध में प्रेस विज्ञप्ति जारी की गई।[20]

10 मई, 1949 को 'मत्स्य संघ' में सम्मिलित चारों राज्यों के शासकों ने दिल्ली में मत्स्य संघ के वृहद् राजस्थान में विलय पर अपनी स्वीकृति दे दी। विलय पत्र पर चारों राज्यों के शासकों एवं वृहद् राजस्थान के राजप्रमुख ने हस्ताक्षर किये।

15 मई, 1949 को मत्स्य संघ का प्रशासन वृहद् राजस्थान को हस्तान्तरित कर दिया गया। मत्स्य संघ के मुख्यमंत्री शोभाराम को हीरालाल शास्त्री के मंत्रिमण्डल में सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार 'वृहद् राजस्थान' के 'मत्स्य संघ' में विलय से 'संयुक्त वृहद् राजस्थान' का निर्माण हुआ।[21]

षष्ठम् चरण : सिरोही का राजस्थान में विलय (26 जनवरी, 1950)

'संयुक्त वृहद् राजस्थान' के निर्माण के पश्चात् सिरोही राज्य ही शेष राजस्थान से पृथक रहा था। अतः सिरोही के राजस्थान में विलय के प्रयास शुरू हो गए गुजरात के नेता भी सिरोही व आबू क्षेत्र को गुजरात में सम्मिलित करने के लिए प्रयासरत थे। गुजराती नेताओं का तर्क था कि आबू पर्वत पर स्थित जैन मंदिरों के दर्शनार्थ गुजराती जैन पूरे वर्ष बड़ी संख्या में पहुँचते हैं तथा आबू की संस्कृति भी गुजरात के निकट है तथा सिरोही का राजपरिवार काठियावाड़ और कच्छ के राजपरिवार से सम्बन्धित रहा है। अतः सिरोही का विलय गुजरात के साथ होना चाहिए। रियासती विभाग सरदार पटेल और गुजरात के नेताओं के प्रभाव में था, इसलिए जनता के विरोध के बावजूद रियासती विभाग ने 1 फरवरी, 1948 को सिरोही को राजपूताना एजेन्सी से हटाकर गुजरात एजेन्सी के अन्तर्गत कर दिया।[22]

सिरोही को गुजरात एजेन्सी में रखने का राजस्थान के नेताओं ने विरोध किया। उनका तर्क था कि सिरोही राज्य सदियों से राजपूताना का भाग रहा है, सिरोही राज्य में गुजराती बोलने वालों की संख्या बहुत अधिक नहीं है तथा भाषा एवं संस्कृति की दृष्टि से भी सिरोही का विलय राजस्थान में होना चाहिए। आबू पर्वत राजस्थान के शासकों का ग्रीष्मकालीन प्रवास स्थल रहा है, जहाँ उनके आवास भी बने हुए हैं। इसके अतिरिक्त राजस्थान में अन्य कोई 'हिल स्टेशन' नहीं हैं। अतः सिरोही का विलय राजस्थान में ही होना चाहिए।

हीरालाल शास्त्री ने 10 अप्रेल, 1948 को सरदार पटेल को एक पत्र लिखकर सिरोही के राजस्थान में विलय की मांग की। 18 अप्रेल, 1948 को उदयपुर में संयुक्त राजस्थान के उद्घाटन के अवसर पर राजस्थान के कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं ने पं. जवाहरलाल नेहरू से भेंट कर सिरोही का विलय राजस्थान में करने की प्रार्थना की। पं. नेहरू ने इस सम्बन्ध में सरदार पटेल को पत्र लिखकर सिरोही के सम्बन्ध में जनता की भावनाओं का ख्याल रखने का परामर्श दिया।

सिरोही के गुजरात या राजस्थान में विलय पर सहमति नहीं बनने पर गोकुलभाई भट्ट की सलाह पर सरदार पटेल ने 8 नवम्बर, 1948 को सिरोही रीजेन्सी कौंसिल से समझौता कर इसका शासन प्रबन्ध भारत सरकार के सुपुर्द कर दिया। 5 जनवरी, 1949 को भारत सरकार ने सिरोही का शासन प्रबन्ध बम्बई सरकार को सौंप दिया। सिरोही राज्य को राजस्थान में सम्मिलित करने के लिए निरन्तर आन्दोलन चल रहा था। अतः सरदार पटेल ने राजस्थान की जनता के विरोध को शान्त करने के लिए 26 जनवरी, 1950 को सिरोही राज्य को दो भागों में विभाजित करके आबू एवं देलवाड़ा तहसील बम्बई राज्य में तथा शेष सिरोही राज्य को राजस्थान में सम्मिलित कर दिया। इस निर्णय के विरुद्ध सिरोही और राजस्थान में व्यापक आन्दोलन हुआ। आन्दोलन में गोकुलभाई भट्ट और बलवन्तसिंह मेहता ने भी भाग लिया। भारत सरकार

द्वारा अपने निर्णय पर पुनर्विचार का आश्वासन देने पर ही आन्दोलन समाप्त हुआ।

1 नवम्बर, 1956 को राज्य पुनर्गठन आयोग (न्यायमूर्ति फजल अली की अध्यक्षता में गठित) की सिफारिशों के अनुसार आबू पर्वत व देलवाड़ा तहसील सहित सम्पूर्ण सिरोही राज्य का विलय राजस्थान में कर दिया गया।[23]

सप्तम चरण : वर्तमान राजस्थान (1 नवम्बर, 1956) (अजमेर मेरवाड़ा का राजस्थान में विलय)

देश की स्वतंत्रता के बाद भी अजमेर पूर्व की भांति केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत ही रहा। राजस्थान के सभी राज्यों के विलीनीकरण के बाद अजमेर के राजस्थान में विलय का प्रश्न भी उठा। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् की राजपूताना प्रांतीय सभा की सदैव यह मांग रही थी कि अजमेर मेरवाड़ा का प्रदेश भी राजस्थान में सम्मिलित हो। लेकिन अजमेर के कांग्रेस नेतृत्व ने इसे राजस्थान से अलग इकाई रखने पर ही जोर दिया। 1952 ई. में आम चुनावों के बाद हरिभाऊ उपाध्याय के नेतृत्व में बने कांग्रेस मंत्रिमण्डल ने प्रशासन की दृष्टि से छोटे राज्य बनाने का तर्क देकर अजमेर मेरवाड़ा को राजस्थान से अलग रखना चाहा। वी. पी. मेनन ने राजपूताना के सभी राज्यों के राजस्थान में विलय के बाद अजमेर के अलग रहने के औचित्य पर सवाल उठाया। राजस्थान के जननेता भी अजमेर के राजस्थान में विलय की मांग उठाते रहे।

राज्य पुनर्गठन आयोग के समक्ष जब अजमेर के विलय का प्रश्न आया तो आयोग ने अजमेर मेरवाड़ा के राजस्थान में विलय की सिफारिश की। राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों के अनुसार 1 नवम्बर, 1956 को माउण्ट आबू, देलवाड़ा तहसील तथा अजमेर मेरवाड़ा के प्रदेश का राजस्थान में विलय हो गया।[24]

राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिश के अनुसार मंदसौर जिले की मानपुरा तहसील के सुनेल टप्पा गाँव का विलय भी राजस्थान में किया गया, साथ ही कोटा जिले का सिंराजे उपविभाग मध्यप्रदेश राज्य में सम्मिलित किया गया।[25]

राजस्थान के निर्माण में विभिन्न प्रजामण्डलों के कार्यकर्ताओं और नेताओं, विशेषकर जयनारायण व्यास, माणिक्य लाल वर्मा, हीरालाल शास्त्री, गोकुललाल असावा, गोकुलभाई भट्ट का प्रमुख योगदान रहा। सरदार वल्लभभाई पटेल व उनके विभाग के सचिव वी. पी. मेनन की राजस्थान के एकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका रही।

राजस्थान राज्य निर्माण
(18 मार्च 1948 से 1 नवम्बर 1956)

क्र.स.	निर्मित संघ का नाम	निर्माण-तिथि	रियासत/राज्य जो संघ में शामिल हुए
1.	मत्स्य संघ	18 मार्च, 1948	अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली।
2.	राजस्थान संघ	25 मार्च, 1948	बांसवाड़ा, बूंदी, डूँगरपुर, झालावाड़, किशनगढ़, कोटा, प्रतापगढ़, शाहपुरा, टोंक।
3.	संयुक्त राजस्थान	18 अप्रैल, 1948	राजस्थान संघ + उदयपुर।
4.	वृहद् राजस्थान	30 मार्च, 1949	संयुक्त राजस्थान + बीकानेर, जयपुर, जैसलमेर, जोधपुर।
5.	संयुक्त वृहद् राजस्थान	10 अप्रैल, 1949	वृहद् राजस्थान + मत्स्य संघ
6.	राजस्थान संघ	26 जनवरी, 1950	संयुक्त वृहद् राजस्थान + सिरोही।
7.	राजस्थान	1 नवम्बर, 1956	राजस्थान + अजमेर, आबू एवं सुनेल टप्पा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. *उम्मेदसिंह इन्दा, राजस्थान में स्वाधीनता संघर्ष, राज्य शासन एवं राजनीति, प्रथम संस्करण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जयपुर, 2005, पृ.82*
2. *हुकम चन्द जैन, डॉ. नारायण माली, राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लपीडिया, तृतीय संस्करण, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, 2012, पृ. 726*
3. *रामप्रसाद व्यास, आधुनिक राजस्थान का वृहत इतिहास, खण्ड-द्वितीय, तृतीय संस्करण, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2010, पृ. 375*
4. *बी.एल. पानगड़िया, राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम, तेरहवां संस्करण, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2009, पृ. 114-115*
5. *हुकम चन्द जैन, डॉ. नारायण माली, राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लपीडिया, तृतीय संस्करण, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, 2012, पृ. 727*
6. *उपरोक्त, पृ. 728*
7. *उपरोक्त, पृ. 729*
8. *वी.पी. मेनन, द स्टोरी ऑफ द इन्टीग्रेशन ऑफ द इंडियन स्टेट्स, पृ. 175*
9. *उपरोक्त, पृ. 176*
10. *हुकम चन्द जैन, डॉ. नारायण माली, राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लपीडिया, तृतीय संस्करण, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, 2012, पृ. 729*
11. *वी.पी. मेनन, द स्टोरी ऑफ द इन्टीग्रेश ऑफ द इंडियन स्टेट्स, पृ. 176*
12. *उम्मेदसिंह इन्दा, राजस्थान में स्वाधीनता संघर्ष, राज्य शासन एवं राजनीति, प्रथम संस्करण, राजस्थानी ग्रन्थागार, जयपुर, 2005, पृ. 83*
13. *हुकम चन्द जैन, डॉ. नारायण माली, राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लपीडिया, तृतीय संस्करण, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, 2012, पृ. 730-731*
14. *वी.पी. मेनन, द स्टोरी ऑफ द इन्टीग्रेश ऑफ द इंडियन स्टेट्स, पृ. 179*
15. *वी.पी. मेनन, द स्टोरी ऑफ द इन्टीग्रेश ऑफ द इंडियन स्टेट्स, पृ. 180*
16. *हुकम चन्द जैन, डॉ. नारायण माली, राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लपीडिया, तृतीय संस्करण, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, 2012, पृ. 733*
17. *वी.पी. मेनन, द स्टोरी ऑफ द इन्टीग्रेश ऑफ द इंडियन स्टेट्स, पृ. 181*
18. *हुकम चन्द जैन, डॉ. नारायण माली, राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लपीडिया, तृतीय संस्करण, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, 2012, पृ. 734*
19. *हुकम चन्द जैन, डॉ.नारायण माली, राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लपीडिया, तृतीय संस्करण, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, 2012, पृ. 735*
20. *वी.पी. मेनन, द स्टोरी ऑफ द इन्टीग्रेश ऑफ द इंडियन स्टेट्स, पृ. 184*
21. *हुकम चन्द जैन, डॉ. नारायण माली, राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लपीडिया, तृतीय संस्करण, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, 2012, पृ. 736*
22. *वी.पी. मेनन, द स्टोरी ऑफ द इन्टीग्रेश ऑफ द इंडियन स्टेट्स, पृ. 185-186*
23. *हुकम चन्द जैन, डॉ. नारायण माली, राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लपीडिया, तृतीय संस्करण, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, 2012, पृ. 738*
24. *बी.एल. पानगड़िया, राजस्थान के स्वतंत्रता संग्राम, तेरहवां संस्करण, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2009, पृ. 136*
25. *हुकम चन्द जैन, डॉ. नारायण माली, राजस्थान इतिहास एवं संस्कृति एनसाइक्लपीडिया, तृतीय संस्करण, जैन प्रकाशन मन्दिर, जयपुर, 2012, पृ. 740*

मनीषा कुलश्रेष्ठ के साहित्य का लोकपक्ष

आरती अमरावत
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक से साहित्य में पदार्पण करने वाली बहुचर्चित कथाकार मनीषा कुलश्रेष्ठ का कथा–साहित्य अन्य विषयों के साथ लोक संस्कृति की बहुरंगी छटा लिए हुए हैं। इनकी कहानियों का विस्तार नागर से लोकजीवन तक जाता है। लेखिका मूलतः राजस्थान की है इसलिए यहाँ की लोक संस्कृति, लोक प्रथाओं, लोक परम्पराओं तथा लोक–जीवन के विविध पक्षों की झलक इनके साहित्य में मिलती है। कठपुतलियाँ, कुरजां, स्वांग, लीलण, एक ढोलो दूजी मरवण... तीजो कसूमल रंग आदि कहानियों के तो शीर्षक भी लोक के रंगों में रंगे हुए हैं।

संकेताक्षर : *लोक, लोक नृत्य, लोकगीत, परिवेश, संस्कृति, तीज–त्यौहार, तीजणियाँ, मिनख, बहुरूपिया, कालबेलियाँ, विलुप्त, कठपुतलियाँ।*

लोक शब्द संस्कृत के लोक दर्शन धातु से 'धञ' प्रत्यय से निष्पन्न हुआ है। लोक का अर्थ है देखने वाला। लोक का अभिप्राय उस समस्त जनसमूह से है जो किसी क्षेत्र में निवास करता है। ऋग्वेद में लोक शब्द 'जन' के पर्यायवाची के रूप में लिया गया है। पुरुषसूक्त, अथर्ववेद, महाभारत, श्रीमद् भगवद्गीता आदि में भी लोक शब्द का प्रयोग हुआ है। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र में लोक सटीक रूप में व्यक्त हुआ है। हिन्दी साहित्य में परम्परागत रूप में सामान्य जनता के अर्थ में लोक शब्द का प्रयोग किया जाता है। वीरगाथा काल से साहित्य में लोक शब्द व्यक्त होता रहा है।

'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका' के अनुसार ''आदिम समाज में उसके समस्त सदस्य ही लोक (फोक) होते हैं और विस्तृत अर्थ में तो इस शब्द से सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को भी अभिहित किया जा सकता है।''[1] सत्येन्द्र के अनुसार ''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य चेतना, पांडित्य अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।''[2] ऐसे लोक की अभिव्यक्त में जो तत्त्व मिलते हैं वे ही लोक पक्ष के अन्तर्गत आते हैं। समग्र रूप में वह जनसमूह जो साज–सज्जा, बाहरी दिखावे, सभ्यता, परिष्कार से दूर मानव मनोवृत्तियों वाला हो, उनके जीवन की संस्कृति के विभिन्न पहलू लोकजीवन के अन्तर्गत आते हैं। इसका क्षेत्र व्यापक है इसके अन्तर्गत लोक कथाएँ, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकनाट्य लोकोक्तियाँ, भाषा, वेशभूषा आदि आते हैं।

किसी अंचल या क्षेत्र विशेष के निवासियों के पारम्परिक त्यौहार, रीति–रिवाज, परम्पराएँ, लोकगीत, लोकनृत्य, लोक कला, आदि के द्वारा लोक जीवन अभिव्यक्त होता है। लोक संस्कृति किसी सभ्यता का दर्पण है अर्थात् किसी देश के निवासियों की लोक संस्कृति तभी भली–भाँति जानी जा सकती है जब उनकी सभ्यता का पूर्ण परिज्ञान हो। लोक संस्कृति, लोक साहित्य में विविध रूपों के अभिव्यक्त होती है। साहित्य के लोक पक्ष में लोक जीवन के विविध पहलुओं पर विचार किया जाता है।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक से हिन्दी साहित्य में पदार्पण करने वाली बहुचर्चित युवा कथाकार मनीषा कुलश्रेष्ठ का साहित्य विविध विषयों के साथ लोक की बहुरंगी छटा लिए हुए हैं। मनीषा के कथा–साहित्य में यत्र–तत्र लोक जीवन

की अभिव्यक्ति हुई है। लोक संस्कृति के चित्रण के साथ ही उन्होंने उस पर मंडरा रहे संकट पर भी चिंता व्यक्त की है। इनका साहित्य लोक स्मृतियों को स्थापित करता है तथा इन्हें नवीन अर्थों, प्रसंगों एवं नवीन संदर्भों में प्रस्तुत करने की क्षमता रखता है।

मनीषा का साहित्य विषय वैविध्य लिए हुए है कहीं वे देश-विदेश के अत्याधुनिक विषयों पर लिखती है तो कहीं ठेठ सुदूर गाँवों का लोक जीवन उनकी कहानियों में चित्रित होता है। इनकी कहानियों का विस्तार नागर से लोक जीवन की ओर जाता है और पाठक को सहज ही ये आभास करवा देता है कि लोक-जीवन से उनका गहरा जुड़ाव है। लेखिका कठपुतलियाँ, कुरजां, स्वांग, एक ढोलो दूजी मरवण.... तीजो कसूमल रंग, लीलण आदि कहानियों के शीर्षक भी राजस्थान की लोक के रंगों में रंगे हुए हैं।

मनीषा की कहानियों के संबंध में कहा गया है कि ''ये रचनाएँ पाठक को अपने साथ साथ धीरे-धीरे एक ऐसे अनुभव जगत में ले जाती है, जहाँ उसकी चेतना परिधि पर प्रेम, स्वप्न, लोक रंग, और द्वन्द्व निरंतर अपनी गत्यात्मकता के साथ उपस्थित रहते हैं।''[3]

किसी भी समाज के पर्व त्यौहार, संस्कार, रुढ़ियाँ, परिवेश, वेशभूषा, अंधविश्वास, कलाएँ, रीति रिवाज, सभी लोक संस्कृति के आधारभूत तत्त्व होते हैं। लेखिका ने अपनी कहानियों में राजस्थान की संस्कृति, भाषा, परिवेश, लोकगीत, लोक नृत्य, वेशभूषा आदि का वर्णन किया है।

'कठपुतलियाँ' कहानी राजस्थानी सांस्कृतिक परिवेश के रंग में रंगी हुई है। सुगना की वेशभूषा, रहन-सहन, भाषा सभी में लोक की अमिट छाया है। प्राकृतिक मरुस्थलीय सौन्दर्य के प्रतीक के रूप में सुगना का चित्रण लेखिका ने कुछ इस प्रकार किया है ''रेतीले धोरों से उठती-ढहती देह की लहरें। लम्बी कद-काठी, सुता हुआ पेट, उस पर गहरे कुएँ सी नाभि। मीलों दूर से सिर पर एक के ऊपर एक तीन गगरियाँ उठाकर लाने के अभ्यास से चाल की धज देखते ही बनती थी।''[4] लेखिका ने इस कहानी में कई जगह राजस्थानी भाषा में संवाद प्रस्तुत किए हैं :-

''ओलखे कोनी कई ? (पहचानती नहीं क्या) मनख - माणस की भारी आवाज सुन सुगना ने झट से गीला घूंघट काढ लिया।''[5]

इस कहानी में कहीं राजस्थानी खान पान काचरे फली की सब्जी उल्लेख है तो कहीं इडाणी पर दो-तीन चरी रखकर पानी लेने जाती स्त्रियों का, कहीं जैसलमेर के किले का वर्णन है तो कहीं कुलधरा गाँव का। सभी जगह राजस्थानी लोक की आभा छिटकी हुई है। राजस्थानी विवाह के रीति रिवाज भी सुगना की कल्पना से दर्शाये गये हैं। मरुस्थलीय इलाके की जातिगत पंचायत का भी वर्णन किया गया है। पूरी कहानी ग्राम्य जीवन, उसकी सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों और अंधविश्वासों के साथ, सुगना की जीवन के प्रति आस्था उत्पन्न करती है।

'कुरजां' कहानी भी राजस्थानी पृष्ठभूमि की है। यह एक ऐसी महिला की संघर्षगाथा है जिसे गाँव वाले डाकण कह कर गाँव से बाहर रहने के लिए विवश कर देते हैं। ग्रामीण लोक में फैले अंधविश्वासों का वर्णन इस कहानी में किया गया है। राजस्थान की संस्कृति, परिवेश, खान-पान, भाषा, रीतिरिवाजों का चित्रण लेखिका ने बड़ी बारीकी से किया है क्योंकि उनकी जन्मभूमि राजस्थान है यहाँ के 'लोक' के मध्य उन्होंने अपना बचपन जिया है।

'स्वांग' कहानी में एक लोक कलाकार की अन्तर्व्यथा का वर्णन किया गया है। लोक कलाएँ हमारी संस्कृति की पहचान है लेकिन अधांनुकरण की दौड़ में हम अपनी जड़ों से दूर होते जा रहे हैं। लेखिका ने इस कहानी में लोक कलाओं में जीवन सौंदर्य को उकेरा है। वर्तमान भौतिकवादी युग में मनुष्य के सामाजिक मान्यताओं, मानवीय संवेदनाओं, परम्पराओं, मूल्यों का विघटन हो रहा है, हम अपनी लोक संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। मनीषा ने इस कहानी में गफूरिया के माध्यम से लोक कलाकारों की मनोव्यथा व विलुप्त होती लोक कलाओं के प्रति अपनी चिंता व्यक्त की है। पयर्टन विभाग द्वारा आयोजित मेले में बहुरूपिया गफूरिया अपनी कला के प्रदर्शन के पश्चात् बख्शीश मिलने पर कहता है- ''आप लोगों की दया सूं ई म्हारी कला जीवित है, इस साल पेले राष्ट्रपति सम्मान देवा रे बाद, कोई चिड़ी रो पूत पूछता कोनी आयो कि गफूरिया जीवतो है कि मर ग्यो।''[6] लोक कलाकार के ये शब्द लोक कलाओं की छीजती दुनिया का संवेदनशील चित्रण करवाते हैं। मनीषा ने 'स्वांग' द्वारा विलुप्त होती लोक कला व उपेक्षित लोक कलाकारों के प्रति गहन संवेदना अभिव्यक्त की है। ये 'हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है इसलिए इन कलाओं को बचाने का प्रयास ही हमारी संस्कृति को बचाने का प्रयास है।

लेखिका ने अपनी कई कहानियों में उस क्षेत्र विशेष के या किसी समाज, जाति विशेष के लोगों के रीति रिवाजों, पर्व त्यौहारों, कला, मान्यताओं आदि का वर्णन किया है। लोक संस्कृति, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकसंगीत आदि द्वारा भी अभिव्यक्त होती है।

'स्वांग' कहानी में लेखिका ने मेले के वर्णन में कसूमल घाघरों और हरी-पीली लहरिया की ओढ़नी ओढ़े औरतों का वर्णन किया है जो लोकगीत गाती हुई झूले झूल रही है।

''म्हारी बनी ने झूलण दीजो,
बना छैल भंवर सा।।''

राजस्थान के तीज के त्यौहारों पर तीजणियों द्वारा ये लोकगीत गाया जाता है। इसी कहानी के एक दृश्य ने कालबेलिया लोगों का मनोरंजन करते हुए गीत गाते हैं-

'रे काल्यो कूद पड्यो मेला में
सायकल पंचर कर लायो ।।''

इन गीतों के माध्यम से लोक संस्कृति की झलक मिलती है।

''कुरजां ए म्हारा भंवर मिला दे नी।''

जैसे लोकगीतों को अपने कथा साहित्य में स्थान देकर मनीषा कुलश्रेष्ठ ने लोक-संस्कृति को व्यक्त किया है।

इन लोक गीतों के साथ ही लेखिका ने राजस्थान के मेले, पर्व, उत्सव आदि का भी कई जगह चित्रण किया है। 'स्वांग' कहानी में आयोजित मेले में बहुरूपिये, गैर, घूमर, भवाई, भोपा-भोपी, कालबेलिया नर्तकों, मांगणियार, लंगा, लोक गायकों की टोलियाँ आदि का वर्णन किया है।

'म्हारो अस्सी कली को घाघरों' की टेक पर कालबेलियां नृत्य कला की बारीकियों का वर्णन किया है जिससे नृत्य के दृश्य हमारे सामने सजीव हो उठते हैं।

अंत में यह कहना समीचीन होगी कि मनीषा कुलश्रेष्ठ का कथा साहित्य नागर से लोक की ओर जाता है। इनका कथा साहित्य किसी पूर्वाग्रहों के ढाँचे में नहीं बंधा हुआ है। लोक का वर्णन भी इतनी सूक्ष्मता से किया है जैसे लेखिका ने वो नृत्य जीवन जिया है या करीब से देखा है। 'वर्तमान के वैज्ञानिक युग में जहाँ अत्याधुनिक बनने की होड़ चल रही है ऐसे में लेखिका ने अपने साहित्य में लोक संस्कृति का वर्णन करते हुए विलुप्त होती कलाओं, रीति रिवाजों, पर्व त्यौहारों आदि पर चिंता व्यक्त कर अपनी संवेदनाशीलता का परिचय दिया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *हिन्दी साहित्य कोश, धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ संख्या : 591*
2. *लोक साहित्य विज्ञान, डॉ. सत्येन्द्र*
3. *लोक जीवन और आधुनिकता, रूपसिंह चंदेल (पुस्तक समीक्षा) 20 अगस्त 2006*
4. *कठपुतलियाँ कहानी*
5. *कठपुतलियाँ संग्रह, पृष्ठ संख्या : 132*

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में 'मालवा अखबार' की भूमिका

डॉ. मनीष कुमार दासौंधी
बडवानी (मध्यप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मालवा ही नही बल्कि हिन्दुस्तान में होने वाली गतिविधियां, जनता की भागीदारी, विद्रोहियों द्वारा की जाने वाली लूटपाट, जन आक्रोश, विदेशों के समाचार, विज्ञापन और रियासतदारों की नीतियां तथा रेंजीडेन्टों को अंग्रेजी हुकूमत सें मिलनें वाले संदेशों का विस्तृत ब्यौरा इन्दौर से 06 जनवरी 1849 से प्रारंभ साप्ताहिक हिन्दी एवं उर्दू में प्रकाशित मालवा अखबार ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

संकेताक्षर : *मालवा अखबार एवं भारतीय स्वतंत्रता संग्राम।*

जनता की जागृति में समाचार पत्रों ने जितना हाथ बंटाया है, यह बात संसार के समाचार पत्रों के अवलोकन से स्पष्टतया प्रतीत होती है। मालवा अखबार लिखता है कि– **जब तक सिपाही की तलवार म्यान में और अखबार वालों की जुबान मुंह में है तभी तक अच्छा है।**

स्वतंत्रता संग्राम की अन्य बातों से पहले मालवा अखबार नाम के इस पत्र का कुछ परिचय दे देना आवश्यक है, जो मालवा का मुखपत्र था। 06 जनवरी 1857 ई. के अखबार में लिखा है कि **बडी खुशी से इस अखबार का आठंवा साल भी पूरा हुआ** अर्थात् यह अखबार 06 जनवरी 1849 ई. में प्रारंभ हुआ था। यह नागरी (हिन्दी) और उर्दू दोनों में इन्दौर से छपता था। यह साप्ताहिक पत्र था। श्री नटनागर शोध संस्थान, सीतामउ में यह अखबार 05 फरवरी 1856 ई. सें 30 दिसम्बर 1856 ई. तक तथा 06 जनवरी 1857 ई. से 30 जून 1857 ई. तक और 21 दिसम्बर 1859 ई. से 13 अगस्त 1862 ई. तक के उपलब्ध है। ये अखबार मालवा ही नहीं बल्कि हिन्दुस्तान में होने वाली गतिविधियां, जनता की भागीदारी, विद्रोहियों द्वारा की जाने वाली लूटपाट, जन आक्रोश, विदेशों के समाचार, विज्ञापन और रियासतदारों की नीतियां तथा रेंजीडेन्टों को अंग्रेजी हुकूमत सें मिलनें वाले संदेशों का विस्तृत ब्यौरा इन अखबारों में उपलब्ध है।

मालवा के इन अखबारों में दिल्ली, लखनउ, बम्बई, इन्दौर, जावरा, अवध, देवास, भोपाल, ग्वालियर, नीमच, मन्दसौर, उज्जैन, पंजाब, रामपुर, रतलाम, जोबट, पूना, कलकत्ता, मद्रास, छतरपुर, बिजावर, नागोद, महेश्वर, सैलाना, अहमदनगर, काश्मीर, हैदराबाद, भडौच, पटना, फिरोजपुर, जयपुर, पटियाला, मैसूर, करांची, रंगून, लाहौर, काबुल, पेशावर तथा हिरात रंगून आदि भारत व विदेश के क्षेत्रों की महान विद्रोह कालीन राजनैतिक, सामरिक, सामाजिक व आर्थिक आदि सभी विभिन्न परिस्थितियों पर भरपूर सुस्पष्ट प्रकाश पडता है। अतः यह आवश्यक है कि तत्कालीन इतिहास लेखन के संदर्भ में इन अखबारों का गहन तथा व्यापक अध्ययन करनें की जरूरत है। इन अखबारों के संकलन का तत्कालीन ऐतिहासिक शोध करनें वालों तथा अन्य इतिहास प्रेमियों के लिये बहुत उपयोगी तथा महत्वपूर्ण है।

26 मई 1857 ई. में अखबार लिखता है कि जनता को यह आश्चर्य है कि दिल्ली में हो रहें दंगें का कोई समाचार मालवा अखबार में क्यों नही लिखा जाता। अखबार का कहना है कि इन बातों को हम क्या लिखें जनाब साफ तो यह है कि दिल्ली शहर में रहनें वाले लोग तबाह हो गयें है, आजकल यहां के लोगों पर जो गुजरती है सों ईश्वर ही खूब जानता है । कुछ बदमाशों ने जिनके पास दया, धर्म कही नही फटकता ऐसा मनसूब किया कि अपनें फंद फरेब सें राजा लोगों को भडकाकर फसाद करें।[1]

17 मार्च 1857 ई. के अखबार में लिखा है कि– सियालकोट और लखनउ के अखबार सें मालूम होता है कि कोई शख्स चौकीदार का भेष धरकर लखनउ, आगरा सूबा मैनपुरी आया था और वहां के चौकीदार को दो–दो पूडियाँ दे गया और कह गया कि इन पूडियों को अच्छी तरह रखना ये सरकार फिर तुमसें लेगी और अपनें घर पूडी पकाकर दूसरें गांव भेजना और वें गांव वालें इस तरह से आगे को भेज दें...अखबार आगे लिखता है कि साहबों ये कुछ वहीं नही हुआ मालवें में रोटियां बंटी और बुंदेलखंड में आटें की गोंलियां मालूम नही यें क्या है ।[2]

21 अप्रैल 1857 ई. के अखबार में लिखता है कि– बैरकपुर की फौज के फसाद नें ऐसा शोर मचा रखा है कि अब संथाल फसाद की जगह यें गुल–गुला उठा है। खुदा खैर करें हिन्दुस्तान पर क्या साढें – साती है कि रोंज एक नयी मुसीबत आती है। भगवान सबकी इज्जत और आबरू रखें। अब ऐसा सुनतें है कि सरकार नें उस फौज कों मौकूफ किया और हथियार भी उनसें ले लियें।[3]

05 मई 1857 ई. के अखबार में लिखा है कि– ईश्वर याद आता है और इसी सबब सें चुपकें रहना बकनें से अच्छा है, नही तों फिर बडी मुश्किल पडती है। मुंह के उपर मुंहर लगा देनी चाहिए नही तो फिर जबान काटी जाती है। हम अपनें दोस्तों को बेखबर कहतें है कि जब तक सिपाही की तलवार म्यान में और अखबार वालों की जबान मुँह में है तभी तक अच्छा है।[4]

19 मई 1857 ई. के अखबार में लिखा है कि– एक अंग्रेजी अखबार में लिखा था कि दिल्ली के बादशाह को हम खिलअत नही देते और अगर गवर्नर जनरल बहादुर जबरदस्ती करेंगे तो भी यें मुकद्दमा भी पारलियामेंन्ट में होगा। करनाल की फौज अंग्रेजी, जों कि अंबाला से आती थी, करनाल में पहुंच गई। यकीन है कि एक –दों रोज में दिल्ली में पहुँचकर मैदान साफ करेंगी। जनरल एनसन साहब बहादुर भी रवाना हुए है।[5]

विभिन्न स्थानों के बारें में अखबार में काफी कुछ लिखा है, किन्तु यहां हम मुख्य–मुख्य स्थानों की चर्चा करेंगे–

अलीगढ – यह शहर भी शायद पुरबियों ने ले लिया है और यहाँ की डाक भी बंद हो गई है। कुछ फिक्र की बात नही आगरा तक वों नही आ सकतें। यहां फौज बहुत है ।[6]

दिल्ली– ऐसा सुनतें है कि दिल्ली के बादशाह नें कुछ सवार जींद के राजा के पास भेजे थें कि तू कुछ हमारी मदद करें तों अंग्रेजों को निकाल दें, वों उस वक्त फौज की कवायद कर रहा था। उसनें सवारों को मरवा डाला अगर यें बात पक्की है तो सरकार अग्रेजों को 12 लाख रूपयें साल की बचत होगी। वाजें लोग कहतें है कि दिल्ली के बादशाह का खत आगरें में आया उसमें लिखा था कि हमारा कुछ इखतियार नही है पुरबियें लोग जबरदस्ती करतें है।[7]

हिसार– यहाँ भी बदमाशों नें खूब हाथ साफ किया रईत को लूट लिया और साहब लोगों को भी मारा, आग लगा दी।

नीमच– इसकें संबंध में अखबार लिखता है अफसोस है कि यहां भी फसाद हुआ बंगाल हातें प्यादों की रेजीमेंट फिर गई (बदल गई) साहब लोंगों के बंगलें जला दियें, छावनी को लूट लिया, डाकघर में घुसकर आग लगा दी, मगर साहब लोग बच गयें और बदमाश लोग दंगा करते हुए ऐसा सुनते है कि निम्बाहेडा के रास्तें होते हुए दिल्ली की तरफ गये। निम्बाहेडा की फौज उनसे लडी, जब यें भागें तब उन्होने कस्बे को खूब लूटा। नसीराबाद का फसाद जाता रहा बदमाश लोग दिल्ली को गयें हमारें पास पक्की खबर है कि जो तोंपे वो ले गये थें, उनके संग न चल सकी और रास्तें में छोड गयें। बहुत से लोग नीमच सें भाग कर कुछ तो मंदसौर और कुछ मल्हारगढ चले गयें। ऐसा सुनतें है कि मेवातियों नें मन्दसौर लूट लिया। मल्हारगढ में बाजे लोगों ने लूट मचाई थी, मगर अब चैन–चान है नवाब साहब जावरा वाले ने अपनें इलाकें में बंदोबस्त कर रखा है। नीमच से जब बदमाश चले गये तो साहब लोगों नें फिर बंदोबस्त किया।[8]

महिदपुर– तीन सौ सवार कटिजेन्ट महिदपुर के नीमच के बदमाशों को सजा देने वास्तें गयें थें जब ये वहां से आगें बढें, शनि नें ऐसा जोर किया कि इनके मगजों में भी खोप समा गया, सुनतें है कि रिसालदार जों कि बहुत होशियार था उन्होंनें इनको बहुत समझाया पहलें उन्होंनें इस पर ही हाथ साफ किया और फिर दो अंग्रेजी अफसरों को मार डाला और वहां सें महिदपुर को गयें और वहां के प्यादों की रेजीमेंन्ट को मिलनें वास्तें कहा...किन्तु बडी खुशी की बात कि प्यादों की रेजीमेन्ट नही फिरी ।[9]

26 मई 1857 ई. के अखबार में लिखा है, कि बहुत सें लोग इस देश के पूछतें है कि इस अखबार में कुछ हाल फौज का नही लिखा जाता और दिल्ली के दंगें का कुछ भी जिक्र नही देखनें में आता। हम उनकों कहतें है

कि इन बातों को हम क्या लिखें जवाब साफ तो यह है कि दिल्ली शहर जहां कि बहुत अच्छें–अच्छें प्राणी बसतें थें तबाह हो गयें...। अबल यें चिंगारी मेरठ के मुकाम में भडकी थी जितनें साहब लोग थें, सब मारें गयें, बंगलें जल गयें मगर वहां के तोपवालों नें इनको हटा दिया वहां सें ये लोग दिल्ली में आयें और अपनें भाईयों को भडका कर फसाद किया... साहब लोग मारें गयें और पुरबियों ने दिल्ली के बादशाह से मदद मांगी वहां से इन्कार हुआ और **उन्होनें कहां कि हमारी और सरकार अग्रेजी की दोस्ती है** यें बात कभी न होगी यहां से उलटे गयें और बलीएहेद को तख्त पर बिठाकर तोंपें सलामी की छोडी...साहब लोगों ने हाल देखा बहुत घबरायें हिन्दुस्तानी कपडें पहनकर मेरठ कों आये और वहां एक झोपडें में रहतें है। दिल्ली का रास्ता तार डाक वगैरा सब बंद है। जब ये खबर आगरें में पहुंची तो लेफिटीनेंट गवर्नर बहादुर ने फौज को सब तरफ से रवाना होने का हुक्म दिया...जो कोई जागीरदार इस वक्त फिरेगा उसकी जागीर जब्त होगी और ऐसे जागीरदार को जो कि हमारें ताबेदार रहेंगे उनको मिलेगा। मुल्क कानून बंद हो गया और फौज के कानून से बंदोबस्त होगा।[10]

02 जून 1857 उत्तर और पश्चिम जिलें की खबरें– हम यह जानतें है कि हमारें अखबार मोल लेने वालों को दिल्ली की खबर सुननें का बडा शौक है मगर क्या करें कि हमकों पक्का हाल मालूम नही। मेकजीन उडनें की खबर पक्की है मदरसा, गिरजाघर, सिकंदर साहब की कोठी, अमन सुरखा की हवेली और आसपास के मकान सब खण्डहर हो गयें। ये मालूम हुआ है कि उन्होंनें शहर में लूट मचाई है यकीन है कि जनरल एनसन साहब बहादुर बडी फौज लेकर पहुंचें होंगे और लोगों को इस अजाब से बचावेंगे...ऐसा सुनतें है कि फिरोजपुर और मैनपुरी में ऐसा ही फसाद हुआ था मगर अब खुशी का मुकाम है ।[11]

अखबार आगे लिखता है, कि ऐसा सुनतें है कि दिल्ली वाली फौज ने मेरठ पर चढाई करनी चाही थी मगर उनका मतलब नही निकला। पंजाब में भी साहब लोंगों ने खूब बंदोबस्त कर रखा है अवध में खूब बन्दोबस्त है अच्छी तरह से दिन लोग काटतें है। अयोध्या से चिट्ठी आई वहां भी अमन चैन मालूम होता है। मालूम नही कि तिलंगों ने अपनें बचानें की क्या तदबीर की है। कई तरफ से फौज रवाना हो चुकी है मद्रास से भी फौज आती है। कलकत्तें से फौज उत्तर और पश्चिम दिशा को आती है। इरान के युद्ध से जो फौज बम्बई आयी थी वो भी इस तरफ आ रही है।... इटावा में जंगी कानून जारी हुआ। 19–20 तारीख के परचें आये उनमें ये था कि मुरादाबाद में जंगी कानून जारी हुआ। मद्रास से आगरें को तोपें और सवार रवाना हुए ।[12]

राजपूतानें वालें राजा नें सरकार की बडी मदद की। फोर्ड साहब बहादुर गुडगांव के कलेक्टर नें जब ये खबर पाई कि थोडें से बदमाश गुडगांव को जाते है फॉरन 14 सवारों से उनके पीछे हुए और दिल्ली की तरफ 7 कोस तक पीछा किया दो सवार और घोडें उनके पकड लिए बाकी भाग गयें।[13]

ग्वालियर में अमन अमान है 25 वीं तारीख को ग्वालियर की पहली पलटन इटावा में पहुंची और वहां बंगलें जले हुए पायें। यहां का खजाना तिलंगों के हाथ लगा था, मगर 20 हजार रूपयें उनमें से मिल गयें। 26 वीं को कमाण्डर इन चीफ करनाल में दाखिल होंगे तोपों का इन्तजार देख रहें है। गुजरों ने मुजफ्फर नगर की डाक रोक रखी है। मेरठ को यहां से फौज गई सहारनपुर में सब ठीक है। गाजीपुर में चैन चान है मुरादाबाद और बिजनौर के साहब लोगों को कुछ बदमाश मिलें थें उनसें असबाब छीनकर मेरठ की ओर रवाना किया। बुलंदशहर में 26 तारीख तक चैन चान रहा। मेरठ की डाक खोल दी। रामपुर के थोडें से सवार खुरजा लेने वास्तें गयें है। बिजली की डाक (टेलीफोन) में हमारें पास खबर आई कि कुछ फौज मेरठ से दिल्ली की तरफ जाती थी और दिल्ली वालों की फौज मेरठ को आती थी। गाजीनगर (गाजियाबाद) जों दिल्ली से सात कोस पर है दोनो का सामना हुआ सरकार फौज ने फतह पाई...।[14]

इन्दौर– यहां सब तरफ से चैन चान है।

भोपाल– यहां के अखबार से मालूम हुआ कि यहां भी अमन चैन है।

16 जून 1857 के अखबार में लिखा है, कि जावरा के खतों से मालूम हुआ कि नवाब साहब बहादुर नें अपनें इलाकें का अच्छा बन्दोबस्त रखा है।

नीमच– इस तरफ के खतों से मालूम हुआ कि कप्तान लाइड साहब बहादुर नें मैम और साहब लोगों के साथ आकर फिर इस जगह का बंदोबस्त कर लिया और अब वहां की फौज का दंगा बिल्कुल नही रहा। डाक बराबर चलती है।

महिदपुर– मेजर टिमन साहब बहादुर कप्तानमील साहब को साथ लेकर पाटन सें महिदपुर को आयें कंटजंट की फौज अपनें जी से उनकी ताबेदार है।

आगर– यहां की चिट्ठियों से मालूम होता है कि वहां अब तक गुलबय दे का नाम भी नही है।

छतरपुर– छतरपुर की रानी साहेब से साहब लोग फौज लेकर नयें गांव को गयें और उसका बन्दोबस्त करकर महोबा के तरफ रवाना हुए...नयें गांव की छावनी के बदमाश झांसी को गयें है ।[15]

23 जून 1857 को अखबार लिखता है, कि अंग्रेजी अखबार के देखनें से मालूम हुआ कि औरंगाबाद में निजाम की पलटन में फसाद हो गया और जनरल गुडवर्न साहब उसके दबानें के वास्तें रवाना हुए।

भरतपुर– बडें अफसोस की बात है कि यहां की फौज नें नमक हरामी की। जैकसन साहब बहादुर नीमच की फसाद दबानें के वास्तें इस फौज को ले गयें थें जब रास्तें में पहुंचें तो फौज फिरनी शुरू हो गई थी। फौज नें लडनें से मना कर दिया। जैकसन उल्टें पाँव भरतपुर लौटा ।[16]

लखनउ– यहां भी फसाद हुआ था परन्तु सर हेनरी लारेन्स साहब बहादुर के सीबी ने सब बिठा दिया। कानपुर से फौज रवाना हुई बहुत से बदमाशों को फांसी हुई ।[17]

पंजाब– सरजान लारेंन्स साहब बहादुर चीफ कमीश्नर पंजाब ने बंगाल हातें के पलटन के सिपाइयों को खबर देने वास्तें एक इश्तहार जारी किया था उसमें लिखा था–सिपाइयों देखों तुमकों मालूम है कि बंगाल हाते के बहुत से सवार और प्यादों नें फिरोजपुर और दिल्ली में नमकहरामी की और तुमकों खूब मालूम है कि फिरोजपुर वालों को सजा मिली। दिल्ली के वास्तें फौज जमा होती है। मैं तुमकों नसीहतकर्ता हूँ कि नमकहलाल रहों अपनें बाप–दादा के माफिक काम करों। सीधें रास्तें चलों। सरकार ने कुल रें वास्तें बडी मेहनत की है। बूढेंपन में तुमकों पेंशन दी है। कौन–सें बादशाह के वक्त में तुमनें ऐसी चैन की है। देखों सिपाइयों जो ताबेदार रहों तो इनाम पावोंगे नही तो धक्कें खावोंगे। हम किसी के मजहब में दखल नही देते न तुम्हारें पूजा सें काम न मुसलमानों के नमाज से काम हम दोनों को नही समझतें।[18]

मालवा– यहां के अखबार से मालूम हुआ कि गवर्नर जनरल साहब के हुक्म से फौज के हथियार ले लिए है और उनसें कह दिया कि थोडें दिन बाद फिर तुमकों मिलेंगे कुछ फिक्र मत करों तनखा बराबर मिलती जावेंगी ।[19]

नागोद (रीवा)– यहां के असिस्टेंटी से बुन्देलखण्ड के रईसों के नाम, खत गयें है कि सदाशिव नारायण पहरूलावाला सरकार से फिरा है और बदमाशों नें उसें झांसी का राजा बनाया कोई उसका साथ न देंवें और अपना बन्दोबस्त कर लेंवें ।[20]

शाहजादा फिरोजशाह– शाहजादा फिरोजशाह जिसकी घोषणाओं से प्रभावित होकर उसकी सेना में 18000 सैनिक हो गयें थें, गुराडियां गांव मंदसौर में बिग्रेडियर सी. एस. स्टुअर्ट के साथ लडे गयें युद्ध में उसकी हार हुई और वह अपनें 2000 साथियों के साथ बच निकलकर उत्तरप्रदेश की ओर चला गया था उस पर भी मालवा अखबार अपनी दृष्टि रखते हुए कहता है।

21 सितम्बर 1859 ई. अंग्रेजी अखबारों से मालूम होता है कि फिरोजशाह इन दिनों बुन्देलखण्ड में है। बहुत सी टुकडियां उसके पीछें है, मगर वों हाथ नही आता। शायद वों मालथोन के आसपास होगा। सागर से उसकें पीछें फौज गई है। मेह (वर्षा) ने ऐसा मिलाया कि चलना मुश्किल हुआ। लखनउ का सा हाल था कि जूता है, गली में आप है, घर में पहलें भी ऐसा हो चुका है जब फौज उसके पीछें जाती है तो कुछ न कुछ ऐसा हो ही जाता है। मगर एक चिट्ठी से मालूम होता है कि मद्रास की फोज के सेनापति के पास ये खबर आयी कि एक टुकडी नें फिरोजशाह को दबाया और बुरी तरह से मारा। मगर यें मालूम नही कि वों पकडा गया या नही।[21]

आगे लिखता है कि अंग्रेजी अखबार देखनें से मालूम हुआ कि फिरोजशाह अभी नही पकडा गया। सरकारी फौज की एक टुकडी सागर से मुश्किल से मालथानें पर पहुंची वहां खबर आई कि फसादी कूचकर गयें और आगें बढें। झाडी जंगल में मारामार चलें गयें। फसादियों को भी खबर पहुंची वों और डरकर भागे सरकारी फौज ने ऐसे मजें से फसादियों को दबाया कि उन्हें घोडें पर चढना भी नसीब नही हुआ। संगीनें चलनें लगी। यार लोग हथियार छोडकर भागे, 50 सवार मारें गयें, घोडे पिस्तौल और बहुत सा सामान सरकारी फौज के हाथ आया। खुदा जानें फसादी किधर गयें, सरकारी फौज सागर के तरफ उलटी फिरी ।[22]

21 नवम्बर 1860 ई. में अखबार लिखता है कि सुनतें है कि ये शाहजादा गोरखपुर में सरकार का ताबेदार हुआ।[23] वहां के साहब लोगों ने पूछा है कि इसकों क्या सजा देनी चाहिए। हमकों मालूम नही कि ये कौन है क्या ये फिरोजशाह है कि जो मध्य हिन्दुस्तान में फिरता था।[24]

28 नवम्बर 1860 ई. एक अखबार में लिखा था कि फिरोजशाह मक्के को गया है। सबब ये है कि उसको एक फकीर ने एक लकडी और एक टोपी दी थी कि तू इसकी बदौलत हिन्दुस्तान का बादशाह होगा भगवान जानें कि वों लकडी और टोपी कहां गयी अब वों मक्कें गया है कि माल गुम हुए का पता लगावें। वहां भगवान जानें क्या हाल है सब अपनी-अपनी बड मारते है ।[25]

28 अगस्त 1861 ई. इन दिनों ये खबर आयी कि फरोशा (फिरोजशाह) जिसका मुल्क अरब से फिरनें का हाल आगे हमनें लिखा है अब लिबास बदलकर और सारवान का भेष बनाकर जैंपुर में आया था। अब उसके पकडनें की तजवीज हुई तो वो जंगल में चला गया ये सुन के हमकों बहुत ताज्जुब हुआ की वों सारवान था या कोई जींद देव था के पहचाना और पकड न सकें उसकें पकडनें के लिए देखनें वाला और पहचाननें वाला बहुत था ये बात हमारें समझ में नही आती ।[26]

02 जुलाई 1862 ई. को अखबार लिखता है कि दिल्ली गजट सें मालूम हुआ कि फिरोजशाह बागी जो हिन्दुस्तान से काबुल की तरफ गया था अब हिरात में सुलतान अहमत जान के पास मौजूद है ।[27]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मालवा अखबार 26 मई 1857, पृ. 145, श्री नटनागर शोध संस्थान सीतामउ में संग्रहीत, जी. डब्ल्यू फारेस्ट, ए हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्युटिनी, भाग 1, पृ. 39-44, लंदन 1904, मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख (डॉ. रघुबीरसिंह), पृ. 67 श्री नटनागर शोध संस्थान सीतामउ, 1989*
2. *मालवा अखबार, 17 मार्च 1857, पृ. 77-78।*
3. *मालवा अखबार, 21 अप्रैल 1857, पृ. 129, मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख पृ.206।*
4. *मालवा अखबार, 05 मई 1857, पृ. 131-32।*
5. *मालवा अखबार, 19 मई 1857, पृ. 147।*
6. *मालवा अखबार, 19 मई 1857, पृ. 151।*
7. *मालवा अखबार, 19 मई 1857, पृ.151-152।*
8. *ए हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्युटिनी, भाग 3, पृ. 89-90, मालवा अखबार, 19 मई 1857, खुशालीलाल श्रीवास्तव, दी रिवाल्ट ऑफ 1857 इन सेन्ट्रल इंडिया मालवा, पृ. 122-23,144, दिल्ली, 1966, मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख पृ. 23, 28।*
9. *मालवा अखबार, 19 मई 1857, पृ. 184, मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख पृ.21, ए हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्युटिनी, भाग 3, पृ. 90, खुशालीलाल श्रीवास्तव, दी रिवाल्ट ऑफ 1857 इन सेन्ट्रल इंडिया मालवा, पृ. 122-23,144, दिल्ली, 1966।*
10. *मालवा अखबार, 26 मई 1857, मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख पृ.25, 52, 67।*
11. *मालवा अखबार, 02 जून 1857, मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख पृ.67-68।*
12. *मालवा अखबार, 02 जून 1857।*
13. *मालवा अखबार, 02 जून 1857, ए हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्युटिनी, भाग 3, पृ. 553, मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख पृ. 116।*
14. *मालवा अखबार, 02 जून 1857, ए हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्युटिनी, भाग 3, पृ. 40, मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख पृ. 115-16।*
15. *मालवा अखबार, 15 जून 1857, मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख पृ.50।*
16. *मालवा अखबार, 23 जून 1857, पृ. 188।*
17. *मालवा अखबार, 23 जून 1857, पृ. 188, ए हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्युटिनी, भाग 1, पृ. 207-225, मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख पृ.67, 81।*
18. *मालवा अखबार, 23 जून 1857, पृ. 191-92।*
19. *मालवा अखबार, 23 जून 1857, पृ. 202, ए हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्युटिनी, भाग 3, पृ. 86-87।*
20. *मालवा अखबार, 23 जून 1857, पृ. 202, मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख पृ.42,52।*
21. *मालवा अखबार, 21 सितम्बर 1859, पृ. 298-99, ए हिस्ट्री ऑफ द इण्डियन म्युटिनी, भाग 3, पृ.523, 611।*
22. *मालवा अखबार, 21 सितम्बर 1859, पृ. 303-04।*
23. *मालवा के महान विद्रोह कालीन अभिलेख में मंगलवार 01 मार्च 1859 ई. पृ. 392 पर वजीर बेग अपनें पत्र में लिखता है कि - खबर है के फिरोज शाहजादे ने सरकार की इनायतें (अधीनता) कबूल की।*
24. *मालवा अखबार, 21 नवम्बर 1860, पृ. 374।*
25. *मालवा अखबार, 28 नवम्बर 1860, पृ. 389।*
26. *मालवा अखबार, 28 अगस्त 1861, पृ. 271।*
27. *मालवा अखबार, 02 जुलाई 1862, पृ. 223।*

राजस्थान में भक्ति–संस्कृति का स्वरूप

देवपाल सिंह चारण
जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत एक धर्म–प्राण देश है। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता धार्मिकता है। भारतीय इतिहास में भक्ति आन्दोलन को पुनर्जागरण के दौर की संज्ञा दी जाती है। भक्ति आन्दोलन का स्वरुप एक वृहद् था। राजस्थान में भक्ति आन्दोलन भक्ति संस्कृति के रुप में पूर्व मध्यकाल से प्रचलित था। राजस्थान में भक्ति संस्कृति के स्वरुप के अनेक रुप देखने को मिलते है। जैसे :– नाम महिमा, गुरु परम्परा, रहस्यवादिता, योग–संबंधी भावनाएँ, सहजावस्था व चमत्कार तत्व।

संकेताक्षर : *भक्ति संस्कृति, स्वरूप, नाम–महिमा, गुरु परम्परा, रहस्यवादिता, दादू, कबीर, चरणदास।*

राजस्थान की लोकप्रिय भक्ति साधना एवं संस्कृति के कतिपय विशिष्ट तत्वों का सिहावलोकन सर्वथा समाचीन प्रतीत होता है। ध्यातव्य है कि संत–सिद्ध–भक्त परम्परा से उद्भूत लोक प्रचलन और व्यवहारगत साधना तथा आचरण मान्यताएँ प्रायः समान रूपी परिलक्षित होती है। वस्तुतः उनमें अद्भुत साम्यता और एकरसता है। सभी संत न्यूनाधिक रूप से एक ही 'परमार्थ' 'सत्य' तथा 'धर्म संचय' को जीवन का परम लक्ष्य सुनिश्चित करते है और विविध उपायों, साधनाओं और मार्गों द्वारा उस 'परम तत्व' ध्येय की सिद्धि की उद्घोषणा करते हैं। इस भक्ति–साधना से निश्चित संस्कृति से तत्कालीन धार्मिक–आध्यात्मिक एवं उच्च नैतिक जीवन का मर्मस्पर्शी परिचय प्राप्त होता है। इसके लोक देवता, संत–भक्त प्रणेताओं की बहुआयामी, सारग्राही तथा समन्वय परक विचार एवं दृष्टि की श्रेष्ठता स्पष्ट होती है। यह युग निःसंदेह भारत की शाश्वत विचार स्वातंत्र भावना का प्रतीक एवं मानक युग माना जा सकता है। संत जहां एक ओर दूसरों के कथन मात्र पर आस्थावान होने पर किसी साधना में प्रवृत्त होना श्रेयस्कर समझते थे वहीं दूसरी ओर अपने स्वानुभव एवं साधना द्वारा उसकी 'परख' अनिवार्य समझते थे। 'स्वंय के लिए ज्ञान दीप' बनने की ज्ञानोपलब्धि की उत्तम कसौटी समझते थे।

नाम–महिमा

संत–कवियों की नाम–स्मरण (अथवा जप, जाप) विषयक महिमामंडित मान्यता के पूर्व नाम–स्मरण संबंधी विचारों की एक समृद्ध परम्परा अस्तित्ववान् थी।[1] फलतः भक्त संत–परम्परा उसके प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकी। प्रायः सभी भक्तों संतों तथा रहस्यवादियों ने नाम स्मरण–साधना को भक्ति मार्ग में अत्यधिक महत्ता प्रदान की है।

पारम्परिक एवं शास्त्रीय मान्यतानुसार परमात्मा प्राप्ति ज्ञान, कर्म, भक्ति तथा योग के माध्यम से संभव है। इसी श्रृंखला के अन्तर्गत नाम–स्मरण रूपी उपर्युक्त समस्त साधनाओं के सारभूत तत्व द्वारा भी ईशोपलब्धि को सहज माना गया है। संतों ने इसी नाम–स्मरण को योग–साधना के अन्तर्गत 'सुरत' की आख्या प्रदान की है।

कबीर ने इस साधना को यात्रा रूपक में आबद्ध कर इसका महत्व इस प्रकार निर्देशित किया है–

"दूरि चलना कूंच बेगा इहां नहीं मुकाम।
रहा नहीं कोई यार दोस्त गांठि गरथ न दाम।।
एक एकै सगि चलणां बीचि नहीं विश्राम।
संसार सागर विषम तिरणां सुमिरि लै हरिनाम।।[2]

नाम–स्मरण साधना का महत्व मात्र इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि 'नाम' केवल साधन ही नहीं वरन् साध्य भी बनकर सब कुछ एकाकार कर देता है। साधन की चरमावस्था में ध्याता तथा ध्येय का विभेद पूर्णतः समाप्त हो जाता है।

कबीर की उपर्युक्त विचारधारा का समर्थन करते हुए दादू ने तन–मन को पिंजरस्थ शुक के प्रतीक द्वारा चित्रित किया है–

दादू यहु तन पींजरा माहीं मन सूवा।
एकै नांव अल्लाह का पढ़ि हाफिज हूवा।।[3]

वे नाम–स्मरण की यथार्थ पद्धति की ओर भी संकेत करते हैं–

अंतर्गति हरि हरि करै मुख की हाजत नाहिं।
सहज धुल लागी रहै दादू मन ही माहिं।।[4]

कहता सुनता राम कहि लेता देता राम।
खाता पीता राम कहि आत्म कंवल बिसराम।।[5]

दादू पर भी कबीर के समान 'नाम' का 'नशा' छाया रहता है। वे इसमें समाहित अमृत का सेवन करके स्वयं को पूर्णतया 'मतवाला' घोषित करते हैं–

नाऊं रे नाऊं.... अमृत राता दादू माता नाऊं रे।।[6]

इसी प्रकार हरिदास निरंजनी ने योग–परक दृष्टिकोण से नाम–स्मरण की महत्ता प्रतिपादित की है–

अलख निरंजन उर बसै, राम नाम निज भेद।[7]

जन हरिदास वारपार कीमत नहिं,
राम नाम मोटो रतन।[8]

जन हरिदास भज केवल राम,
निरमल नाम तहां विसराम।।[9]

भव सागर तिरवो कठिन,
हरि नांव उतारै पारि।।[10]

नारायण के नांव की मैं बलिहारी जाव।
भृंगीकीट पतंग ज्यूं दुरे दुसरो नांव।।[11]

राजस्थान के प्रमुख संत एवं लोक देवता

अलष अगम अविगत कहो,
कहे निरंजन राम।[12]

नांव गहि रे नांव गहि।[13]

गुरु–परम्परा

उपनिषद युगीन गुरु–भक्ति की परम्परा संपूर्ण प्राचीन काल में चिरंतन रही। विविध धर्म–दर्शन पद्धतियों के अविर्भाव की स्थिति में भी इसका नव अभ्युत्थान हुआ। तत्पश्चात् वैष्णव, शैव, शाक्त तथा तंत्रों के प्रचलन पर भी गुरु–परम्परा की महत्ता क्षीण नहीं हुई, अपितु दिन–प्रतिदिन प्रभावी होती गई। संभवतः संबद्ध योग पद्धति तथा तंत्रों में प्रयुक्त कठिन और जटिल साधना–विधानों ने इसे अतिरिक्त महत्ता प्रदान की। नाथ–योगियों, सहज और व्रजयानियों, तांत्रिकों तथा परवर्ती संतों में इसीलिए सद्गुरू की महिमा इतनी फैल गई कि उसके बिना जगत के चाहे और सभी व्यापार हो जाएँ पर यह जटिल साधना–पद्धति नहीं हो सकती।[14]

इस प्रकार संत–संस्कृति की पृष्ठभूमि में गुरु–परम्परा पूर्ण महिमामंडित और विकसित रूप में विद्यमान थी। यद्यपि गुरु का स्वरूप वज्रयानियों आदि के अन्तर्गत प्रायः पृथक था, तथापि विश्व–कल्याण–कामी संतों ने इसके पवित्र स्वरूप को ही ग्रहण किया। उनके लिए योग से प्रभावित साधना–पद्धति अपनाने के कारण गुरु–परम्परा में आस्था दृढ़ करना लगभग अनिवार्य हो गया था। सारांशतः वैदिक युग से प्रवाहित होती हुई गुरु–भक्ति की अजस्त्र धारा विविध कालखण्डों से होती हुई वृहत् रूप धारण कर अनेक अभिनव दृष्टिकोणों के साथ मध्यकालीन संतों की परम्परा के अन्तर्गत और अधिक समृद्ध बन गई।[15]

गुरु के संदर्भ में संतों का अभिमत मुख्यतः गोरखनाथ के विचारों के समतुल्य था। यथा–

गगन मंडल में अंधा कुंआ तहां अमृत का बासा।
सगुरा होइ सो भरि भरि पीवै,
निगुरा जाय प्यासा।।[16]

इस परिप्रेक्ष्य में मीरां तथा गोरख के विचारों में अद्भुत साम्यता दृष्टिगोचर होती हैं–

सगुरा सूरा अमृत पीवे, निगुरा प्यासा जासी।[17]

दादू के अनुसार –

साचा सद्गुरु राम मिलावै,
सब कुछ काया माहि दिखावै।।[18]

सबद दूध धृत राम रस, कोई साध बिलोवणहार।
दादू अमृत काढ़ि लै, गुरु मुख गहै विचार।।[19]

सतगुरु सबद उलंघि करि, जनि कोई सिष जाइ।
दादू पग पग काल है, जहां जाइ वहां खाइ।।[20]

सबद दूध धृत राम रस, मथि करि काढ़ै कोई।
दादू गुरु गोविंद बिन, घाटे घटि समझि न होई।।[21]

हरिदासी निरंजनी के शब्दों में–

परम ग्यान पर ध्यान, परम गुरु गुरुगमि गावौ।[22]

सद्गुरु दीया भेद बताय.....।[23]

गुरु हमसूं ऐसी करी, जैसी गुरु सूं होय।
अगम ठैर आनन्द सदा, पला न पकड़ै कोय।।[24]

गहि गुरु ग्यान अगम कूं ध्यावै, अगम अथाह
थाह कोई पावै।[25]

गहि गुरु ज्ञान जागि जिव जोगी, झूठे भरम
भुलाना रे।[26]

चरणदास की गुरु के प्रति श्रद्धा–आस्था विशेष स्पृहणीय है–

हरि सेवा कृत सौ बरस गुरु सेवा पल चार।
तौ भी नहीं बराबरी वेदन कियो विचार।।[27]

गुरु समान तिहुं लोक में और न दीखै कोय।
नाम लिये पातक नसै, ध्यान किये हरि होय।।[28]

सतगुरु के मारे मुए बहुरि न उपजै आय।
चौरासी बंधन छुटैं हरिपद पहुंचै जाय।।[29]

इसी सन्दर्भ में उनकी सुविख्यात शिष्या सहजोबाई के विचारों का उल्लेख समीचीन प्रतीत होता है।

राम तजूं पर गुरु न बिसारुं,
गुरु के सम हरि कूं न निहारु।

चरणदास पर तन मन वारुं,
गुरु न तंजू हरि कूं तजि डारुं।।[30]

इस दृष्टि से गुरु की महत्ता के प्रति संतों के अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होने वाले उद्गार वस्तुतः उनकी गूढ़ मनोभावना प्रसूत अनुभवाश्रित स्वतः प्रस्फुटित वाणी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। प्रायः वे अपने जीवन एवं सिद्धि के पथ–प्रदर्शक गुरु से अनुग्रहीत होते रहे है।[31]

परन्तु यहां इस परम्परा के विपरीत पक्ष का विवेचन उपर्युक्त सन्दर्भो के अन्तर्गत समीचीन प्रतीत होता है। जहां एक ओर सद्गुरु की महिमा हरि से भी अधिक होने के उद्धहरण प्रस्तुत किए जा रहे थे, वहीं परिणामस्वरूप गुरु के प्रति जन–सामान्य में रूढ़–विश्वास, भ्रामक–मान्यताएं तथा अंधानुकरण आदि की प्रवृत्तियां प्रचलित हो गई थी। फलतः छद्मवेषी गुरु मित्था चमत्कारिक शक्तियों के प्रदर्शन द्वारा जन साधरण को अभिभूत तथा आतंकित करते हुए विविध प्रकारों से वंचना एवं भ्रमों की परिधि में ढकेल रहे थे।[32]

वस्तुतः ऐसे बनावटी गुरु वर्ग से न तो किसी को श्रेय–साधन की प्राप्ति हो सकती थी और न कालान्तर इनकी वास्तविक जीवन दशा ही किसी से छिपी रहती थी। तब साधारण जनता को सद्गुरु की कृपा के नाम पर आतंकित करने वाले और उन पर रोब जमाने वाले छोटे–छोटे योगियों की एक विराट्वाहिनी जरूर तैयार हो गई होगी। ऐसा सचमुच ही हुआ था। ऐसे अलख जगाने वाले योगियों से सारा देश भर गया था।[33]

ऐसे तथाकथित गुरु–जन अपने शिष्य–वर्ग सहित लोभ–लालसा, सामाजिक विकृतियों तथा अनाचारों के अंध–कूप में एक–दूसरे को ठेलने वाले अंधों के समान गिरकर विनष्ट हो जाते थे। यह सर्वकालिक सत्य प्रतीत होता है कि ऐसे पतित जन न तो किसी के वास्तविक गुरु बन सकते हैं और न किसी को शिष्य ही बना पाते है। मात्र लोभ–वासना के वशीभूत भांति–भांति के प्रपंच रचने वाले कृत्रिम वेशधारी प्रवंचक पत्थर की नाव पर चढ़कर नदी को पार करने तथा कराने के कपट प्रयासों में मंझधार में ही शिष्यों सहित डूब जाते हैं। यथा–

न गुरु मिल्या न सिष भया लालच खेल्या डाव।
दून्यूं बूड़े धार में चढ़ि पाथर की नाव।।[34]

चरणदास इन मिथ्या–गुरुओं के कार्य–कलापों को इंगित करते हुए संत–गुरुओं से इनकी भिन्नता प्रदर्शित करते हैं–

गलियारे गुरु फिरत है घर–घर कंठी देत।
और काज उनको नहीं द्रव्य कमावन हेत।।[35]

गुरु मिलते ऐसे कहैं कछु लाय मोहि देव।
सतगुरु मिलि ऐसे कहैं, नाम धनी का लेव।।[36]

कनफूंका गुरु जगत का राम मिलावन और।
सो सतगुरु को जानिये मुक्ति दिखावन ठौर।।[37]

इनके मिथ्या–कलापों में विभ्रान्त होने के प्रति सचेत करते हुए संत–गण 'यथार्थ गुरु' के स्वरूप को रेखांकित करते है–

सदा संतोषी मत उपगरणां, तजियामांन अभिवांनू।
वसि करि पवणां, वसि करि पाणी।
वसि करि हाट पटंण दरवाजूं।
दसेदवारे ताला जड़िया, जोय ऐसा उसताजू।।[38]

रहस्यवादिता

सामान्य रूप से देखने पर संतगणों में एक महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक विरोधाभास दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने जहां समग्र विश्व तथा उसके विषयों को असार एवं क्षणभंगुर सिद्ध करते हुए मानव को मरणशील तथा उसकी विविध चेष्टाओं को निष्प्रयोजन घोषित किया है, वहीं मानव–शरीर और मानव–जीवन को अत्यंत सारगर्भित, सप्रयोजन तथा महत्वपूर्ण स्वीकार किया है। परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाले ये विचार वस्तुतः रहस्यवादी अभिव्यक्ति की संज्ञा से अभिहित किए जा सकते है।

इस अवधारणा के अनुसार मनुष्य–शरीर बड़े सौभाग्य से प्रभु की अहैतुकी कृपा के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है।[39] निश्चय ही इसका मूल लक्ष्य विषय–सेवन के स्थान पर भगवत्भजन ही हो सकता है।[40] इसके अभाव में मनुष्य–शरीर का कोई भी प्रयोग आत्महन्ता की गति से पृथक् नहीं रहता।

शास्त्रों के अनुसार मानव–देह द्वारा स्वर्ग, नरक एवं मोक्ष सभी की प्राप्ति सम्भव है, अतएंव उसे सर्वाधिक कल्याणकर कार्य भगवत्भजन में ही प्रयुक्त किया जाना चाहिए। इसी प्रकार संसार रूपी कर्म–क्षेत्र मे मानव–शरीर द्वारा मनोवांछित क्रीड़ा सम्पन्न करके जय–पराजय की उपलब्धि की जा सकती है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य अपना स्वयं भाग्य–नियामक है। तानपूरे सदृश मनुष्य तन से प्रत्येक इच्छित राग निकाला जा सकता है।[41] सारांशतः मनुष्य शरीर का उद्देश्य ईश्वर से मिलन ही है। आत्मा का परमात्मा से तादात्म्य और एकाकार होना मानव जीवन का ध्येय है।

साधना के अन्तर्गत रहस्यवाद के समावेश को इंगित करने के विषय में उल्लेखनीय है कि संताग्रगण्य कबीर के समान दादू ने धुनिया वृत्ति का आश्रय ग्रहण करने के कारण–स्वरूप परम–तत्व की साक्षात्कार–साधना को वस्त्र बुनने की क्रिया के रूप में आबद्ध किया है। यथा–

प्रेम प्राण लगाइ धागै, तत्त तेल निज दीया।
एक मना इस आरम्भ लागा,
ज्ञान राछ भर लीया।।
नाम नली भरि बुणकर लागा, अंतरगति रंग राता।
ताणै बाणौ जीव जुलाहा, परम–तत्व सौ माता।[42]

अर्थात् तत्व के तेल और प्रेम की वर्तिका से दीपक को प्रज्वलित कर भक्त 'बुनकर' अज्ञानान्धकार मिटाता है, तब प्रकाश के प्राणों को ज्ञान की कंघी से निकालकर नामरुपी नली से अनुरंजित सूत के द्वारा बुनने का कार्य करता है। प्राण रूपी ताने पर नाम के बाने द्वारा वस्त्र–निर्माण में तत्पर होता है।

दादू द्वारा वर्णित 'रामरस' से प्रसंग के अन्तर्गत सन्त–परम्परा पर हठयोग का प्रभाव दर्शित होता है। हठ्योगियों में तालू के ऊपर मस्तिष्क में अमृत रस के झरने तथा उसके अद्भुत स्वाद का उल्लेख प्राप्त होता है।

'सुनि मंडल' तहां नीझर झरिया।
चन्द सुरज ले उनिमनि धरिया।।[43]

दादू के 'रामरस' से तात्पर्य परमात्म–भक्ति से है। इस रस का पान करने वाले विरले ज्ञानियों को अमृतत्व प्राप्त हो जाता है। यह सिद्ध, योगी और यति सबके लिए सुखदायी है। अनवरत पान करने पर भी इसकी तृषा तृप्त नहीं होती और पीने वाला पीपा, रैदास तथा नामदेव सदृश महापुरुष इसी में एकाकार हो जाते है।

यथा–

हरिरस माते मगन भये।
गाइ गाइ रस लीन भये हैं,
कछू न मांगै सन्त जनां।
दादू मगन रहैं रस गाते ऐसै हरि के जन जीवै।।[44]

'रामरस' मत्त भक्तों की रहनी अथवा अभिलाषा मात्र यही है कि प्रेमाभक्ति रस का पान करते हुए ही जीवन व्यतीत हो।

'रामरस' मीठा रे कोई पीवै साधु सुजाण।
..... दादू अनत न जाइ।।[45]

इसी क्रम में निरंजनी सम्प्रदाय के अन्तर्गत प्रेम–प्रवाह की अबाधता, आध्यात्मिक तत्व की विद्यमानता एवं संपूर्ण हृदय से समर्पण की निरन्तरता के रूप में रहस्यवादी अभिव्यक्तियां प्रकट की गई है। यथा–

ग्यांन बिरह जब प्रगटी, झाल उठी उर माहि।[46]
जित देखूं तित राम ही, बहोरंगी बहोरंग।
काहू सो न्यारो नहीं, ज्यूं जल माहि तरंग।।[47]

परन्तु भक्त–शिरोमणि मीरां रहस्यवादी प्रवृत्ति का अन्य रुप प्रकट करते हुए भक्तों के कारण भगवान् का अवतार धारण करना मानती है। उन भक्त–वत्सल प्रभु के मीरां सर्व–प्रकारेण शरणागत है। यथा–

हरि तुम हरो जन की..... चरन कंवल पै सीर।।[48]

तुम पलक उघाड़ो ..... जोत रिली।।[49]

इन्हीं सन्दर्भों के अन्तर्गत मीरां ने 'नवद्या-भक्ति' के साधनों से कीर्तन, स्मरण तथा पाद-सेवन को प्रधानता प्रदान की है। 'पिया-मिलन' हेतु वे अगम देश को प्रस्थान कर रही है।

चलो अगम के देश.....प्रीति और सूं आंखड़ी।।[50]

वे योगी रूप परमात्मा को बारम्बार हृदय-मंदिर से न जाने हेतु प्रार्थना करते हुए प्रेमाभक्ति के अटपटे मार्ग के संबंध में उस 'परम-प्रियतम' से जिज्ञासा करती है।

जोगी मत जा.....जोत मिला जा।[51]

निष्कर्षतः ज्ञान और योग जैसे स्वतंत्र साधनों की परिणति भक्ति में प्रतीत होती है, जो माधुर्य भाव के अन्तर्गत 'प्रियतम' के रूपक से आबद्ध है।

माई री मैंने लियो गोविन्दो मोल।[52]

कोई स्याम मनोहर ..... औरे बोलै।।[53]

सखी री मैं तो ..... गावै मीरां दासी।।[54]

नैनन बनज बसाऊं.....बलि जाऊं री।।[55]

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि राजस्थान में भक्ति संस्कृति की एक समृद्ध परम्परा रही है। राजस्थान के भक्ति संतों की सहजता रूपी सत्य बारम्बार प्रचारित होने पर भी संध्याकाल में प्रज्वलित होने वाले दीपक के समान पुनरूक्ति दोष मुक्त रहा है। भक्ति साधना में भक्ति संतों का स्वरूप के अनेक रूप यथा नाम-महिमा गुरू परम्परा रहस्यवादिता प्रमुख रूप से भक्ति संस्कृति के स्वरूप में देखने को मिलती है।

संदर्भ गंथ सूची

01. *सूत्रों तथा पुराणों में श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण को 'नवधा' भक्ति में प्रमुख स्थान प्राप्त किया गया है। उक्त भक्ति प्रकार को मध्यकालीन संतों तथा भक्तों ने नाम-स्मरण अथवा नाम-जप (जाप) के रूप में परिवर्तित कर जन-मानस में लोकप्रिय बनाया।*
02. *द्विवेदी, हजारी प्रसाद; कबीर, पृ. 360*
03. *दादूवाणी, भाग-1, पृ. 25*
04. *संतवाणी संग्रह, भाग 1, पृ. 44*
05. *दादूवाणी, भाग 1, पृ. 23*
06. *संतवाणी संग्रह, भाग 2, पृ. 91*
07. *हरिदास वाणी, भूमिका, पृ. 64*
08. *वही, पृ.63*
09. *वही, पृ.64*
10. *वही, पृ.82*
11. *वही*
12. *वही*
13. *वही, पृ. 88*
14. *द्विवेदी, हजारी प्रसाद; हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ. 65*
15. *भक्ति काव्य में रहस्यवाद, पृ. 162-63*
16. *गोरखनाथ बानी, पृ. 9*
17. *मीरां बृहत्पदावली, भाग 1, पृ. 151/360*
18. *दादूवाणी, भाग 2, पृ. 151*
19. *दादूवाणी, पृ. 7/31*
20. *वही, पृ. 18/95*
21. *वही, पृ. 6/30*
22. *हरिदास वाणी; पृ. 63*
23. *वही, पृ. 64*
24. *वही, पृ. 82*
25. *वही*
26. *वही, पृ. 83*
27. *संतवाणी संग्रह, भाग 1, पृ. 143*
28. *वही, पृ. 142*
29. *वही, पृ. 143*
30. *संतवाणी संग्रह, भाग 2, पृ. 192*
    इन दोहों के विषय में गंभीर विवाद उपस्थित किया गया है किन्तु सहजो बाई की उक्ति विशुद्ध गुरु-भक्ति पर आधृत प्रतीत होती है।
31. *भक्ति काव्य में रहस्यवाद, पृ. 177*
32. *वही, पृ. 167*
33. *द्विवेदी, हजारी प्रसाद, पूर्वाक्त, पृ. 66*
34. *कबीर ग्रंथावली, पृ. 2*
35. *संतवाणी संग्रह, भाग 1, पृ. 143*
36. *वही*
37. *वही*
38. *जंभ-वाणी, सबद 106, 3-8*
39. *तुलनीय, बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब गंथन्हि गावा।। तुलसी; रामचरित मानस 7/42-4*
40. *रहस्यवादी आध्यात्म विद्या के व्याख्याकार इवाल्ड के अनुसार रहस्यवाद की अवधारणा के अन्तर्गत मनुष्य का ईश्वर से वियोग हो गया है और वह ईश्वर से मिलने हेतु अत्यंत उत्सुकतापूर्ण अभिलाषा करता है।*

41. उद्धत, कबीर ग्रंथावली, साधो यह तन ठाठ तंबूरे का।
ऐंचत तार मरोड़त, खूंटी निकसत राग हजूरे का।।
42. दादूवाणी, भाग 2, पृ. 127
43. गोरखबानी, पृ. 20
तुलनीय, कबीर–चुबत अमीरस भरत ताल जहं सबद उठै असमानी हो।
44. संतवाणी संग्रह, भाग 2, पृ. 95
45. दादूवाणी, भाग 2, पृ. 25
46. मिश्र, भगीरथ; निरंजनी सम्प्रदाय और संत तुरसी, पृ. 182
47. वही
48. मीरां बृहत्पद संग्रह, भाग 1, पृ. 275/635
49. संतवाणी संग्रह, भाग 2, पृ. 77
50. मीरां बृहत्पदावली, भाग 1, पृ. 59/137
51. वही, पृ. 76/176
52. वही, पृ. 161/385
53. वही, पृ. 48/113
54. वही, पृ. 48/113
55. वही, पृ. 113/266

राजस्थानी लोक–संस्कृति, भाषा एवं साहित्यिक–धरोहर

डॉ. नेमीचंद कुमावत
सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, रायपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

राजस्थानी लोक संस्कृति, भाषा, साहित्य, सौंदर्य और अनूठी कलात्मक धरोहर और उसके वैभव से सम्पूर्ण विश्व परिचित है। राजस्थान सैलानियों के लिए तो स्वर्ग है। राजस्थान एक ओर रणबांकुरों एवं वीरांगनाओं की धरा रही है, वहीं दूसरी ओर लोक संस्कृति, लोक साहित्य, लोक संगीत, नृत्य, वेशभूषा, वाद्य, तमाशे, ख्याल तथा लोक कलाओं की विधाएँ यहाँ की सतरंगी संस्कृति की निधि रही हैं। लोक साहित्य में मानव हृदय के मनोभावों की सहज अभिव्यक्ति होती है। डिंगल राजस्थान की साहित्यिक भाषा रही है। राजस्थानी भाषा और साहित्य ने वीर रस की अनूठी गंगा प्रवाहित की है। हमारे लोक–विश्वास, धर्म–दर्शन, रीति–रिवाज, रहन–सहन, पर्व–त्योहार, विविध कलाओं की सही पहचान कराने तथा हमारी सांस्कृतिक विरासत को जीवंत बनाए रखने में लोक–साहित्य की अहम् भूमिका होती है। प्रस्तुत शोध–आलेख मे रंग–रंगीले राजस्थान की लोक–संस्कृति, भाषा और साहित्यिक धरोहर को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर : *लोक–संस्कृति, लोक–कथा, धरोहर, मरुभूमि, कजली तीज, गणगौर, डिंगल, वीरांगना, वैभव, सतरंगी, रामराज्य, कंठानुकंठ, वाणियाँ, पणिहारी, सैलानी, अंतःपुर, उपालंभ, स्त्री–विमर्श, मरणोत्सव, समरसता।*

लोक–संस्कृति एक विशाल सागर की तरह है, जिसे संपूर्णतः लिखना न व्यक्ति के लिए संभव है और न वह एक पुस्तक में समा सकती है। संस्कृति तो गाँव, ढाणी, चौपाल, चबूतरे, महल–प्रासादों में ही नहीं, बल्कि घर–घर,जन–जन में व्याप्त है, समाई हुई है। उसके आकार–प्रकार को नापा–तोला जाना असंभव ही है। रंग–रंगीला हमारा राजस्थान है। साहित्य, संगीत, कला–कौशल, शिल्प, मंदिर, किले ही नहीं, झोंपड़ियाँ भी हमारी संस्कृति के दर्पण हैं। हमारी वेशभूषा, रहन–सहन, खान–पान, आस्था, धर्म–दर्शन, रीति–रिवाज, पर्व, त्योहार, मेले, उत्सव, भाषा एवं साहित्य सभी संस्कृति के अंतर्गत आ जाते हैं।

राजस्थान की लोक संस्कृति, भाषा, साहित्य, सौंदर्य और अनूठी कलात्मक धरोहर और उसके वैभव से सम्पूर्ण विश्व परिचित है। राजस्थान सैलानियों के लिए तो स्वर्ग है। राजस्थान एक ओर रणबांकुरों एवं वीरांगनाओं की धरा रही है, वहीं दूसरी ओर लोक संस्कृति, लोक साहित्य, लोक संगीत, नृत्य, वाद्य, तमाशे, ख्याल तथा लोक कलाओं की विधाएँ यहाँ की सतरंगी संस्कृति की निधि रही हैं।

लोक साहित्य में मानव हृदय के मनोभावों की सहज अभिव्यक्ति होती है, जिस पर व्याकरणिक नियम लागू नहीं होते हैं। लोक साहित्य में ही जीवन के विविध पक्ष अपनी सघनता के साथ व्यक्त होते हैं। लोक साहित्य को स्पष्ट करते हुए नानूराम संस्कर्ता ने लिखा है– ''लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है, जिसके किसी भी शब्द में रचना–चैतन्य नहीं मिलता। उसके स्वर, शब्द और लहज़े पर लोक की छाप होती है। अन्य मान्यता के अनुसार मौखिक परंपरा पर पलने वाला, वह कंठानुकंठ साहित्य, जिसके रचयिता का पता नहीं। तमाम लोक ही उनका समाधिकारी और प्रेरक है। इस तरह से अक्षरहीन लोगों के मनोरंजनार्थ काम आने वाले साहित्य को लोक साहित्य ही कहते हैं।''[1] वस्तुतः लोक विश्वास, धर्म–दर्शन, रीति–रिवाज, रहन–सहन, पर्व–त्योहार, विविध कलाओं की सही

 ISSN 2277-5587

पहचान कराने में लोक–साहित्य की अहम् भूमिका होती है। अतीत से वर्तमान तक की धरोहर को अक्षुण्ण रखने में ही नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक विरासत को जीवंत बनाए रखने में लोक साहित्य की आज प्रासंगिकता है।

लोक साहित्य में प्रकृति के रंग–बिरंगे चित्रों के साथ लौकिक मनोरंजन की अनवरत् परंपरा रही है, जिसमें लोक–संस्कृति के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति हुई है। इस संदर्भ में डॉ. सुरेश गौतम का मत उल्लेखनीय है– ''लोक–जीवन की चक्र नाभि में तितलियों के रंग हैं, जो लोक मानस के पराग कणों को एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क तक ले जाते हैं और लोक कंठ से संगीत बनकर फूट पड़ते हैं। लोक साहित्य प्रकृति रस है, जिसके धूप अनुष्टुप छंदों में सामाजिक संस्कृति के आर्ष मंत्र जीवन का विराट महोत्सव मनाते हैं। इस गंध की इस बंजारा चितवन में समूचा मधुवन जड़ता में भी ऊष्मा का संचार कर देता है। हवा और सूर्य चाँद पर सवार यह लोक रस सबको प्राणवत बनाता है।''[2] इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि लोक–साहित्य में ही जन–जीवन की धड़कने सुनी जा सकती हैं। लोक–भाषा में रचित नारी जीवन की एक झलक प्रस्तुत है, जिसमें ग्राम्य संस्कृति साकार हुई है; यथा–

''कन्या रूप क्वारी/फूस बुवारै/बासण मांजे/गोबार ढोवे उपला थापे/चुगावै–पिसावै/ठंडो बासी खावै/जाईजद घर हुयो अमंगल/माता रोई/जाति री बीमारी कारण नारी जन्म–सूँ/कुढ़–कुढ़ रैवे।''[3]

यहाँ क्वारी, फूस, बुवारै, बासण, मांजे, उपला, थापे, ठंडो, बासी जैसे लोक भाषा की देशज शब्दावली में लोक–संस्कृति जीवंत है, जिसमें नारी के प्रति पुरातन मानसिकता का शब्द–चित्रों में सशक्त अंकन है।

राजस्थान में लोक गीतों का प्रचुर भंडार है। आज भी लोकगीत उत्सवों, समारोहों, तीज–त्योहारों, विवाह के अवसर पर कलाकारों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। विदेशी सैलानी मेले, पर्व आदि में लोक–संगीत की सराहना करते नहीं थकते हैं, आनंद में झूमते नजर आते हैं। लावणी, विरहा, कजरी, होली आदि लोक गीतों में सूक्षमता, सहजता, सरलता के साथ उत्सुकता, उल्लास, मधुरता के हृदयग्राही रूप मौजूद हैं। इन गीतों को अशिक्षित जन भी सहज रीति से गा लेते हैं। मरुभूमि में इन लोक गीतों को गाने वाली जातियों में लंगा, मणियार, कामड़, भोपे, सरगड़े, मिरासी, पातर, कलावंत विशेष उल्लेखनीय है। लोकगीतों के संदर्भ में रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत का कथन उल्लेखनीय है–''जैसलमेर की रमणीय रातों की मूमल, मारवाड़ की मनभावनी माँडें, अरावली पर्वतमालाओं में गूँजती हुई ढोला–मारू की रंग भीनी रागें, उदयपुर की मदमस्त पनिहारी, कालिदास के मेघदूत सी पवन गामिनी कुरजां, घूम–घूमाली घूमर, लुंब–लूंबाला गोरबंद।.... ये राजस्थान के जनजीवन की संजीवनी बूटियाँ हैं। इसी घूँटी को ले राजस्थान के जन जीवन ने नंगा और भूखा रहते हुए भी मस्ती से जीना सीखा।''[4]

वस्तुतः लोक संगीत लोक संस्कृति का ही एक अंग है। प्रेम के अमृत से भरे लोक गीत हमारी अमूल्य धरोहर है। नारी अपने भावों को केवल खुलकर लोकगीतों में ही अभिव्यक्त करती है। राग–विराग, प्रेम, घृणा और दुःख को जहाँ नारी स्पष्ट न कह पाती, उनको गीतों द्वारा गाकर स्पष्ट कह जाती है। राजस्थानी लोक गीतों में कहीं भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं। लोक गीत मधुर, नैसर्गिक, प्राणवान और हृदय को विलोड़ित करने में सक्षम हैं। गीत असंख्य नारियों के हृदय का रेखांचित्र है। नारी ने वियोग में उमड़ते आँसुओं को लोकगीतों के आँचल से पोंछ कर अपने को सांत्वना दी है। वस्तुतः लोक गीत नारियों के हृदय की झंकार है। उपालंभ, नाराजगी, दुख–सुख, ठेस, पीड़ा, संकोच को नारी ने लोकगीतों के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति दी है, यही हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। कजली तीज पर्व को पश्चिमी राजस्थान में सुहागिन महिलाएँ बड़े धूम–धाम, हर्ष, उमंग के साथ मनाती हैं। भाद्रपद माह की कृष्ण पक्ष तृतीया को सुहागिनें व्रत रख, तीज माता की पूजा कर, चाँद का पूजन करके रात में उपवास खोलती हैं। वियोगिनी मारवणी अपने प्रियतम ढोला को संदेश भेजती है कि कजली तीज को घर नहीं आए तो बादलों की गर्जना व बिजली की चमक से मर जाएगी ; यथा –

''जई तू ढोला नावियउ, काजलियारी तीज।
चमक मरेसी मारवी, देख खिवंता वीज।।''[5]

लोक गीत–संगीत के साथ राजस्थान में लोक कथाओं की भी प्रचुरता है। सर्वत्र भाँति–भाँति की लोक–कथाएँ सुनने को मिलती हैं। प्रसिद्ध मनोविश्लेषणवादी सिग्मण्ड फ्रायड के विचारानुसार लोक–कथाओं के निर्माण में मनुष्य की दमित वासनाएँ अहम् भूमिका निभाती हैं। इस संदर्भ में डॉ. सत्येंद्र ने मनोविज्ञान को लक्षित कर लिखा है कि ''धर्म तथा काव्य के विविध

विचार–बिंदु विशेष परिस्थितियों में मनुष्य के मानस में स्वप्न अथवा भ्रम दृश्यों में उत्पन्न हुए हैं।''[6] इसी तरह राजस्थानी लोक नृत्यों में विनोद पूर्ण जीवन, मनोरंजन का नजारा देखते ही बनता है। एक स्वस्थ मनोरंजन की दृष्टि से लोक नृत्य जीवन के अभिन्न अंग हैं। लूर, कालबेलिया, घुड़ला, घूमर, तेरहताली, भवाई जैसे लोक प्रसिद्ध नृत्यों में लोक मान्यताओं, विश्वासों की सूक्ष्मता, गंभीरता का सशक्त चित्रांकन हुआ है, इस सांस्कृतिक सम्पदा में लोक संस्कृति जीवंत है। 'लूर' नृत्य में लोक राग के साथ नृत्य होता है। कलाकार झूम–झूमकर नाचते–गाते हैं। इसमें केवल पुरुष ही स्त्री की वेशभूषा धारण कर नाचते हैं, जिसे विदेशी सैलानी पर्यटक बड़े चाव से देखते हैं।

'कालबेलिया' नृत्य में केवल स्त्रियाँ ही नाचती हैं। गुलाबों कालबेलिया ने अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है, उसने इस नृत्य को विदेशों में लोकप्रिय बनाया है। जोधपुर के 'घुड़ला' नृत्य में पणिहारी श्रृंगार करके गोलाकार नृत्य करती है। सिर पर मटकों में जलता दीपक होता है, जिसे घुड़ला कहते हैं – **''घुड़ले घूमेला जी घूमेला, घुड़ले रे बाँधों सूत।''** लोक प्रसिद्ध 'घूमर' नृत्य गणगौर, होली–त्योहार और विशेष पर्व–उत्सवों में मुख्यतः किया जाता है। इसके बोल हैं– **''म्हारी घूमर छै नखराली ऐ माँ, घूमर रमवा म्हैं जास्याँ।''** 'तेरहताली' नृत्य में कामड़ जाति के भोपे लोग पीरों के पीर बाबा रामदेव जी की आराधना में रातभर लीलाएँ, ब्यावले और यश गाथाएँ गाते हुए नृत्य करते हैं। इसमें तेरह मंजीरे कामड़ जाति की स्त्री बाँधकर नृत्य करती है, इसलिए इसे तेरहताली नृत्य कहते हैं। स्व. माँगीबाई इसकी लोक प्रसिद्ध नृत्यांगना है। विदेशी सैलानियों के लिए मुख्य आकर्षण का केंद्र 'भवाई' नृत्य है। सिर पर 7–8 मटके रखकर मुख के द्वारा जमीन से रुमाल उठाने की कला के साथ, थाली के किनारों, तलवार की धार और काँच के टुकड़ों पर नृत्य करना इसकी विशेषता है। तारा शर्मा, दयाराम, रूपसिंह, अस्मिता काला इस नृत्य के कुशल कलाकार कहे जाते हैं। वस्तुतः लोक नृत्य राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत है।

राजस्थानी लोक संस्कृति में जितने लोक संगीत, नृत्य, वाद्य आदि की विविधता है, उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। मंजीरा, डांडिया, घड़ियाल, झाँझ, झालर, रामझोल, घूंघर, थाली, तसली, जैसे लोक वाद्य अपनी अनूठी धुन और मधुरता में श्रेष्ठतम हैं। सारंगी, रावणहत्था, खंजरी, ढोलक, चंग, मादल, ढोल, नगाड़ा, ढोलक, डमरू, अलगोजा, पूँगी, बांकिया, तुरंग जैसे विविध वाद्य लोक संगीत में अपनी अनूठी छाप छोड़ने में विख्यात है। इस धरोहर की आज भी प्रासंगिकता है। किसोर कल्पनाकांत द्वारा रचित 'फागण रंग रंगीलो छायो' कविता में लोक वाद्यों का उदाहरण दृष्टव्य है; यथा –

''छम–छम बाजे घूघरा रे, घूमर घेर–घुमेर।....
गली–गली लूहरड़ी गावो, सखिया रल–मिल आज।

बीण बजावै बायरियो, अलगोजा गावै गीत।
पाँख–पंखेरू हेत करै है, पाले मन री रीत।
जोधपुर फागणियै री लैर/हठीला चंग बजारो रे।
धमाला ऊँची गावो रे।''[7]

आमोद–प्रमोद जीवन का अभिन्न अंग है। राजस्थानी संस्कृति से इसे निकाल दें, तो जीवन नीरस हो जाएगा। बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत शिशिर ऋतुएँ वर्ष में क्रमानुसार आकर एक ऋतु–चक्र को पूर्ण करती है। बसंत और वर्षा ऋतु कवियों, संगीतकारों, चित्रकारों के साथ जनमानस की सबसे प्रिय ऋतुएँ मानी गई हैं। बसंत ऋतु में प्रकृति सँवरकर अपने पूर्ण सौंदर्य को प्राप्त कर निखरती है। पेड़, पौधे, लताओं में नये पत्ते व नयी कोंपलें आ जाती है। चारों तरफ जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ हरियाली के दर्शन होते हैं। कोयल, पपीहा और अन्य पक्षी मधुर कलरव से सरस और संगीतमय वातावरण की सृष्टि करते हैं। इस नैसर्गिक सौंदर्य से जनमानस भाव–विभोर होकर जीवंत प्राकृतिक सौंदर्य को पर्व–त्योहार के रुप में मनाते हैं; यथा –

''सहज बणे संगीत बन, सुर कोयल रे संग।
बोल कपोता बोलणों, मानो ताल मृदंग।''[8]

यहाँ कोयल की ध्वनि सुन कबूतर गुटर–गूँ आरंभ करता है। दोनों की ध्वनि मृदंग के ताल–सी प्रतीत होती है। इसी तरह वर्षा का समय मनोरंजन का सर्वोत्तम समय रहा है। सावन में सोमवार का व्रत, हरियाली अमावस्या, तीज के त्योहार पर खान–पान, गाना, नाचना, झूले–झूलने का मनोरम नजारा दृष्टिगत होता है। शायद भगवान ने सावन को जीवन के आनंद के लिए बनाया है। रिमझिम वर्षा, काली घटा, बिजली की दमक, नदी–नाले की कल–कल ध्वनि का आनंद, बाग–बगीचों में गोठों का आयोजन, स्त्री–पुरुषों का सुसज्जित होना, सामूहिक भोजन पुरुषों द्वारा तैयार करना आदि का मनोरम दृश्य देखते ही बनता है।

राजस्थानी लोक संस्कृति में विवाहित स्त्रियाँ प्रायः अपने पति का नाम नहीं लेती है। यह परंपरा है। वह अन्य संबोधन से स्वामी को पुकारती है। भाद्रपद महिने में तेज वर्षा, बादलों की गर्जना, तालाबों का लबालब भरना, सर्वत्र व्याप्त हरियाली से पपीहा भी पीउ–पीउ करता है। ऐसी मनमोहक ऋतु में परिणीता अपने पति को नणंद का भाई कहकर बुलाती है; यथा –

''भादव घण भल गाजियो, नदियां खलक्या नीर।
पपीहो पीव–पीव करे, आव नणंद रा बीर।।''[9]

राजस्थानी लोक संस्कृति में स्त्रियों के सुसज्जित होने में आभूषण अभिन्न अंग हैं। यहाँ कन्हैया लाल सेठिया द्वारा रचित गीत में आभूषणों की एक झलक प्रस्तुत है; यथा –

''माथे बांध्यों चाँद–बोरलो/पग पाजेबां–तारा
सुपना बाजूबंध जड़ाऊ/सोवे कामणगारा.....।''[10]

होली, गणगौर, दियाड़ी, दशामाता, श्रावण तीज, नवरात्र, दशहरा आदि जितने भी हमारे त्योहार, देवी–देवता और पवित्र स्थान हैं, उनके साथ हमारी संस्कृति और परंपराओं का इतिहास जुड़ा हुआ है। गणगौर और तीज जैसे त्योहार तो राजस्थान के प्रसिद्ध और लोकप्रिय त्योहार हैं। गणगौर पूजन की एक झलक प्रस्तुत है; यथा –

''हम जोली मिल सारी साथे/कलसां पर कलसां धर माथै
चाली गीतां संग झिलोरां/डावड़ल्यां पूजण गणगौरां।।''[11]

मदमाती बसंत ऋतु में गणगौर के सुरंगे त्योहार पर विवाहित स्त्रियाँ अपने रसिक को प्रवास से लौटने हेतु अनुरोध करती है। इसे लक्षित कर राजेंद्र शंकर भट्ट ने लिखा है– ''गणगौर और तीज पर पति चाहे जहाँ हो, उसका पत्नी के पास पहुँचना आवश्यक माना जाता है और पत्नी इन अवसरों पर अपने पिता के यहाँ रहती है। राजस्थानी लोकजीवन से परिचित लोग मानते हैं कि जान की बाजी लगाकर लोग इन अवसरों पर पत्नी के पास पहुँचते थे और 12 बजे रात तक पति के न पहुँचने पर अपयश सहन न कर सकने के कारण पत्नियाँ उस रात 'सती' हो जाया करती थीं।''[12]

राजस्थानी लोक संस्कृति में पगड़ी बांधने की परंपरा है। पगड़ी एक परिधान न होकर मान–सम्मान, वीरता और प्रतिष्ठा का प्रतीक है। पगड़ी ही व्यक्ति के खानदान और चरित्र से अवगत करा देती है। पगड़ी की इज्ज़त के कारण कई बार युद्ध भी हो जाया करते थे। बादशाह बाबर का राणा सांगा के साथ और बाबर के पौत्र अकबर का सांगा के पौत्र राणा प्रताप से युद्ध जग जाहिर है। पगड़ी सम्मान, प्रतिष्ठा व भाईचारे का स्नेह–सूत्र भी रही है। पगड़ी पुरुष की मर्यादा और चूड़ी नारीत्व का परिचायक है; यथा–

''घोड़ो, जोड़ो, पगड़ी, मूँछा तणीं मरोड़।
ए पाँचूं राखै अटल, रजपूती राठौड़।।''[13]

अर्थात् छबीले घोड़े, सुंदर जूते, रोबीली पगड़ी, मूँछों की मरोड़ और राजपूती वीरता – ये पाँचों वस्तुएँ राजपूतों में मिली हैं। अतः पगड़ी राजस्थानी संस्कृति का अभिन्न अंग है।

डिंगल राजस्थान की शुद्ध साहित्यिक भाषा रही है। राजस्थान की उपभाषाओं में भी 'मारवाड़ी' साहित्यिक भाषा रही है, जिसमें अधिकतर साहित्य–सृजन हुआ है। डिंगल साहित्य परंपरा में चंद बरदाई, दुरसा जी, बाँकीदास, मुरारीदान, सूर्यमल्ल मीसण आदि बड़े–बड़े प्रतिभाषाली कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। 'बीसलदेव रासो', 'ढोला मारू रा दूहा' और 'बेली क्रिसन रुक्मिणी री' आदि श्रृंगार रस के प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। मीरां, दादूदयाल, चरण दास, हरिदास, संतदास, सुंदरदास, संत रज्जब, गरीबदास, दयाबाई, सहजोबाई आदि संत कवियों की वाणियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। गद्य साहित्य में वचनिकाओं, ख्यातों और बातों की विशाल परंपरा है। जयनारायण व्यास द्वारा रचित 'मत दूध लजाइजै' कविता का अंश प्रस्तुत है, जिसमें भाषिक सौंदर्य के साथ वीरता की शिक्षा दृष्टव्य है; यथा–

''सुण रे बेटा सांवता सत गुण मायड़ री बात
सूरवीर कुल धरम री है, लज्जा थारै हाथ....
विजयी बणकर आवसी, तूँ ऊँचो राखै सीस
सूरवीर सुण जाव जै, आ माता री आसीस
मत दूध लजाईजै, पाछे मत आइजै बेटा राड़ सू।।''[14]

राजस्थान की वीरांगना सोलह श्रृंगार कर पति को रणभूमि में सहर्ष भेजती है। श्रृंगार के उल्लास में ही जौहर की ज्वाला में बलिदान भी हो जाती थी। राजस्थानी भाषा और साहित्य ने वीर रस की अनूठी धारा प्रवाहित की है। एक वीर क्षत्राणी राजपूत स्त्री के स्वाभिमान को जब उसका स्वामी ठेस पहुँचाता है, तब स्वयं पति को उपालंभ देती हुई, वीरांगना के कर्म क्षेत्र में उतरकर रणचंडी का रूप धारण करती है। मेघराज मुकुल द्वारा रचित 'सैनाणी' कविता का उदाहरण प्रस्तुत

है; यथा–

''बोली रजपूतण नाथ आज थे, मती पधारो रण माँही,
तलवार बता दो मैं जासूं, चूड़ी पैर रवौ घर माँही;
कह कूद पड़ी झट सेज त्याग, नेणां सू अगनी भभक उठी,
चंडी रो रूप बण्यो छिण में, विकराल भवानी घमक उठी।''[15]

बांकीदास, सूर्यमल्ल मीसण जैसे अनेक कवियों ने राजस्थान की आन, बान, शान की रक्षा हेतु भरसक प्रयास किया है। झूले के गीतों के साथ ही पुत्र को माँ संस्कार देती है कि मातृभूमि की रक्षा हेतु बलिदान हो जाना; यथा –

''इला न देणी आपणी, हालरियो हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माय।''[16]

मीसण कृत वीर सतसई का मूल उद्देश्य अंग्रेजों के विरूद्ध रण में जूझने हेतु राजपूत शक्ति को जाग्रत कर संगठित करना था। तत्कालीन राजपूतों की विलासिता और स्वेच्छाचारिता देख कवि–हृदय क्षुब्ध हो उठा। सन् 1857 की क्रांति के दौरान सारा देश विदेशी सत्ता का तख्ता पलटने के लिए व्यग्र था। सूर्यमल्ल जी भी इसी लहर से प्रेरित हुए। वे चाहते थे कि बिखरी हुई राजपूत शक्ति को एकसूत्र में बाँधकर विदेशियों के विरूद्ध मोर्चा लेन के लिए खड़ी कर दें। जो शूरवीर आलस्यग्रस्त होकर मर्यादा खो रहे थे, वे 'वीर सतसई' के पद सुनकर वीरोचित जोश में अपने वंश की परंपरा का स्मरण करने लगे; यथा–

''इण वेला राजपूत वे, राजस गुण रंजाट।
सुमिरण लग्गा बीर सब, बीरां रौ कुल–बाट।''[17]

राजपूत वीरांगना भी सब बातें सह सकती हैं, लेकिन दो बातों से उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँचती है, जिसे वह सहन नहीं कर सकती। पति द्वारा चूड़ी और पुत्र द्वारा दूध को लज्जित करना – ये दो बातें वीर क्षत्राणी के हृदय में आग लगाती हैं। पुत्र के बलिदान की तैयारी पर माँ खुशियाँ मनाती है, मरणोत्सव दृष्टव्य है; यथा–

''सहणी सबरी हूँ सखी, दो उर उलटी दाह।
दूध लजाणै पूत सम, वलय लजाणै नाह।।''[18]
''आज घरे सासू कहै, हरख अचाणक काय।
बहू बलेबा हुलसै, पूत मरेबा जाय।।''[19]

स्वाधीनता आन्दोलन के दौर में ही नहीं, बल्कि स्वाधीनता के उपरांत भी राजस्थानी साहित्य देश रक्षा हेतु प्रतिबद्ध है। स्वराज मिलने पर भी देश के हालात में कोई सुधार न होने पर राजस्थानी कवियों ने चिंतन मुद्रा में नेताओं को आड़े हाथों लेकर फटकारा है कि 'रामराज्य' की स्थापना क्यों नहीं हुई है; यथा–

''कान का किंवाड़ क्यूं जड़ै/जबान पर लगाम क्यूं पड़ै
बोल राज है कठै/कह सुराज है कठे/रामराज है कठै
बोल–बोल मून क्यूँ धड़ै।''[20]

आधुनिक कवि कल्याण सिंह राजावत ने उपर्युक्त पंक्तियों में आम आदमी के अरमान पूरा न होना, खुशहाली न आना, किसान–मजदूरों की दशा में सुधार न होना आदि को लक्षित कर नेताओं के स्वार्थीपन पर व्यंग्य करते हुए जनता के मोह–भंग को उजागर किया है।

राजस्थान ओज, साहस, शौर्य और वीर प्रसूता भूमि के साथ ही संसार को मार्ग दिखाने वाले सर्वाधिक संतों को जन्म देने वाली भूमि भी है। यहाँ अनेक सम्प्रदायों ने जन्म लिया, जिन्होंने यथा समय, प्रेम, सौहार्द, सामंजस्य, ममता, भाईचारे की गंगा प्रवाहित की है। संत साहित्य ने मरुभूमि पर समरसता–समन्वय की भावना फैलाकर जनमानस को नैतिक समृद्धि की मुख्य धारा से जोड़ने का उत्कृष्ट कर्म किया है। अंधविश्वासों, पाखंडों, कुप्रवृत्तियों का संतों ने खंडन कर सद्वृत्तियों के साथ व्यावहारिक जीवन जीने पर बल दिया है। यहाँ डॉ. राजेश अनुपम का मत उल्लेखनीय है– ''हिंदू–मुस्लिम का भेद भूलकर ऊँच–नीच, जाति वर्ग की सीमाओं को लांघकर ये संत एक समाज, सभ्य समाज व सुंदर समाज की कल्पना को साकार कर रहे थे। समस्त जाति बंधनों से मुक्त निराकार ब्रह्मा की आराधना का मार्ग प्रशस्त कर दमित, पीड़ित, कुचले हुए निम्न वर्ग को सहारा देकर समाज में सिर उठाकर जीना सीखा रहे थे।''[21] स्पष्ट है कि आज भी राजस्थान का संत साहित्य हजारों वर्षों के बाद भी दिग्भ्रमित समाज को दिशा देने में सक्षम है। राजस्थान के संतों में मीरां, पीपा, धन्ना भगत, संत जाम्भो, जसनाथ, लालदास, हरिदास, दादू, सुंदरदास, रज्जब, गरीबदास, चरणदास, सहजोबाई, दयाबाई आदि उल्लेखनीय है। इन संतों ने 'जाति–पांति पूछे नहीं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई।' का आह्वान कर कर्म–गुण से मानव की श्रेष्ठता पर बल दिया है।

मीरां बाई की काव्य–चेतना सामंती परिवेश में पलकर भी लोक धरातल पर ही विकसित हुई है। मीरां ने

तत्कालीन सामाजिक पृष्ठभूमि में, जिन क्रांतिकारी मूल्यों का प्रवर्तन किया, वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण व विचारणीय हैं। मीरां ने सामंती आचारों-विचारों, रूढ़ियों, बंधनों के विरूद्ध व्यक्ति स्वातंयिं और नारी अस्तित्व की आवाज बुलंद की, जिसकी आज भी प्रासंगिकता है। यथा-

''छाड़ि दई कुल की कानि, कहा करि है कोई।
संतन ढिंग बैठि-बैठि लोक लाज खोई।''[22]

यहां मीरां ने अंतःपुर से बाहर न निकलने की राजोचित रीति को तोड़कर स्वच्छंदता हेतु स्त्री-मुक्ति की आवाज बुलंद की है। कृष्ण भक्ति के कारण मीरां के स्वजन मीरां से अप्रसन्न थे। सास, ननद, राणा सभी ने मीरां को बहुत कष्ट दिए, लेकिन मीरां ने रूढ़ियों, असह्य अत्याचारों के खिलाफ प्रतिक्रिया व्यक्त की। मीरां की रचनाएं वस्तुतः नारी-अंतर्मन की घुटन, पीड़ा, तड़फ को उजागर करती है। यहाँ सुमन राजे का कथन उल्लेखनीय है- ''मध्ययुगीन साहित्य में मीरां का जीवन और साहित्य नारी-विद्रोह का रचनात्मक आगाज है। उन्होंने इस कथन को सिद्ध कर दिया कि विद्रोही बनाए नहीं जाते, वे पैदा होते हैं।''[23] यहाँ स्पष्ट है कि सदियों से नारी सामाजिक, धार्मिक नियमों, रूढ़ियों के बंधनों में पिसती रही है। मीरां इन सबके खिलाफ विद्रोह करती है। हम सही मायने में 'स्त्री-विमर्श' का आरंभ यहीं से मान सकते हैं। वस्तुतः स्त्री-विमर्शकार भी मीरां के विद्रोही तेवर, साहस और स्वेच्छाचार की सराहना करते नजर आते हैं।

बंगाल और राजस्थान में तो भिन्नताएँ हैं, लेकिन स्वामी विवेकानंद के यशस्वी जीवन के निर्माण में राजस्थान का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इस संदर्भ में राजेंद्र शंकर भट्ट ने लिखा है- ''खेतड़ी में एक वीरांगना से वार्तालाप करके विवेकानंद को अभूतपूर्व अंतर्दृष्टि प्राप्त हुई थी और उसके आगे 'माँ-माँ' पुकारकर वे आत्म-विभोर हो गए थे। अपनी विश्व विजयी अमेरिकी यात्रा के पहले और उसके ठीक बाद, दूसरी और तीसरी बार, विवेकानंद खेतड़ी आए थे और अपने अभिनंदन के लिए खेतड़ी में एकत्रित जन-समूह के समक्ष स्वयं भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि भारत की सेवा के लिए वे जो कुछ भी कर पाए, वह खेतड़ी और उसके राजा के सहयोग के बिना संभव नहीं होता।''[24] यहाँ स्पष्ट है कि संसार को समता और भाईचारे का संदेश देने वाले विवेकानंदजी ने सच्चा संदेश राजस्थान के खेतड़ी से प्राप्त किया, जिसकी स्मृति आज भी राजस्थान को महिमा मंडित कर रही है। खेतड़ी के राजा अजीतसिंह ने विवेकानंद को नये आयाम, उन्हें नया नाम, आत्मिक आनंद और असीम सम्मान दिया। राजस्थान की आत्मविभोर करने वाली प्रकृति ने विवेकानंद के व्यक्तित्व को निर्मित करने में अपनी अहम् भूमिका निभाई है।

इस तरह सर्वागतः स्पष्ट हो जाता है कि रंग-रंगीला हमारा राजस्थान है। इसकी लोक संस्कृति, भाषा, साहित्य, सौंदर्य, वेशभूषा, रहन-सहन, आस्था, धर्म, रीति-रिवाज, पर्व, मेले, त्योहार, गीत-संगीत और शिल्प की अनूठी कलात्मक धरोहर और उसका वैभव समग्र विश्व में प्रसिद्ध है। इसी से अभिभूत होकर विदेशी सैलानी हर वर्ष सतरंगी संस्कृति का लुत्फ लठाते हैं, जिसकी आज प्रासंगिकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *राजस्थानी लोक साहित्य : नानूराम संस्कर्ता, पृ. 09, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, सं. 2000*
2. *लोक साहित्य : अर्थ और व्याप्ति, डॉ. सुरेश गौतम, पृ. VIII, संजय प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2008*
3. *आधुनिक राजस्थानी काव्य, सं. रामेश्वर दयाल श्रीमाली, पृ. 76, साहित्य अकादेमी, प्र.सं. 1991*
4. *सांस्कृतिक राजस्थान : रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत, पृ. 89, राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, प्र.सं. 1994*
5. *उद्धृत- प्राचीन काव्य, सं. डॉ. सत्यनारायण शर्मा, पृ. 41, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, चतुर्थ सं. 2011*
6. *लोक साहित्य विज्ञान : डॉ. सत्येंद्र, पृ. 92, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, सं. 2006*
7. *आधुनिक राजस्थानी काव्य, सं. रामेश्वरदयाल श्रीमाली, पृ. 53 साहित्य अकादेमी, प्र.सं. 1991*
8. *उद्धृत, भारतीय साहित्य में बारहमासा और प्रकृति चित्रण, श्रीमती दमयंती कछवाहा, पृ. 132, रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, सं. 2015*
9. *वही, पृ. 145*
10. *राजस्थान के कवि, सं. रावत सारस्वत, पृ. 08, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, द्वि. संशोधित सं. 2010*
11. *उद्धृत, आधुनिक राजस्थानी काव्य, सं. रामेश्वरदयाल श्रीमाली, पृ. 76, साहित्य अकादेमी, प्र. सं. 1991*
12. *राजस्थान का सांस्कृतिक प्रवाह : राजेंद्र शंकर भट्ट, पृ. 85, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, पृ. सं. 2000*

13. सांस्कृतिक राजस्थान : रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत, पृ. 100, राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, पृ. सं. 1994
14. आधुनिक राजस्थानी काव्य, सं. रामेश्वर दयाल श्रीमाली, पृ. 74, साहित्य अकादेमी, पृ. सं. 1991
15. राजस्थानी काव्य संग्रह, सं. स्व. डॉ. नारायण सिंह भाटी, पृ. 38, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, द्वितीय सं. 2007
16. वीर सतसई (सूर्यमल्ल मिसण), सं. कन्हैयालाल सहल, ठा. ईश्वरदान आशिया, प्रो. पतराम गौड़, पृ. 179, राजस्थान साहित्य संस्थान, जोधपुर, सं. 2011
17. वही, पृ. 92
18. वही, पृ. 96
19. वही, पृ. 111
20. उद्धृत, आधुनिक राजस्थानी काव्य, सं. रामेश्वर दयाल श्रीमाली, पृ. 47, साहित्य अकादेमी, पृ. सं. 1991
21. राजस्थन के संत : डॉ. राजेश अनुपम, पृ. 5, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृ.सं. 2009
22. मीरां पदावली, सं. डॉ. शंभू सिंह मनोहर, पृ. 105, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, सं.–1969
23. हिंदी साहित्य का इतिहास : सुमन राजे, पृ. 148, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, सं. 2006
24. राजस्थान का सांस्कृतिक प्रवाह : राजेंद्र शंकर भट्ट, पृ. 58, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम सं. 2000

संतकवि मोहनदास व उनकी रचनाएँ

डॉली प्रजापत
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

मोहनपंथ प्रवर्तक संतकवि मोहनदास एक प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। फिर भी हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ एवं सन्दर्भग्रन्थ इस प्रतिभाशाली संतकवि के बारे में लगभग मौन है। हमारा उद्देश्य इस प्रतिभाशाली संतकवि के जीवन व उनकी रचनाओं से साहित्य जगत को परिचित करवाना है। मोहनदास ने अपने साहित्य के द्वारा तत्कालीन समयानुसार जिन जीवन मूल्यों की स्थापना की व भ्रमित मावन जाति को विज्ञान सम्मत जीवन जीने की दिशा प्रदान की वह आज के युग में भी प्रासंगिक है।

संकेताक्षर : *निर्गुण संत, मोहनपंथ, मोहनदास, जीवनकाल, गुरु, शिष्य, साधना स्थल, साख्य, वाणी, चितावणी, सबद।*

मध्यकालीन हस्तलिखित ग्रन्थों पर कार्य करना हमेशा से ही श्रमसाध्य रहा है इसीलिए ऐसे ग्रन्थ धीरे–धीरे जीण क्षीण होकर खत्म होने के कगार पर हैं। हस्तलिखित ग्रन्थों में निहित ज्ञान को सहेज कर उसे प्रकाशित करने से ज्ञान संचित व सुरक्षित होता है साथ ही बहुत सारे कवि जो प्रकाश में नहीं आने के कारण अंधकार की स्थिति में है उनका साहित्य भी जनसमाज में पहुँचने का रास्ता भी प्रशस्त होता है। ऐसे ही एक संतकवि मोहनदास हुए हैं, जिनका लगभग आधा साहित्य अप्रकाशित हैं। हमारे समीक्ष्य संतकवि मोहनदास को भ्रमवश मोहनदास निरंजनी मान लिया गया था परन्तु अब यह निश्चित हो गया है कि हमारे समीक्ष्य मोहनदास व मोहनदास निरंजनी दोनों भिन्न–भिन्न हैं ये किसी सम्प्रदाय से संबंधित नहीं है बल्कि स्वतंत्र संतकवि है।

संतकवि मोहनदास का जीवन परिचय

मध्यकालीन निर्गुण संतों के प्रमाणिक जीवनवृत्त प्रायः उपलब्ध नहीं होते और चूंकि इन संतों का उद्देश्य मात्र कविता करना नहीं होता था। अतः ये कवि अपने स्वयं के बारे में अपनी कविता में न के बराबर लिखते थे। ऐसे में इन कवियों का जीवनवृत्त खींचना शोधार्थियों के लिए प्रायः चुनौतीपूर्ण रहा है। संतकवि मोहनदास के बारे में कमोबेश यही स्थिति है। संतकवि मोहनदास की जो रचनाएँ मिलती हैं उनमें उनके जीवन संबंधी कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती। माता–पिता, गुरु, जन्म स्थान आदि के सम्बंध में कहीं कोई संकेत नहीं मिलता है। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक इतिहास ग्रंथ भी इनके जीवनवृत्त या इनसे जुड़ी अन्य जानकारियों या कार्यो के बारे में मौन हैं। इनके सम्प्रदाय में भी इनके बारे में आधी अधूरी जानकारी मिलती है जो भ्रम की स्थिति उत्पन्न कर देती है।

जीवनकाल – संतकवि मोहनदास की जन्मतिथि का उल्लेख कहीं नहीं है न ही उनकी रचनाओं में कहीं रचनाकाल का उल्लेख है जिससे उनके समय का अनुमान लग सके। परन्तु एक जगह इनकी मृत्युतिथि का उल्लेख मिलता हैं जो इस प्रकार है– ''बडिया के नीचे रास्ता जयलाल मुंशी का, नाहरगढ़ रोड, पुरानी बस्ती जयपुर (राज.) में है जहाँ पर आज भी एक गढ़ीनुमा चार दिवारी के मध्यसुन्दर छतरी में उनके चरण कमल स्थापित हैं जिसे उनकी समाधि कहा जाता है''[1] इस चरण चौकी पर खुदाई कर लिखा हुआ कि ''श्रावण बदी 8 संवत् 1876 में मुक्ति हुआ''[2] अतः कवि की मृत्युतिथि संवत् 1876 अर्थात् सन् 1819 ई. निश्चित हैं। इस आधार पर उनका जीवनकाल 18वीं शताब्दी के द्वितीय पाद से लेकर सन् 1819 तक माना जा सकता हैं।

गुरु – संतकवि मोहनदास ने अपनी सभी रचनाओं में गुरु को बहुत महत्व दिया है व गुरु का विशद वर्णन भी प्रस्तुत किया है परन्तु उन्होंने अपनी रचनाओं में कहीं भी अपने गुरु के नाम का उल्लेख नहीं किया है। एक छन्द में उन्होंने पीर को अपना गुरूबताया है। ये पीर ईश्वर का ही स्वरूप है किसी संतपुरूष का द्योतक नहीं है।

शिष्य– संतकवि मोहनदास के शिष्यों की जानकारी कई स्रोतों से मिलती है उनके समाधि स्थल के चारों कोनों में इनके शिष्यों के चरणकमल, नाम व मृत्युतिथि अंकित है। साथ ही प्रसनदास द्वारा लिपिबद्ध पाण्डुलिपि में भी इनके शिष्यों की रचनाएँ संकलित हैं। वर्तमान में मोहनपंथी आश्रमों में भी उनका विवरण मिल जाता है। इनके प्रमुख शिष्य व प्रशिष्य इस प्रकार है– (1) बिहारी दास (2) कुस्पालदास पुरुषोत्तमदास ब्रहमदास। इनके बाद के शिष्यों का क्रमबद्ध विवरण उपलब्ध नहीं है।

साधना स्थल– संतकवि मोहनदास की कर्मस्थली हरियाणा रही है परन्तु हरियाणा में इनके साधना स्थल के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती, ये घुमन्तु प्रवृति के सन्त थें मनोज कुमार 'प्रीत' के अनुसार ''अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ऐसे ही एक संत शिरोमणि विभूति बाबा मोहनदास जी की अध्यात्मिक प्रेरक वाणी ने सहारनपुर (उ.प्र.) से लेकर (राज.) एवं बांगड़ के पश्चिमी छोर से लेकर ब्रजभूमि तक के जनमानस पर अपने चिंतन, दर्शन, जीवन–शैली एवं विज्ञान सम्मत ज्ञान पुंज की अमिट छाप छोड़ी।''[3] इनकी समाधि जयपुर (राजस्थान) में मिलती है जिसे इनके जीवन का अंतिम साधना स्थल मान सकते हैं परन्तु उनके जीवन का एक निश्चित साधना स्थल कौनसा था। इसके बारे में जानकारी नहीं मिलती।

वर्तमान के मोहनपंथी आश्रम– वर्तमान में दिल्ली, हरियाणा में कई मोहनपंथी आश्रम स्थापित है। जिनमें से प्रमुख हैं – हजूरीदास (समयपुर बादली) वर्तमान :– रोहिणी, दिल्ली।[4] हजूरीदास चावड़ी बाजार (दिल्ली)।[5] नरहड़दास बिलखा–चुलखा, जिला रेवाड़ी (हरियाणा)।[6] राहलियावास, जिला रेवाड़ी (हरियाणा)।[7] ग्राम सांपली, जिला रेवाड़ी (हरियाणा)।[8]इस प्रकार अनके जगहों पर स्थापित ये आश्रम समाज सेवा में रत हैं। इन आश्रमों के रुप में यह पंथ आज भी जीवित हैं।

रचनाएँ– निर्गुण संतों के यहाँ वाणी लेखन की परम्परा प्रसिद्ध रही है जो कबीर, दादू, सुन्दरदास आदि संतों के काव्य में देखने को मिलती है। ये वाणियाँ प्रायः अनेक शीर्षकों के अन्तर्गत अंगों में विभक्त होती है। इन संतों के यहाँ गुरु को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। बहुत सारे निर्गुण संतों ने चेतावनी शीर्षक से ग्रन्थ निर्माण किये हैं कवि मोहनदास भी न केवल इस परम्परा को आगे बढ़ाते हैं वरन् इसे समृद्ध भी करते हैं। मोहनपंथ प्रवर्तक संतकवि मोहनदास एक प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। इनके कृतित्व को देखकर इनकी साहित्यक प्रतिभा का पता सहज ही चल जाता हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थ एवं सन्दर्भ ग्रन्थ व इनके बारे में मौन है राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के संग्रहालय में इनका कृतित्व हस्तलिखित ग्रंथ के रूप में उपलब्ध होता है। मोहनदासजी की लगभग सम्पूर्ण रचनाओं से संबंधित एक अन्य हस्तलिखित ग्रन्थ हमें मोहनपंथी आश्रम–साँपली (हरियाणा) में देखने को मिला। इस ग्रंथ में मोहनदास व उनके शिष्यों के अलावा चरणदास, सुन्दरदास, रज्जबदास, दादूदयाल, सन्तदास आदि अन्य अनेक संतो की रचनाएँ भी संकलित हैं। इस ग्रंथ के लिपिकर्ता प्रसनदास है इसी ग्रन्थ के आधार पर श्री महावीर सिंह खोला ने मोहनदास की दोनों वाणियों का दो भागों में संपादन किया। खोला जी ने प्रसनदास द्वारा लिपिबद्ध ग्रन्थ के आधार पर मोहनदास के नाम पर पाँच रचनाएँ बतायी हैं जो निम्नलिखित हैं।

1. वाणी– प्रथम स्तुति
2. वाणी– निर्गुण स्तुति का कवित्त
3. चितावणी–
4. अष्टावक्र
5. येकादस भागवत की भाषा।[9]

उनकी रचनाओं के अध्ययन व अनुशीलन से हमने ज्ञात किया कि ''अष्टावक्र'' व ''येकादस भागवत की भाषा' कवि मोहनदास की रचनाएँ न होकर किसी अन्य कवि मोहनदास कृत है। साथ ही शोधकार्य के दौरान हमें कविकृत नवीन रचनाएँ 'सबद' व आरतियाँ मिली है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर मोहनदास की प्रमुख उपलब्ध रचनाएँ इस प्रकार है। (1) वाणी (2) वाणी–साख्य (3) चितावणी (4) सबद (5) आरतियाँ

वाणी– मोहनदास की इस वाणी को खोलाजी ने प्रसनदास द्वारा लिपिबद्ध ग्रन्थ के आधार पर अनुभव वाणी नाम से संपादित व प्रकाशित किया। प्रसनदास द्वारा लिपिबद्ध हस्तलिखित ग्रन्थ में पत्र संख्या 1 से लगाकर 123 तक यह वाणी लिपिबद्ध है इन दोनों मे वाणी को 35 अंगो में विभक्त किया गया है। इस वाणी की एक अन्य प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में उपलब्ध हुई जिसका ग्रंथांक 34749 है। इसमें पत्र संख्या 204 से लगाकर 472 तक यह वाणी उपलब्ध होती है इस प्रति में वाणी 33 अंगों में विभाजित है, इस प्रति मे दो अंग 'कलयुगरासा को अंग' व 'चन्द्रायण फुटकर' उपलब्ध नहीं होते हैं।

खोला जी ने इस वाणी का नाम 'चन्द्रायण' माना हैजो उचित नहीं लगता। क्योंकि हो सकता है प्रसनदास जी ने भूलवश 'उतर प्रश्न सिष संवाद को अंग' के अंत में 'इति श्री चन्द्रायण को अंग संपूर्ण' लिख दिया हो जो कि पूर्व अंग का नाम हैं। इस वाणी के सभी अंगों के प्रारम्भ व अंत दोनों में समान नाम इंगित किया गया है केवल इस अंग के अंत मे नाम समान नही है। साथ ही ग्रंथांक 34749 में उपलब्ध प्रति मे कहीं भी 'चन्द्रायण' शब्द का उल्लेख नहीं मिलता।

35 अंगों मे विभक्त इस वाणी में 1638 छंद हैं जिसके अन्तर्गत 1604 चौपाईयाँ, 23 दोहें, 7 कुंडलियाँ, 4 छप्पय छंद है, उदाहरण –

राखि भरोसा प्रभु का हिरदै मांहि रै।
तोकू कबहूं भूले समरथ नांहि रै।
कूंजर कीड़ी आदि ले सब की चेत बी।
हरि हां अनजल सब काहु कूं देत बी।।[10]

वाणी (साख्य)– मोहनदास की वाणी से सम्बन्धित सभी हस्तलिखित ग्रंथों में साखी–काव्य प्रतिलिपित मिलता है प्रायः माना जाता है कि 'साखी' का मतलब दोहे मे लिखी गई रचना, परन्तु मोहनदास के काव्य के 'साखी' भाग के अन्तर्गत दोहों और सोरठों के साथ छप्पय, कुण्डलियाँ आदि छन्दों का भी प्रयोग हैं। इसके अलावा यह वाणी 14 अंगों में विभक्त है जैसे –(1) गुरुदेव को अंग (2) सुमरण को अंग (3) बिरह को अंग (4) परचा को अंग। यह वाणी प्रसनदास द्वारा लिपिकृत पाण्डुलिपि में पत्र संख्या 124 से लगाकर 221 तक मिलती है साथ ही राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में उपलब्ध हस्तलिखित ग्रंथांक 34749 व 34751 में भी मिलती है। खोला जी ने इस वाणी का संपादन अनुभव वाणी भाग–द्वितीय के नाम से किया है। 14 अंगों में विभक्त इस वाणी में कुल 2012 छन्द हैं। इस वाणी में मोहनदास द्वारा गुरु की महिमा, नाम सुमरण की महत्ता, आत्मा परमात्मा के मिलन, वियोग, स्वरूप बिसरण से उत्पन्न होने वाली स्थिति, साधु की महत्ता, बाह्याडंबरों पर व्यंग्य, मन की शुद्धता, पतिव्रता व शूर के रूपक द्वारा एकनिष्ठ भक्ति की महत्ता आदि विषयों पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है,

मोहनया संसार मैं। साधु रतन अमोल।
और रतन का मोल हैं। या का मोल न तोल।।[11]

चितावणी– संतकवि मोहनदास द्वारा कथात्मक शैली में विरचित ग्रन्थ 'चितावणी' को कालजयी एवं भ्रम निवारक चैतन्य साहित्य की कोटि में बताना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। इस ग्रन्थ में 22 अरिल्ल, 326 ईदंव, कुंडलियाँ। दोहा और 1 सोरठा (कुल 351 पद) हैं। 'चितावणी' की तीन हस्तलिखित प्रतियाँ मिली है दो प्रतियाँ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से व एक प्रति मोहनपंथी आश्रम–सांपली से मिली है। इसमें मनुष्य को मोह, ममता के बंधन छोड़कर ईश्वर का ध्यान करने व मानव जन्म को व्यर्थ ही न गंवाने को कहा है। उदाहरण दृष्टव्य है–

मैं ममता की मोट पटकतु,
राम का ध्यान धरो सुखदाई।
हीरा जन्म सुफल करै क्युं तै।
मोहनलाल कहै समझाई।।[12]

सबद – संतों की भाँति मोहनदास ने भी विभिन्न राग–रागनियों में निबद्ध पदों की रचना की है जिसे सबद कहते हैं। प्रसनदास द्वारा लिपिबद्ध हस्तलिखित ग्रन्थ में 'सबद' संकलित है। प्रसनदास ने इसे बिहारीदास कृत बताया है परन्तु जब इसका गहन अध्ययन किया तो संतकवि मोहनदास द्वारा रचित पाया। इसकी अन्य प्रति प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के हस्तलिखित ग्रंथाक 34751 में मिलती है परन्तु इसमें यह अपूर्ण मिलता हैं। सबद 29 रागों में विभक्त है। एक उदाहरण के लिये प्रस्तुत है–

मोह कूं प्रभू मति भरमावों,
भक्ति आपणी बीकरवावै।। टेक।।
सार सुधारस ईम्रत पावौ।
विषम जगत की ताप मिटावै।।
भरम करम के फंद छुडावौ।

प्रगट अपणौं दरस दिखावौ।
भक्त बिछल तुम बिडद कहावौ।
तो तुम अपणौ बिड़द निभावौ।
मोहन कू अब मति भरमावौ।
दरसण देकै जलणि बुझावौ।[13]

आरतियाँ– संतकवि मोहनदास ने आरतियों की रचना की। ये आरतियाँ संख्या में 5 हैं। प्रसनदास द्वारा लिपिकृत हस्तलिखित ग्रन्थ व राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के ग्रन्थाकं 34751 में उपलब्ध होती हैं। आरती उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है।

आरती अबगति हर तेरी।
तेरी भार सूं भार सब केरी।।
तुम ही सब रचना के करता।
तुम बिन कारिज कछु नहीं सरता।।
प्राण पिंड तुम ही सु नीकौ।
तुम बिन सब ही लागै फीकौ।
तुम मैं सब तुम ही सब मांही।
तुम बीन खाली कोई नाही।।
सदा आनंदघन तुम ही स्वामी।
आप सब के अंतर जामी।।
पुरण ब्रम्हं प्रम सुखकारी।
भगति बिलास रचना बिस्तारी।।
तुम मोहन मै दास तुमारा।
तेरी रजा मै रहै बिचारा।।[14]

निष्कर्ष

हम यह कह सकते हैं कि संत मोहनदास की रचनाओं मे उनके जीवन के संबंध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती है। माता–पिता, गुरु, स्थान आदि के सम्बन्ध में कही कोई संकेत नहीं मिलता है। बाह्य स्रोतों, साहित्येतिहास एवं आलोचनात्मक ग्रन्थों में भी इनके बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती। इनकी कृतियों में निहित विषयों के अनुशीलन से स्पष्ट हो जाता हैं कि संतकवि मोहनदास का संपूर्ण वाड्.मय भक्ति, दर्शन, साधना, आध्यात्मिकता, नीतिपरक विचारों तथा उनके स्वानुभवों से ओत – प्रोत है। इनकी रचनाओं के अंतर्गत वाणी में ज्ञान की बातों का भण्डार, चितावणी में उपदेशात्मक चेतावनी तथा पदों में कवि की स्वानुभुति, आत्मज्ञान, आत्मानुभव का परिचय मिलता है। अपनी रचनाओं द्वारा हिन्दी साहित्य संसार में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *महावीर सिंह खोला, मोहनपंथी आश्रम, साँपली – एक परिचय, प्रकाशक महन्त प्रेमदासजी, पृष्ठ संख्या – 29*
2. *वहीं, पृष्ठ संख्या – 29*
3. *वहीं, पृष्ठ संख्या –17*
4. *वहीं, पृष्ठ संख्या –31*
5. *वहीं, पृष्ठ संख्या –32*
6. *वही, पृष्ठ संख्या –32*
7. *वहीं, पृष्ठ संख्या –32*
8. *वहीं, पृष्ठ संख्या –32*
9. *महावीर सिंह खोला, अनुभव वाणी, समन्वय प्रकाशन, गाजियाबाद– 201002(उ.प्र.), प्रथम संस्करण – 2010, पृष्ठ संख्या – 11*
10. *वहीं, साध को अंग, पद – 36, पृष्ठ संख्या – 88*
11. *महावीर सिंह खोला , अनुभव वाणी भाग – द्वितीय, सुकीर्ति प्रकाशन, कैथल – 136027 (हरियाणा), प्रथम संस्करण 2015, साध को अंग, पद – 47, पृष्ठ संख्या 186*
12. *प्रसनदास द्वारा लिपिबद्ध एवं मोहनपंथी आश्रम साँपली से प्राप्त हस्तलिखित ग्रंथ*
13. *वहीं*
14. *वहीं*

वेलि क्रिसन रुकमणी री में लोक संस्कृति

डॉ. प्रेरणा माहेश्वरी
सह आचार्य, राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

लोक और संस्कृति हमारे जीवन के विविध रुपों से जुड़े हुए हैं। हमारे जीवन का ही दूसरा नाम लोक संस्कृति है। समाज का एक वर्ग किस प्रकार अपने रीति-रिवाजों, लोक-प्रथाओं, लोक विश्वास आदि को समाज में स्थापित करता है, यह सब लोक संस्कृति के अंतर्गत आता है। राजस्थानी साहित्य में वेलि काव्य की जो परंपरा चली उसमें पृथ्वीराज राठौड़ कृत वेलि क्रिसन रुकमणी री खंडकाव्य डिंगल साहित्य की उत्कृष्टम रचना है। दुरसा आढ़ा ने इस वेलि को पांचवा वेद और उन्नीसवां पुराण कहा है। यह 300 पद्यों का वर्णन प्रधान श्रृंगार रसात्मक काव्य है। इसकी कथा कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण कर उसके साथ विवाह करने की पौराणिक कथा पर आधारित है। प्रस्तुत शोध पत्र में कृष्ण-रुक्मिणी के प्रणय और विवाह की कथा के विशेष संदर्भ में लोक संस्कृति को प्रस्तुत किया गया है।

संकेताक्षर : *वल्ली, तोरण, फाग, बाजूबन्द, बंदनवार, लोक संस्कृति, पृथ्वीराज राठौड़।*

राजस्थान के इतिहास में पीथल के नाम से जाने जाने वाले पृथ्वीराज बीकानेर के शासक राव कल्याणमल के पुत्र थे जो अकबर के समकालीन थे। इनका जन्म बीकानेर रियासत में मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा संवत् 1606 को हुआ। इन्होंनें अनेक कृतियों की रचना की थी जिनमें भक्ति, श्रृंगार, वीरता, अध्यात्म आदि की झलक देखने को मिलती है। इनके द्वारा रचित कृतियों में सर्वश्रेष्ठ कृति वेली क्रिसन रुकमणी री है। वेलि के रचनाकाल के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। डॉ. एल.पी.टेस्सीटोरी ने वेलि का रचनाकाल संवत् 1637 को माना है। परन्तु टेस्सीटोरी द्वारा संपादित वेलि क्रिसन रुकमणी री के प्रकाशन के बाद कुछ प्रतिलिपियों में संवत् 1636, 1638, 1644 आदि का उल्लेख है। अतः इसका रचनाकाल सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में माना जा सकता है।

वेलि या वेल शब्द का संस्कृत रुप वल्ली है। वल्ली शब्द वल्ल धातु से बना है जिसका अर्थ है छाना या आगे बढना। यही वल्ली शब्द हिन्दी में बेलि और बेल तथा राजस्थानी में वेलि और वेल कहलाया। इस रचना को वेलि नाम देने का कारण छंद संख्या 291 में दिखाई देता है।

वल्ली तसु बीज भागवत वायौ
महि थाणौ प्रिथुदासमुख।
मूळ ताल जड़ अरथ, मण्डहे
सुथिर करणि चढ़ि छाँह सुख ।। 291।।

इस वेलि का बीज भागवत है। पृथ्वी पर यह भक्त पृथ्वीराज के मुख रुपी थांवले में बोया गया है। मूल पाठ इसकी डालियाँ है। अर्थ इसकी जड़ें हैं। इस वेलि रुपी लता को सुनने वालों के कान मंडप है, जिनके ऊपर यह चढ़ी रहती है और सुख ही इसकी छाया है। इस प्रकार पृथ्वीराज का वेलि से अर्थ वैष्णव धर्म की उस लता से है जो भागवत धर्म के रुप में निरन्तर बढ़ती रहेगी और श्रोतागण इसको सुनकर सुख की प्राप्ति करते हैं।

वेलि क्रिसन रुकमणी री में विदर्भ देश में कुंदनपुर नाम के नगर का वर्णन है। वहां के राजा भीष्मक के पांच पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्री का नाम रुक्मिणी था। रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह की मुख्य कथा के साथ साथ विविध

संस्कारों, रीतिरिवाज, वेशभूषा, पर्व-उत्सव आदि की जानकारी प्राप्त होती है।

पर्व एवं त्यौहार

लोक जीवन में पर्व एवं त्यौहारों का विशेष स्थान है। प्राचीनकाल से ही मनुष्य अपनी प्रसन्नता को अभिव्यक्त करने के लिए पर्व, त्यौहार आदि का आयोजन करता रहा है। वेलि में कुंदनपुर एवं द्वारिका में अलग-अलग प्रसंगों में उत्सव मनाए जाने का उल्लेख मिलता है। रुक्मिणी के युवा होने पर जब उसके विवाह की चर्चा हुई तब उसके भाई रुक्म ने पुरोहित को चन्देवरीपुरी भेजकर निमंत्रित किया। शिशुपाल बारात लेकर जब कुदनपुर पहुँचा तब नगर में उत्सव मनाए जाने का उल्लेख मिलता है। नगर में तम्बू लगाए गए, सोने के कलश बांधे जाने लगे और चारों ओर नगाड़े बजाए जाने लगे।

आगमि सिसुपाळ मण्डिजै ऊछव
नीसाणे पड़ती निहस।
पटमण्डप छाइजै कुंदणपुरि
कुन्दणमै बाझै कळस ।। 38 ।।

घर-घर में हींगलू के गारे और स्फटिक की ईंटों से नई दीवारें चुनी गई। चन्दन के तख्त, चन्दन के ही दरवाजे तथा खम्भे मूंगों से तथा उनके आधार (खुम्भियाँ) पन्ने से बनाए गए।

ग्रिह ग्रिह प्रति भींति, सुगारि हींगलू
ईट फिटकमै चुणी अचम्भ
चन्दण पाट कपाटई चन्दण,
खुम्भी पनाँ प्रवाळी खम्भ ।। 39 ।।

कवि ने भवेत और श्याम रंग के मण्डप समूहों की तुलना काले और सफेद बादलों से की हैं। बजते हुए नगाड़े जैसे बादलों के घनघोर गर्जन है। द्वार द्वार पर स्थापित तोरणों में चित्रित मयूर मानों पर्वतों पर नृत्य करते हुए मोर हैं।

जोइ जळद पटळ दळ सांवल-ऊजळ,
घुरै निसाण सोइ घणघोर
प्रोळि-प्रोळि तोरण परठीजै,
मण्डै किरि तण्डव गिरि मोर ।।40।।

झरोखों मे चढ़-चढ़कर नगर की औरतें मांगलिक गीत गाने लगी।

गावै करि मंगळ चढ़ि-चढ़ि गौखे ।।42।।

श्रीकृष्ण रुक्मिणी को साथ लेकर जब द्वारिका पहुंचे तब कवि ने आनन्द एवं उल्लास से पूर्ण नगरवासियों द्वारा उत्सव मनाए जाने का वर्णन किया है। प्रत्येक घर में बधाईदारों को इतना पुरस्कार दिया गया कि उनकी दरिद्रता ही समाप्त हो गई। चावल, हरी दूब, केसर, हल्दी आदि मांगलिक पदार्थ बरसाये गये।

वधाउआँ गृहे गृहे पुरवासी
दळिद्र तणौ दीधौ दळिद्र।
ऊछव हुआ, अखित ऊछळिया
हरी द्रोब, केसर, हळिद्र ।।142।।

नगर के रास्तों की सजावट का भी कवि ने वर्णन किया है। रास्तों पर अनेक द्वार बनाए गए और उन्हें दर्पण से सजाया गया। इन सजे हुए मार्गों पर रंग अबीर बिखरा हुआ था।

मुकुरमै प्रोळि, प्रोळिमै मारग
मारग सुरँग अबीरमइ ।।145।।

होली के त्यौहार का उल्लेख करते हुए कवि नेफाल्गुन महीने में वीणा, डफ, अलगूजा, वंशी बजाते हुए, हाथ में गुलाल लेकर और मुख से पंचम राग गाते हुए युवक-युवतियों के फाग खेलने का उल्लेख किया है।

वीणा डफ महुयरि वंस बजाए
रोरी करि मुख पंचम राग
तरुणी तरुण विरहि जण दुतरणि
फागुण घरि-घरि खेलै फाग। ।।227।।

रीति-रिवाज

एक स्वस्थ समाज को परपंरा पालक बनाने में रीति-रिवाजों का विशिष्ट योगदान होता है। जीवन से जुड़ी विविध प्रथाओं और परंपराओं को पृथ्वीराज ने वेलि में व्यक्त किया है। समाज में प्रचलित लोक विश्वासों के अंतर्गत शकुन-अपशकुन आदि का वर्णन भी वेलि में किया गया है। रुक्मिणी ने एक ब्राह्मण के माध्यम से कृष्ण को संदेश भेजा। ब्राह्मण के द्वारिका पहुँचने पर कृष्ण द्वारा अतिथि सत्कार करने का उल्लेख मिलता है।

ऊठिया जगतपति अन्तरजामी
दूरन्तरी आवतौ देखि
करि वन्दण आतिथ ध्रम कीधौ,
वेदे कहियौ तेणि विसेखि ।।54।।

रुक्मिणी को जब कृष्ण के आने का समाचार नहीं मिला तो वह चिंता करने लगी। इतने में ही उसे छींक

हुई। छींक होते ही उसे धीरज हुआ। इस प्रकार कवि ने समाज में प्रचलित शकुन का भी उल्लेख किया है।

रहिया हरि सही, जाणियौ रुशमणि,
कीध न इवड़ीढील कई
चिंतातुर चित इम चिन्तवती
थई छीक, तिम धीर थई ।।70।।

कवि ने तुलादान प्रथा का भी उल्लेख किया है। शरद ऋतु के आगमन के साथ जब सूर्य तुलाराशि में प्रविष्ट हुआ, तब दिन और रात्रि बराबर हो गये। इस समय राजा लोगों ने सोने के साथ तुलते हुए सोने का तुलादान किया।

तुलि बैठे तरणि, तेज तम तुलिया,
भूप कणय तुलता भू भाति
दिणि-दिणि तिणि लघुता प्रामै दिन,
राति-राति तिणि गौरव राति ।।212।।

वेशभूषा

वेशभूषा का संस्कृति से घनिष्ठ संबंध है। वेलि में रुक्मणी के शृंगार प्रकरण में विभिन्न आभूषणों जैसे कण्ठी, टीका, बाजूबन्द, कंगन आदि का उल्लेख हुआ है। रुक्मिणी ने एक ब्राह्मण के माध्यम से कृष्ण को निमंत्रण भेजा। कृष्ण द्वारिका में थे। कृष्ण के कुंदनपुर आने की सूचना मिलने के बाद रुक्मिणी ने श्रृंगार किया और विभिन्न आभूषण धारण किए-

रुक्मिणी ने गले में पोत की (चीढ़ों की) कण्ठी धारण की जो ऐसी दिखाई दे रही थी मानो कबूतर के या नीलकण्ठ के गले की रेखा हो अथवा हिमालय के चारों ओर यमुना घिर आई हो अथवा शंखधारी विष्णु ने शंख को, उसके दो बराबर भाग करके अर्थात् बीचोंबीच से अपनी उंगली में पकड़ रखा हो।

कंठ पोत कपोत कि कहुँ नीलकँठ
वडगिरि कालिन्द्री वळी।
समै भागि किरि संड्ख सड्ंखधर
एकणि ग्रहियौ अंगुळी ।।84।।

रुक्मिणी ने मुख और ललाट के सन्धि स्थल (ललाट) पर रत्नजड़ित टीका धारण किया। वह ऐसा शोभायमान था मानो रुक्मिणी का जो सुन्दर भाग्य पीठ पीछे चला गया था, अब श्रीकृष्ण के आने से निर्भय होकर मांग के रास्ते से चलकर उसके ललाट पर आ गया था।

मुखसिख संधि तिलक रतनमै मण्डित,
गयौ जु हूँतौ पूठि गळि।
आयै क्रिसन माँग मग आयौ
भाग कि जाणे भालियळि ।।88।।

रुक्मिणी ने दोनों गोरी भुजाओं में काले रेशम में पिरोये हुए बाजूबन्द बाँधे। दोनों भुजाओं में बँधे हुए बाजुबन्दों के लटकते रेशमी छोर ऐसे दिखाई देते हैं मानो चन्दन वृक्ष की शाखाओं से बँधे हुए मणियों के झूलों में मणिधारी काले सर्प झूल रहे हों।

बाजूबँध बन्धे गोर बाहु बिहुँ
स्याम पाट सोहन्त सिरी।
मणिमै हींडि हींडलै मणिधर
किरि साखा श्रीखंड की ।।92।।

रुक्मिणी ने अपनी गोरी कलाइयों में मोतियों के गजरे तथा नवरत्नी पहुँचियाँ और फिर विविध प्रकार के कंगन पहने। उनको पहने हुए उनका हाथ ऐसा दिखाई दे रहा है मानो चन्द्रमा को बेधे हुए हस्तनक्षत्र हो अथवा रंगबिरंगे भ्रमरों से आच्छादित अर्द्ध विकसित कमल हो।

गजरा नवग्रही प्रोंचिया प्रोंचे
वळे वळे विधि-विधि वळित।
हसत नखित्र वेधियौ हिमकरि
अरध कमळ अळि आवरित ।।93।।

चंद्रमा के समान मुख वाली राजकुमारी ने अपने चरणों में सोने से निर्मित घुँघरू और नूपुर धारण किए हैं।

चरणे चामीकर तणा चंदाणणि
सज नूपुर घूघरा सजि। ।।97।।

वर्षा ऋतु का वर्णन करते समय कवि ने पृथ्वी द्वारा नदी रुपी हार और पैरों में मेंढ़क रुपी नूपुर धारण किए जाने का उल्लेख किया है।

तरु लता पल्लवित तृणे अंकुरित
नीळाणी नीळम्बर न्याइ।
प्रथमी नदिमै हार पहरिया
पहिरे दादुर नूपुर पाइ। ।।198।।

आगे कवि ने लिखा है कि पृथ्वी ने वर्षा से धुली हुई काली पर्वत श्रेणियों रुपी काजल लगा लिया है। उसने समुद्र रुपी कटि मेखला कमर में धारण की है और वीर बहूटी रुपी कुंकुम की बिन्दी लगा रखी है।

काजळ गिरि धार रेख काजळ करि
कटि मेखला पयोधि कटि।
मामोलौ बिन्दुलौ कुँकूँमै
पृथिमी दीध निलाट पटि। ।।199।।

संस्कार

मनुष्य जीवनी में संस्कारों का विशेष महत्व है। वेलि में कवि ने वसंत ऋतु का वर्णन करते समय पुत्र जन्म के अवसर पर होने वाले संस्कारों का वर्णन किया है। वनस्पति रुपी माता ने वसन्त रूपी पुत्र को जन्म दिया। वनस्पति रुपी प्रसूता के सुख से प्रसव हो जाने पर मिठाइयों, पानों–फलों, पुष्पों, सुन्दर वस्त्रों आदि से होली को पूजा गया।

पकवाने पाने फले सुपुहपे
सुरँगे वसत्रे दरब स्त्रब
पूजियै कसटि भँगि वनसपती
प्रसूतिका होळिका प्रब ।।230।।

पुत्र–जन्म के उत्सव पर तोरण बांधे जाते हैं, कलस स्थापित किये जाते हैं, और बंदनवार बांधी जाती है। वसंत का जन्म होने पर आमों में जो प्रचुर मंजरी आयी वही मानो तोरण बांधे गये, कमल की कलियाँ मानो मंगल कलस हुई, और एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक जो लताएँ फैल रही थी वही मानो बंदनवारें बांधी गई।

अति अम्ब मौर तोरण अजु अम्बुज
कळी सु मंगळ कळस करि
वंन्नरवाळ बँधाणी वल्ली
तरुवर एका बियै तरि ।।233।।

पुत्र–जन्म पर माता पीळा नामक वस्त्र पहनती है, वसन्त के जन्म पर वनस्पति ने कर्णिकार और टेसू के पीले फूल धारण किये।

पुहप करणिकरि केसू पहिरे
वनसपती पीळा वसन ।।236।।

इसी प्रकार विवाह संस्कार भी अति महत्वपूर्ण संस्कार है। कवि ने कृष्ण एवं रुक्मणी के की संपूर्ण प्रक्रिया का वर्णन किया है। रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह संस्कार के लिए वेदों की मूर्ति रुप ब्राह्मण आए। रत्नों से वेदिका बनाई गई। हरे बाँसों के बीच सोने चाँदी के मंगल कलश रखे गए। अरणि (अरण्य) की लकड़ी से अग्नि प्रज्वलित की गई, अगरु का ईंधन बनाया गया और कपूर तथा घी की निरन्तर आहुतियाँ दी जाने लगी।

विप्र मूरति वेद रतनमै वेदी
वंस आद्र, अरजुनमैं वेह।
अरणी अगनि अगरमै इन्धण
आहुति घृत घणसार अछेह। ।।153।।

मधु–पर्क आदि से संस्कार किए हुए वर–वधू वहां बैठा दिए गए। उनकी पीठ पश्चिम दिशा की ओर तथा मुख पूर्व दिशा की ओर रखे गये। उन पर छत्र आच्छादित किया गया।

पच्छिम दिसि पूठ, पूरब मुख परठ्ति
परठ्ति ऊपरि आतपत्र।
मधुपर्कादि संसकार मण्डित
त्री वर बे बैसाणि तत्र। ।।154।।

तीन फेरों में वधू को आगे रखकर चौथे फेरे में वर (श्रीकृष्ण) आगे हुए।

आगळै प्रिया प्री चौथे आँरभि
फेरा त्रिण्हि इण भाँति फिरि। ।।156।।

इसके पश्चात् पंडितों ने वर और वधू से विधिपूर्वक परस्पर प्रतिज्ञाएँ करवाकर रुक्मिणी को कृष्ण के बायीं ओर बैठाया। इस प्रकार लोगों ने मुंहमांगी वेला पायी और वेद–पाठकों ने नवों निधियां पायी।

पधरावि त्रिया वामै प्रभणावे
वाच परसपर यथाविधि
लाधी वेळा माँगी लाधी
निगम पाठके नवे निधि ।।157।।

5. ललित कला

लोक संगीत, लोक वाद्य, लोक नाट्य, लोक कला, लोक गीत आदि का वर्णन वेलि में किया गया है। कृष्ण एवं रुक्मणी के द्वारिका पहुँचने पर स्त्रियों द्वारा मांगलिक गीत गाने का उल्लेख मिलता है।

धवळहरे धवळ दियै जस धवळ्ति
धण नागर देखे सधण
सकुसळ सबळ सदळ सिरि सामळ
पुहपबूँद लागी पड़ण ।।146।।

जहां कहीं भी पर्वो, उत्सवों या किसी शुभ अवसर का वर्णन किया गया है, वहां लोक वाद्य का उल्लेख हुआ है। पृथ्वीराज ने वीणा, डफ, अलगोजा, मृदंग, नगाड़ा आदि वाद्यों का उल्लेख किया है। प्रकृति का वर्णन करते समय ऋतुराज बसंत की महफिल की जानकारी मिलती है। वन मण्डप बना। झरने ही मृदंग बने। पंचबाणों का अधिपति(कामदेव) ही उत्सव का नायक बना। कोयल गायिका बनी, पृथ्वी रंगभूमि बनी और विविध पक्षीगण ही महफिल के दर्शक व श्रोतागण हैं।

आगळि रितुराय मंडियौ अवसर,
मण्डप वन नीझरण मृदंग।
पंचबाण नायक, गायक पिक,

वसुह रंग, मेळगर विहंग ।।243।।

इसमें राजहंस कला के जानने वाले हैं। मोर नर्तक नृत्य करने वाले, पवन ताल देने वाले, पत्ते करताल है। झिल्ली की झंकार तार के बाजे के स्वर है। भँवर नसतरंग बजाने वाला है और चकोर वहाँ त्रिवट ताल देने वाला है।

कळहंस जाणगर मोर निरतकर
पवन तालधर ताल पत्र।
आरि तन्तिसरभमर उपंगी
तीवट उघट चकोर तत्र ।।244।।

कार्तिक महीने में कुमारी कन्याओं के द्वारा घर घर दरवाजों पर चित्र बनाए जाने का उल्लेख मिलता है।

छवि नवी नवी नव नवा महोछव
मंडियै जिणि आणंद मई।
कातिग घरि घरि द्वारि कुमारी
थिर चीत्रंति चित्राम थई। ।।214।।

इस प्रकार पृथ्वीराज राठौड़ ने रुक्मिणी श्रृंगार वर्णन प्रकरण, कृष्ण–रुक्मिणी विवाह प्रकरण, वसंत जन्म प्रकरण, होली के त्यौहार एवं विभिन्न उत्सवों का वर्णन करते समय निज अनुभव एवं सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर लोक संस्कृति का चित्रण किया है।राजस्थानी साहित्य के मध्यकाल में जबकि वीर, भक्ति और श्रृंगार की त्रिवेणी अबाध गति से बह रही थी, पृथ्वीराज राठौड़ ने एक स्वतंत्र काव्य के रुप में वेलि की रचना की। श्रीमद्भागवत से इसकी कथा साम्य होते हुए भी कवि ने कई मौलिक घटनाओं, वर्णनों का सृजन कर अत्यन्त प्राचीन कथा को एक अभिनव रुप दे दिया है। वेलि क्रिसन रुकमणी री में रुकमणी एवं कृष्ण के विवाह के विशेष संदर्भ में समाज और संस्कृति का अद्भुत सामंजस्य मिलता है। पर्व–त्यौहार, संस्कार, रीति–रिवाज, वेशभूषा आदि संस्कृति के नियामक तत्व है। वेलि क्रिसन रुकमणी री में विभिन्न सांस्कृतिक तत्वों की जीवंत अभिव्यक्ति हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द–बीकानेर राज्य का इतिहास (प्रथम खण्ड),राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 2013, पृ.144*
2. *शानावत,नरेन्द्र–राजस्थानी वेलि साहित्य, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर, 1965, पृ.31*
3. *दीक्षित आनन्दप्रकाश (संपादक)–वेलि क्रिसन रुकमणी री राठौड़राज प्रिथीराज री कही, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1970, पृ.62*
4. *वही, पृ.10*
5. *वही, पृ.11*
6. *वही, पृ.11*
7. *वही, पृ.11*
8. *वही, पृ.32*
9. *वही, पृ.33*
10. *वही, पृ.49*
11. *पंचमराग–इसका उच्चारण नाभि, उरु, कंठ, हृदय और मूर्द्धा से होता है।*
12. *फाग– फाल्गुन मास में गाये जाने वाले वासंतिक गीत।*
13. *दीक्षित आनन्दप्रकाश (संपादक)–वेलि क्रिसन रुकमणी री राठौड़राज प्रिथीराज री कही, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1970, पृ.14*
14. *वही, पृ.17*
15. *वही, पृ.46*
16. *वही, पृ.20*
17. *वही, पृ.21*
18. *वही, पृ.22*
19. *वही, पृ.22*
20. *वही, पृ.23*
21. *वही, पृ.43*
22. *वही, पृ.43*
23. *वही, पृ.49*
24. *वही, पृ.50*
25. *वही, पृ.51*
26. *वही, पृ.34–35*
27. *वही, पृ.35*
28. *वही, पृ.35*
29. *वही, पृ. 35*
30. *वही, पृ.33*
31. *वही, पृ.52*
32. *वही, पृ.52*
33. *तार के वाद्यों का स्वर (सितार, सारंगी, वीणा, इकतारा, दिलरुबा)*
34. *उपंगी–नसतरंग का बजाने वाला*
35. *तीवट– दोपहर के समय गाया जाने वाला राग*
36. *उघट–मात्राओं की गणना के लिये बोले जाने वाले बोल।*
37. *वही, पृ.46*

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 एवं भारतीय समाज

डॉ. राजेन्द्र सिंह खीची
सहायक आचार्य, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी राष्ट्र अथवा समाज को व्यवस्थित एवं प्रगतिशील रूप से चलाने के लिए जहाँ उस पर प्रशासनिक व्यवस्थाऐ क्रियान्वित की जाती है वहीं कई नीतियों का निर्धारण भी किया जाता हैं, जिनमें समय, काल एवं परिस्थितियों अनुसार समय-समय पर बदलाव भी किया जाना एक आवश्यक प्रक्रिया है। किसी भी समाज को प्रगति में अन्य क्षेत्रों के साथ वहां की शिक्षा व्यवस्था एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। भारतीय समाज में शिक्षा व्यवस्था भारत की आजादी से पूर्व से ही चली आ रही हैं। आजादी पश्चात् भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति सन् 1968 में बनी, इसके पश्चात् सन् 1986 में नवीन शिक्षा नीति बनाई गई जिसमें सन् 1992 में संशोधन भी किया गया। वर्तमान में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का निर्माण किया गया, जिसे 29 जुलाई 2020 को लागु किया गया। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में क्या नए बड़े बदलाव हैं ? इसकी विशेषताऐं क्या हैं ? इसकी योजनाऐं क्या हैं ? इसके उद्देश्य क्या हैं, एवं सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि इसके क्रियान्वयन से हमारे भारतीय समाज पर क्या प्रभाव आ सकता है, तथा इससे समाज में शिक्षा के क्षेत्र में कौन-कौन सी परिवर्तित परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती है, इस आलेख में इस पहलू पर विचार व्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

संकेताक्षर *: उपनयन संस्कार, उपाध्याय, श्रोत्रिय, मुदालियार आयोग, राधाकृष्णन आयोग, केंद्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद, कोठारी कमीशन, मानव संसाधन मंत्रालय, शिक्षा मंत्रालय, सकल नामांकन अनुपात, फाउंडेशन स्टेज, प्रीप्रेटरी स्टेज, समवर्ती सूची।*

जब शिक्षा की बात आती है तो हमें सर्वप्रथम तो यह जान लेना चाहिए कि शिक्षा क्या है, इसका क्या महत्व है तथा एक शिक्षित व्यक्ति का समाज के प्रति क्या आचरण रहता है। क्या शिक्षा नौकरी अथवा रोजगार प्राप्त करने का माध्यम मात्र है या फिर शिक्षा विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों तक सीमित है ? यदि ऐसा ही है तो हम उन्हें तो शिक्षितों की श्रेणी में रखेंगे जिन्होंने शिक्षा के विभिन्न क्रमों में परीक्षाऐ उत्तीर्ण की हो व उत्तीर्ण कर रोजगार अथवा नौकरी प्राप्त की हो। तो क्या हम उन्हें अशिक्षित मान लेंगे जिन्होंने इस क्षेत्र में प्रयत्न तो किए लेकिन अनुत्तीर्ण रहे। शिक्षा राष्ट्रीय विकास के साथ-साथ न्यायसंगत समाज को प्रगतिशीलता प्रदान करने की एक मूलभूत आवश्यकता है। शिक्षा मानव समाज को संपूर्णता प्रदान करती है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक सर्वभौमिक पहुंच प्रदान करना, वैश्विक मंच पर सामाजिक, वैज्ञानिक उन्नति, राष्ट्रीय एकीकरण और संस्कृति संरक्षण के संदर्भ में भारत की सतत् प्रगति और आर्थिक विकास की कुंजी है । सर्वभौमिक उच्चतर स्तरीय शिक्षा वह उचित माध्यम है जिससे देश की समृद्ध प्रतिभा और संसाधनों का सर्वोत्तम विकास और संवर्धन व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व की भलाई के लिए किया जा सकता है।[1]

शिक्षा प्राप्त कर अपने आचरण अथवा व्यवहार से मनुष्य यह प्रमाणित करता है कि वह इस धरती पर अन्य जीवों से पृथक व तुलनात्मक अधिक बुद्धिमान है । शिक्षा मनुष्य के बौद्धिक विकास के साथ-साथ उसे जीवन में आने वाली समस्याओं का सहजता व विनम्रता से सामना एवं समाधान करने में सक्षम बनाती है । जे. कृष्णमूर्ति अपनी पुस्तक ''शिक्षा क्या है'' में बेहतरीन तरीके से लिखते हैं की सम्यक शिक्षा वही है जो विद्यार्थी को इस जीवन का सामना

करने में मदद करें । ताकि वह जीवन को समझ सके। उससे हार न मान ले। उसके बोझ में दब न जाए। जैसा कि हममें से अधिकांश लोगों के साथ होता है।[2]

रोजगार अथवा नौकरी पाना, जीवन, समाज एवं राष्ट्र की समस्याओं को समझना, उनका सामना कर समाधान करना मात्र ही शिक्षा नहीं है बल्कि शिक्षा इस धरती पर जीवन यापन अथवा विचरण कर रहे अन्य जीवों से मनुष्य को पृथक प्रमाणित कर उसके मूल्यों का विकास करती है। शिक्षा इस समाज में रह रहे इंसानों को इंसानियत सिखाती है। जब शिक्षा का संबंध इंसानियत से जुड़ जाता है तो ऐसी स्थिति में यह अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि शिक्षा कैसे प्रदान की जा रही है, उसका माध्यम क्या है, कौन सी परिस्थितियों में प्रदान की जा रही है, उसमें किन-किन क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया है ? इन सब के साथ-साथ यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है कि उस राष्ट्र की शिक्षा नीति क्या है ? वह उस राष्ट्र अथवा समाज के लिए कितनी उपयोगी है एवं उसका उस समाज पर क्या प्रभाव आ रहा है।

1 जुलाई 2020 को घोषित ''नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020'' 29 जुलाई 2020 को लागू की गई। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 से पूर्व भारत में नवीन शिक्षा नीति 1986 प्रचलन में थी। जिसमें सन् 1992 में संशोधन किया गया था । नवीन शिक्षा नीति 1986 से पूर्व भारत में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 प्रचलन में थी।

भारत में प्राचीन समय से ही शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षा नीति चली आ रही है तो यहां इसकी भी महत्वता बढ़ जाती है की हमें नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का अध्ययन करने से पूर्व प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में भी जान लेना चाहिए।

डॉ. जयशंकर मिश्र ने अपनी पुस्तक ''प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास'' में प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का विस्तार से उल्लेख किया है।[3] डॉ. जयशंकर के अनुसार शिक्षा का आरंभ उपनयन संस्कार से होता था। जिसमें आचार्य ब्रह्मचारी को नए जीवन में दीक्षित करता था । इसके बाद वह अपना घर त्याग कर गुरु के सानिध्य में जाता था तथा वहीं रहकर विभिन्न विषयों की शिक्षा ग्रहण करता था। वैदिक युग में आचार्य का स्थान आदरपूर्ण, गरिमामय एवं प्रतिष्ठित होता था। आचार्य अपने शिष्य को आचार एवं चरित्र की शिक्षा देते थे। उस समय गुरुओं की उपाध्याय, प्रवक्ता, अध्यापक एवं क्षोत्रीय जैसी श्रेणियां हुआ करती थी । डॉ. जयशंकर यह भी लिखते हैं कि उस समय के आचार्य वेदों एवं शास्त्रों के ज्ञाता होते थे व वाक्चातुर्य, भाषण-पटुता, तार्किकता एवं रोचक कथाओं में दक्ष और ग्रंथों का अर्थ करने में वे आशु पंडित और वक्ता होते थे।

इसके पश्चात हमारी शिक्षा व्यवस्था एवं नीतियों में समय-समय पर परिवर्तन अथवा संशोधन होते रहे हैं।

86 वें संशोधन (2002) द्वारा संविधान के अनुच्छेद - 21 के तुरंत बाद खंड - 21 (क) को जोड़कर शिक्षा को मौलिक अधिकार घोषित कर दिया गया । राज्य 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी किशोर-किशोरियों को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार निः शुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा।[4]

आजादी के बाद राधाकृष्णन आयोग (1948-49), माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियार आयोग) 1953, विश्वविद्यालय आयोग (1953), कोठारी शिक्षा आयोग (1964), राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) एवं नवीन शिक्षा नीति (1986) आदि के द्वारा भारतीय शिक्षा व्यवस्था को समय - समय पर सही दिशा देने की गंभीर कोशिशें की गई।[5]

सन् 1952-53 में ''मुदालियर कमीशन'' ने 8+3+3 शिक्षा प्रणाली प्रस्तावित की। 8 वर्ष की प्राथमिक, 3 वर्ष की हाईस्कूल एवं 3 वर्ष की स्नातक व्यवस्था को प्रस्तावित किया। माध्यमिक शिक्षा को समाप्त करने पर बल दिया। सन् 1960 में योजना आयोग ने 12 वर्ष की विद्यालय शिक्षा तथा 3 वर्ष की स्नातक शिक्षा पर बल दिया। 1961 में कुलपतियों के अधिवेशन में भी तथ्य दोहराया गया। सन् 1962 में केंद्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद ने इसी संकल्प को दोहराया एवं ''कोठारी कमीशन'' ने भी यही सिफारिश की और अंत में सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत् संपूर्ण देश में 10+2+3 शिक्षा व्यवस्था लागू कर दी गई।[6]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 एवं नवीन शिक्षा नीति 1986 के पश्चात भारत में नई शिक्षा नीति 2020 को 1 जुलाई 2020 को घोषित एवं 29 जुलाई 2020 को लागू किया गया।

योजना का नाम	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (New Education Policy 2020)
राज्य / केन्द्र	केन्द्रीय योजना
कब लागु की गई	29 जुलाई 2020
उद्देश्य	शिक्षा के स्तर में सुधार
लाभार्थी	सभी छात्र–छात्राऐं
अधिकारिक वेबसाईट	education.gov.in

मानव संसाधन मंत्रालय के अंतर्गत शिक्षा नीति को चलाया जाता था लेकिन नई शिक्षा नीति 2020 लागू होने के बाद इस मंत्रालय का नाम बदलकर ''शिक्षा मंत्रालय'' कर दिया गया । यह नीति उच्च शिक्षा को अपनी भाषा में पढ़ने की स्वतंत्रता देने के साथ ही बच्चों को कला और खेल–कूद के क्षेत्र में बढ़ावा देती है। नीति के अंतर्गत सरकार के द्वारा कई महत्वपूर्ण लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं । जिसमें वर्ष 2030 तक सकल नामांकन अनुपात (Gross Eurolment ratio - GER) को 100 प्रतिशत तक लाना शामिल है। शिक्षा के क्षेत्र में केंद्र व राज्य सरकार की मदद से जीडीपी का 6 प्रतिशत हिस्सा व्यय करने का लक्ष्य भी निर्धारित किया गया है। नई शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत शैक्षणिक संरचना को 5+3+3+4 में डिजाइन किया गया है।[8]

पुरानी शिक्षा नीति का पाठ्यक्रम 10+2 पर आधारित था लेकिन नई शिक्षा नीति 2020 की शैक्षणिक संरचना 5+3+3+4 के हिसाब से की गई है। इस नीति को बच्चों की 3–8, 8–11, 11–14 और 14–18 उम्र के अनुसार चार अलग–अलग हिस्सों में विभाजित किया गया है। पहले हिस्से में प्राइमरी से दूसरी कक्षा, दूसरे हिस्से में तीसरी से पांचवीं कक्षा, तीसरे हिस्से में छठी से आठवीं कक्षा और चौथे हिस्से में नौवीं से बारहवीं कक्षा को शामिल किया गया है।[9]

5 + 3 + 3 + 4 system stage

फाउंडेशन स्टेज (5 Years)

फाउंडेशन स्टेज के अंतर्गत पहले 3 वर्ष बच्चों को आंगनवाड़ी से प्री–स्कूलिंग शिक्षा लेनी होगी । इसके बाद बच्चे अगले 2 वर्ष कक्षा एक एवं दो स्कूल पड़ेंगे । इसमें 3 से 8 वर्ष की आयु के बच्चों को कवर किया जाएगा। उनके लिए नया पाठ्यक्रम तैयार किया जाएगा और 5 वर्ष में उनका पहला चरण समाप्त हो जाएगा।

प्रीप्रेटरी स्टेज (3 Years)

प्रीप्रेटरी स्टेज में कक्षा 3 से 5 तक की पढ़ाई होगी। इसमें 8 से 11 वर्ष तक की उम्र के बच्चों को कवर किया जाएगा । यह चरण 3 वर्ष में पूर्ण हो जाएगा। इस स्टेज के बच्चों को विज्ञान, गणित, कला आदि की पढ़ाई पर जोर दिया जाएगा ।

मिडिल स्टेज (3 Years)

मिडिल स्टेज में कक्षा 6 से 8 तक की पढ़ाई होगी। इसमें 11 से 14 वर्ष तक की उम्र के बच्चों को कवर किया जाएगा। यह चरण 3 वर्ष में पूरा हो जाएगा। इस स्टेज में बच्चों के लिए खास कौशल विकास कोर्स भी शुरू किए जाएंगे।

सेकेंडरी स्टेज (4 Years)

सेकेंडरी स्टेज में कक्षा 9 से 12 तक की पढ़ाई होगी। इसमें 14 से 18 वर्ष तक की उम्र के बच्चों को कवर किया जाएगा। यह चरण 4 वर्ष में पूरा होगा। इस स्टेज में बच्चों को अपने विषय का चयन करने की आजादी होगी।

नई शिक्षा नीति 2020 के प्रमुख बिंदु/ विशेषताएं

- NEP 2020 के अंतर्गत पांचवीं कक्षा तक के छात्रों को मातृभाषा, स्थानीय भाषा और राष्ट्रभाषा में ही अध्ययन करवाया जाएगा।
- भाषा के चुनाव के लिए छात्रों पर कोई बाध्यता नहीं होगी। उनके लिए संस्कृत और अन्य प्राचीन भारतीय भाषाओं को पढ़ने के विकल्प भी मौजूद रहेंगे।
- कक्षा 10 बोर्ड की अनिवार्यता को खत्म

कर दिया गया है। अब छात्र को सिर्फ 12वीं परीक्षा देनी होगी।

- ग्रेजुएशन की डिग्री 3 और 4 वर्ष की होगी ।
- एक वर्ष पढ़ाई करने के बाद यदि छात्र पढ़ाई छोड़ता है और फिर दोबारा अपनी पढ़ाई जारी रखने का मन बनाता है तो वह अपनी पढ़ाई वहीं से प्रारंभ कर सकता है, जहां से उसने अपने पढ़ाई को छोड़ा था।
- छात्र को कॉलेज के पहले वर्ष की पढ़ाई पूरी होने पर सर्टिफिकेट, दूसरे वर्ष पर डिप्लोमा व तीसरे और चौथे वर्ष में डिग्री दी जाएगी।
- 3 वर्ष की डिग्री उन छात्रों के लिए होगी जिन्हें हायर एजुकेशन नहीं लेना है। जबकि हायर एजुकेशन करने वाले छात्रों को 4 वर्ष की डिग्री लेनी होगी।
- 4 वर्ष की डिग्री लेने वाले स्टूडेंट 1 वर्ष में स्नातकोत्तर कर पाएंगे ।
- MPhil की अनिवार्यता को खत्म कर दिया गया है। स्नातकोत्तर के छात्र सीधे पीएचडी कर पाएंगे।
- यदि कोई छात्र अपने कोर्स के बीच में से किसी दूसरे कोर्स में शामिल होना चाहता है, तो वह सीमित समय के लिए ब्रेक लेकर अपना कोर्स बदल सकता है।
- स्कूली बच्चों को खेल-कूद, योग, नृत्य, मार्शल-आर्ट, बागवानी समेत अन्य शारीरिक गतिविधियों से जुड़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।[11]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 कई मायनों में एक ऐतिहासिक कदम है। हम कह सकते हैं कि यह 21वीं सदी की आवश्यकताओं और भारतीयता का सुंदर संगम है। लेकिन नीति को लागू करने में कई बाधाएं भी है जैसे शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है, अर्थात संसद और राज्य विधानमंडल दोनों इस पर विधि बना सकते हैं। कुछ राज्यों ने शिक्षा नीति को लागू करने में अनिच्छा का प्रदर्शन किया है, तो पश्चिम बंगाल जैसे राज्य ने इसका विरोध भी किया है। हालांकि यह राजनीतिक मुद्दा है दूसरा, स्थानीय भाषा में शिक्षा उपलब्ध करवाने में कई कठिनाइयां हैं। महानगरों में कई भाषाओं को बोलने वाले लोग एक साथ रहते हैं । ऐसे में किस भाषा में प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराई जाएगी ?[12]

नई शिक्षा नीति 2020 को केंद्र सरकार ने प्रारंभ कर दिया है। अब प्रत्येक राज्य में वहां की राज्य सरकारों की सहमति से इसे लागू किया जा रहा है। नई शिक्षा नीति को संपूर्ण रूप से सर्वप्रथम लागू करने वाला कर्नाटक देश का पहला राज्य है। नई शिक्षा नीति को कर्नाटक व मध्य प्रदेश के साथ-साथ देश के लगभग 18 से 19 राज्य लागू कर चुके हैं।

सामाजिक दृष्टिकोण

एक संपूर्ण राष्ट्रीय अथवा सामाजिक विकास इस तथ्य पर अत्यधिक निर्भर करता है कि वहां की जनता शिक्षित है अथवा नहीं । इसलिए किसी भी समाज की उन्नति के लिए उस समाज के नागरिकों का शिक्षित होना मुख्य महत्व रखता है। दूसरी ओर यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि उस समाज में प्रचलित शिक्षा नीति कैसी है ? यदि शिक्षा नीति सरल एवं प्रभावी है तो व्यक्ति शिक्षा की ओर आकर्षित होगा व उसे ग्रहण करने का सहज प्रयत्न करेगा। यदि इसके विपरीत यह नीति अधिक जटिल व दीर्घ समयावधि की है तो विकासशील समाज का व्यक्ति हमेशा इससे परहेज कर दूर भागने का प्रयत्न करेगा। वह इसमें अपने समय की बर्बादी मानते हुए अपने रोजगार एवं जीवन यापन के साधनों को जुटाने में अपना समय देगा।

सामाजिक तौर पर जहां राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 कई मायनों में एक ऐतिहासिक व सुखद पहल है । वहीं इसके कई दुष्परिणाम आने की संभावना को भी नकारा नहीं जा सकता।

दुनिया भर में बढ़ते अपराध (आतंकवाद, यौन-हिंसा, बलात्कार, रंगभेद, नस्लभेद, साइबर क्राइम) तथा अन्य समस्याओं (हत्यार की होड़, षड्यंत्र) इस बात का प्रमाण है कि कोई भी शिक्षा पद्धति पूर्ण अथवा आदर्श नहीं है। जे. कृष्णमूर्ति अपनी पुस्तक ''शिक्षा क्या है'' में लिखते हैं कि जब आप दुनिया में चारों तरफ नजर डालते हैं तो देखते हैं कि शिक्षा असफल रही है क्योंकि इसने युद्धों को रोकने में मदद नहीं की है । न तो इसने संसार में शांति लाने में सहायता की है और ना ही इसने मनुष्य को किसी प्रकार की समझ प्रदान की

है । इसके विपरीत हमारी समस्याओं में और अधिक वृद्धि की है और अधिक विध्वंसकारी युद्ध हो रहे हैं तथा पहले से बड़े क्लेश पैदा हो रहे हैं।[13]

वर्तमान समय में तालिबान का अफगानिस्तान पर कब्जा इसका जीता जागता प्रमाण हैं।

कोई भी नीति अपने आप में संपूर्णता लिए नहीं होती। न ही उसे सर्वोत्तम कहा जा सकता है। समय के साथ व सामाजिक परिस्थितियों अनुसार सभी में बदलाव अपेक्षित रहता है। नई शिक्षा नीति 2020 को सामाजिक परिस्थितियों अनुसार समय की मांग कहा जा सकता है। इसके अधिकतर प्रावधानों को सामाजिक तौर पर अनुकूल माना जा सकता है। जो व्यक्ति को शिक्षित करने के साथ-साथ सामाजिक समर्पणता पर भी बल देती है ।

नई शिक्षा नीति 2020 के प्रावधानों में से एक स्थानीय भाषा का विकल्प सुखद अनुभव है व्यक्ति जिस समाज से संबंधित है वह हमेशा ही उससे भावनात्मक तौर पर भी जुड़ा होता है। ऐसे में यह निर्णय व्यक्ति में समाज के प्रति समर्पण एवं एकता को बढ़ावा देगा। जिससे समाज की प्रगति की गति तीव्र हो सकती है।

नई शिक्षा नीति 2020 भौतिकवाद के इस युग में हमें आध्यात्मिक और सामाजिक सांस्कृतिक राह पर अग्रसर करेगी। कई परंपरागत लोक क्षेत्रों में निजी निवेश बढ़ने एवं विनिवेशीकरण की प्रक्रिया तीव्र होने की संभावनाएं हैं। सूचना एवं प्रौद्योगिकी तथा कंप्यूटर शिक्षा की क्रांति से कार्यों में शीघ्रता, पारदर्शिता, संवेदनशीलता और जवाबदेही विकसित एवं सुदृढ़ होने की पूर्ण संभावना है।

नीति में लचीलेपन से छात्र-छात्राओं में शिक्षा के प्रति रुझान बढ़ेगा जिससे समाज में अधिक संख्या में लोग शिक्षित होंगे। जिससे समाज के प्रति उसका सकारात्मक आचरण बढ़ेगा व समाज व्यवस्थित रुप से प्रगति करेगा ।

नई शिक्षा नीति 2020 एक सुखद एवं ऐतिहासिक पहल है। जिसके सामाजिक तौर पर सकारात्मक परिणाम आने की पूर्ण संभावना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, https://www-education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0-pdf पृष्ठ संख्या 3*
2. *जे. कृष्णमूर्ति ''शिक्षा क्या है'' (विनय कुमार वैद्य द्वारा अनुवादित) राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण – 2020, पृष्ठ संख्या 9*
3. *डॉ जयशंकर मिश्र ''प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास'' बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2006 दशम संस्करण, पृष्ठ संख्या 497 से 500.*
4. *डॉ. अग्रवाल प्रमोद कुमार ''भारत का संविधान'' प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021 पृष्ठ संख्या 112-13*
5. *डॉ सिंह अविनाश कुमार नए भारत की नीवः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2021 पृष्ठ संख्या 13*
6. *वही, पृष्ठ संख्या 21*
7. *https://kisansuchna.com*
8. *वही*
9. *वही*
10. *वही*
11. *वही*
12. *गहलोत दिनेश कुमार राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : ''चुनौतियां एवं सुझाव'', ज्ञान गरिमा सिन्धु, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय, नई दिल्ली।*
13. *जे. कृष्णमूर्ति ''शिक्षा क्या है'' (विनय कुमार वैद्य द्वारा अनुवादित) राजपाल एंड संस, दिल्ली, संस्करण 2020, पृष्ठ संख्या 186।*

शेखावाटी की लोक गाथाए

डॉ. रोहिताश कुमावत
सहायक आचार्य, राजकीय महाविद्यालय, मसूदा (अजमेर)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

लोक गाथाओं मे शेखावाटी प्रदेश के फवाड़े प्रसिद्ध है। तेजाजी, डुंगर–जवारजी, पाबूजी आदि वीर नायकों की पराक्रम गाथाओं का यहाँ के चारण भोपे, भाट आदि को रावण हत्थे पर गाते हुए देख सकते है। ये युग पुरूष है। इनकी मनौती मनाई जाती है। ओर स्थान पर इनके देवरे बने हुए है। लोक गाथाओं मे यहा काव्य की सी आनन्दोपलब्धी होती है। शेखावाटी में तीन प्रकार के फवाड़े उपलब्ध हैं। वीर गाथा परक, प्रमेकथात्मक, और अद्‌भुत साहस द्‌योतक्‌। वीर गाथात्मक पवाड़ों में वीर रस सम्यक, पुट प्राप्त हुआ। पाबूजी का अद्‌म्य साहस, दुर्धर्श पराक्रम, शौर्य सम्पन्न रणकुशलता, वचन निर्वहरण आदि गुणो के फलस्वरूप इन पवाड़ों मे उनका यश बखान हुआ है। इसके साथ ही इनमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, तथा सांस्कृतिक जीवन के पक्षों का भी प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है। प्रेमकथा परक पवाड़ों में यहाँ ढ़ोला मारू ओर निहालदे सुल्तान के पवाड़े प्रख्यात है जिनमें प्रेमिका की उपलब्धि के लिए सच्चा वीर अनेक अवरोधक कठिनाठ्यों को साहस प्रदर्शन से पराभूत करता हुआ अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता है। इनमें प्रेम तत्व तथा वीरत्व परस्पर मिले जुले है। रोमांचक पवाड़ों में डूंगजी, जवारजी का पवाड़ा यहाँ लोक प्रचलित है। जिसमें अलौकिक दृश्य देख कर, व सुनकर सहसा रोमांच हो जाता है। ऐसे पवाड़ों मे मानवेत्तर तत्व रहस्यात्मक रूप में होते है।

संकेताक्षर : *शेखावटी, लोक कथाएं, पाबूजी, गोगाजी, ढोला मारू, डूंगजी जुवारजी।*

लोक गाथाओं मे शेखावाटी प्रदेश के फवाड़े प्रसिद्ध है। तेजाजी, डुंगर–जवारजी, पाबूजी आदि वीर नायकों की पराक्रम गाथाओं का यहाँ के चारण भोपे, भाट आदि को रावण हत्थे पर गाते हुए देख सकते है। ये युग पुरूष है। इनकी मनौती मनाई जाती है। ओर अनेक स्थान पर इनके देवरे बने हुए है। लोक गाथाओं मे यहा काव्य की सी आनन्दोपलब्धी होती है। शेखावाटी में तीन प्रकार के फवाड़े उपलब्ध हैं।[1] वीर गाथा परक, प्रमेकथात्मक, और अद्‌भुत साहस द्‌योतक्‌। वीर गाथात्मक पवाड़ों में वीर रस सम्यक, पुट प्राप्त हुआ। पाबूजी का अद्‌म्य साहस, दुर्धर्श पराक्रम, शौर्य सम्पन्न रणकुशलता, वचन निर्वहरण आदि गुणो के फलस्वरूप इन पवाड़ों मे उनका यश बखान हुआ है। इसके साथ ही इनमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, तथा सांस्कृतिक जीवन के पक्षों का भी प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है।[2] प्रेमकथा परक पवाड़ों में यहाँ ढ़ोला मारू ओर निहालदे सुल्तान के पवाड़े प्रख्यात है जिनमें प्रेमिका की उपलब्धि के लिए सच्चा वीर अनेक अवरोधक कठिनाठ्यों को साहस प्रदर्शन से पराभूत करता हुआ अपने लक्ष्य की प्राप्ति करता है। इनमें प्रेम तत्व तथा वीरत्व परस्पर मिले जुले है।[3]

रोमांचक पवाड़ों में डूंगजी, जवारजी का पवाड़ा यहाँ लोक प्रचलित है। जिसमें अलौकिक दृश्य देख कर, व सुनकर सहसा रोमांच हो जाता है। ऐसे पवाड़ों मे मानवेत्तर तत्व रहस्यात्मक रूप में होते है।[4] शेखावाटी की लोक गाथाए सुनाने का भार भी परिवार के वृद्‌ध सदस्यों पर होता था। ये लोक कथाए फंतासी ओर सहज विश्वास के कारण ग्रामीण लोगों की प्रकृति में मनुष्य के अबूझ अस्तित्व से संबंधित जिज्ञासा को तुष्ट करती है। इन लोक गाथाओं, एतिहासिक पात्रों ने जहाँ लोक नाट्य कला के विकास को चार चाँद लगाया वहीं नृत्य कला, संगीत कला, हास्य

कला, अभिनय कला के विकास को गति दी। साथ ही आमजन मानस के मनोरंजन, सौहार्द, सहिष्णुता, आपसी प्रेम, मेल–झोल आदि नैतिक मूल्यों का विकास किया। शेखावाटी क्षेत्र के समाज की स्थानीय विशेषताएं तथा सांस्कृतिक ताना बाना विद्यमान है, इनमें लोगों के धार्मिक रस्मों रिवाज, विश्वास, खान पान की आदतें, पहनावा, अंधविश्वास, स्वप्न ओर कल्पनाओं का चित्रण देखा जा सकता है।

लोक कथाए

(अ) वीर कथात्मक पवाड़े/लोक गाथा

(ब) प्रेम कथात्मक पवाड़े/लोक गाथा

(स) रोमांच कथात्मक पवाड़े/लोक गाथा

वीर कथात्मक लोक गाथाए

लोक गाथा लोक मानस की भावनाओ की सहज अभिव्यक्ति होती है। राजस्थान का जनजीवन प्राचीन काल से शौर्य की घटनाओं से परिपूर्ण रहा है। अतः इस संस्कृति मे जिन गाथाओं का जन्म हुआ उनमें शौर्य, पराक्रम, औझ आदि के स्वर स्वतः ही प्रधान रूप से मुखरित होते है। इन लोक गाथाओं मे नायक की अलौकिक वीरता का वर्णन भी मिलता है। राजस्थान ओर विशेषतः शेखावाटी में पाबूजी, गोगाजी, डुंगरजी–जुवार जी, तेजाजी की कथाए प्रचलित है। जिनमें वीरता का स्वर ही प्रधान है। इन लोक गाथाओं मे शौर्य का प्रदर्शन कभी शरणागत की रक्षा के लिए हुआ तो कभी व्यवस्था के अत्याचारो का विरोध करने के लिए तो कभी वचन निर्वाह के लिए।[5]

लोक नायक एक संक्षिप्त परिचय

पाबूजी

पाबूजी कोलूगढ़ के राजा धांधल के दो पुत्रों में से एक थे। बड़ा बूड़ोजी एवं छोटा पाबूजी, धांधल के एक पौत्री भी थी। जिसका नाम केमलदे था। उसका विवाह ददरेवा के राजकुमार गोगाजी चौहान से किया जाता है। पाबूजी को अपनी भतीजी से असीम स्नेह था, अतः उन्होंने दहेज मे ऊँट देने का वचन दे दिया । इस वचन की पालानार्थ ऊँट की खोज मे पाबू जी के विश्वसनीय साथी हरिसिंह को भेजा गया। वह समुद्र पार लंका मे ऊँटों का पता लगा लेता है। पाबूजी दल बल के साथ युद्ध से ऊँट प्राप्त करते और भतीजी को देते है, और वचन की पालना करते है। राजकुमारी सोढ़ा से पाबूजी का विवाह तय होता है। इसी बीच देवल चारणी से केसर कालमी घोड़ी पाबूजी के लिए इस शर्त पर मांगी जाती कि वो हर स्थिति मे देवल चारणी की गायों की रक्षा करेंगे।[6]

केसर कालमी घोड़ी पर बैठ पाबूजी तोरण मार लेते है, ओर विवाह आगे बढ़ता है, ज्यौ ही दो फेरे/भवर सम्पन्न होते है, घोड़ी हिन हिनाने लगती जो इस बात की प्रतीक होती हैं कि देवल चारणी की गायें असुरक्षित है। देवल चारणी की गायों को सुरक्षित पुनः देवल चारणी के पास पहुँचाने के प्रयास मे सफल होने के नजदीक थे, पर अंततः पाबूजी, बूड़ोजी, वीरवर डामाजी ओर चांदाजी खेत रह जाते है। सोढ़ा राजकुमारी पाबूजी के साथ सती व्रत धारण करती है। बाद मे बूड़ोजी का लड़का नानड़िया अपने पिता व चाचा के हत्यारे को मौत के घाट उतारता है और बदला लेता है।

गोगाजी

ददरेवा जो वर्तमान में चुरू व पूर्व मे बीकानेर का अंग था। जहाँ चौहान राजपूत शासन करते थे। इसी वंश के प्रसिद्ध राजा उमर चौहान के पुत्र झँवर व उनकी पत्नि बाछल की कोख से गोगाजी जन्मे विवाह के प्रारम्भिक वर्षो मे दम्पत्ति के कोई संतान नही हो रही थी। फिर सिद्ध संत गोरख नाथ जी के आशिर्वाद से गोगाजी का जन्म होता है। अनुश्रुति के अनुसार सांपो का राजा वासुकि, चौहान वंश से शत्रुता रखता था एवं उसे समूल नष्ट करना चहाता था, पर जब सांपो के रक्षक गोगा जी से साक्षात होता है, तब वासुकि उन्ही की शरण मे चला जाता है। युवावस्था में गोगाजी का विवाह पाबूजी की भतीजी केमलदे के साथ होता है। उनके बड़े भाई अरजन–सरजन सदैव गोगाजी से ईर्ष्या करते, ओर एक दिन वाटिका मे अपने छोटे भाई की पत्नि केमलदे को छेड़ लेते है। इस पर गोगाजी उन्हे मुण्ड विहीन कर देते है। घर लौटने पर गोगा की इस हरकत से माँ बाछल भी नाराज होती, ओर प्रायश्चित के लिए 12 वर्ष का देश निकाला दे देती है। गोगा को बात नागवार गुजरती वो पांच पीरो को बुलाते इस्लाम की दीक्षा ली पर उन्हे अंततः परिवर्तन स्वीकार न था। उनकी भयंकर गर्जन से धरती फटी ओर वो उसमे समा गये।[7]

डूंगजी जुवारजी

डूंगजी और जुवारजी दोनो चाचा भतीजा थे। शेखावाटी के अन्तर्गत बठोठ नामक गाँव के डूंगजी जागीरदार थे। वो प्रजा के दुख दर्द समझते थे, अन्याय अत्याचार आदि अमानवीय कृत्य करने वाले डूंगजी के भय से त्रस्त रहते थे।

अंग्रेजी शासन की चक्की में छोटे बड़े सभी जमीदार

समान रूप से पिस रहे थे। गाँवों की सम्पन्नता नष्ट प्राय थी। अंग्रेजी राज्य का आतंक सर्वसाधारण के लिए अत्यंत कष्टप्रद था। डूंगजी ने अपने सरदारों से अकाल ओर अभाव की पूर्ति हेतू वार्ता की। चूंकि लोगो की दुर्दशा कष्टदायक थी।[8]

अपने भतीजे जुवारजी एवं दो विश्वसनिय मित्र लोटिया जाट एवं करणिया मीणा से परामर्श कर निश्चय किया, कि लोगो के कष्टों की निवारणार्थ लूटना ओर डाका डालना चाहिये, इसके लिए अजमेर मेरवाड़ा मे अंग्रेजों की छावनी नसीराबाद के सेठो को लूट कर धन लाने की योजना बनाई।

लोटिया ओर घीसा लाल की अनंत धन संपदा जो सौ ऊँटो पर लदी थी, डूंगजी जुवारजी के नेतृत्व मे लड़ाई लड़ अपने अधिकार मे की।[9]

डूंगजी अपने ससुराल झड़वासा आये वहाँ उनका सत्कार किया गया। शेखावाटी में यह बात आग की तरह फैल गई कि डूंगजी ने छावनी लूटली। सेठ वहाँ भी डरने लगे कि उनकी भी बारी आ सकती है। अंग्रेजो ने सीकर के ठाकुर प्रताप सिंह की मदद से झड़वासा में ही उनके साले भँवर सिंह की मुखबीरी से डूंगजी को गिरफ्तार किया, ओर जेल मे डाल दिया। पर कुछ दिनों बाद लोटिया जाट, करणिया मीणा ओर जुवार जी के अथक प्रयासो से डुंगजी को जेल से छुड़ाया गया। दोनो काका भतीजा सेठों को लूटते रहे, ओर धन सम्पदा गरीबो मे बांटते रहे। आज भी डूंगजी, जुवारजी का नाम उनकी दानवीरता, शौर्य, निर्भिकता एवं मानवीय गुणों के कारण जनजीवन का कंठहार बना हुआ है।[10]

यह भी वृतांत प्राप्त होता है कि 28 मई 1857 ई. को नसीराबाद मे हुए विद्रोह के दस वर्ष पूर्व 18 जून 1847 को शेखावाटी के बढोठ जागीर के डूंगजी ओर जुवार सिंह दो ठाकुरो ने अंग्रेजो के विरूद्ध रोष प्रकट करने के लिए पांच सौ लोगो के साथ नसीराबाद छावनी पर आक्रमण किया जिसमे छः सिपाही मारे गये थे। इस प्रकार ये एतिहासिक लोक कथानक शेखावाटी की ख्याल कला, नृत्य कला, संगीत कला, अभिनय रंगमंचीय के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे है।

प्रेम कथात्मक पवाड़े/लोक गाथाए

प्रेम मानव जीवन की सहजात वृति है। इसका प्रसार मानव जीवन ही नहीं पशु पक्षी एवं वनस्पति जगत मे भी मिलता है। हमारे देश की सांस्कृतिक परम्पराए कुछ ऐसी रही, कि प्रेम मार्ग मे मर मिटने की भावना को प्रधान्यता मिली। किन्तु खुले रूप मे प्रेम करने की स्वच्छंदता सामाजिक अनुशासन ने नहीं दी। फिर भी प्रेम व्यापार प्रवाहमान रहा है।[11]

इन प्रेम गाथाओं मे नायक नायिका के बीच सहज सात्विक प्रेम होता है, तथा इस प्रेम की परीक्षा के लिए अनेक अलौकिक बाधाएँ नायक नायिका को पार करनी पड़ती है। 'ढ़ोला मारू' लोक गाथा में इस प्रकार की बाधाएँ पर्याप्त संख्या में वर्णित है। कभी–कभी प्रेम के लिए जीवन का उत्सर्ग भी देना पड़ता, जो 'जलाल बूबना' गाथा में हुआ।

सभी प्रेम कथाओ यथा ढ़ोला मारू, जलाल बूबना, नागजी नागवंती मे शिव पार्वती प्रसंग लगभग समान रूप से ही देखा जा सकता है। प्रेम गाथाओं में प्रेम के दोनो पक्षों संयोग एवं वियोग का विस्तृत वर्णन मिलता है। लोक गाथाओं के विरह वर्णन मे लोक जीवन मे प्रचलित उपमानो का ही प्रयोग हुआ है। जो लोक गाथाओं को जन जीवन के ओर निकट लाता है।

ढ़ोला मारू

पूंगल के राजा पिंगल और उनकी रानी जालौर के राजा सांवतसी देवड़ा की पुत्री ऊमादे के विवाह की कथा भी रोचक है। पिंगल ऊमादे के सौन्दर्य पर मोहित हो अपने विवाह की इच्छा को सेवक जैसल के माध्यम से जालौर भेजता है। पर इस समय तक ऊमादे की सगाई गुजरात के राजकुमार रण धवल के साथ हो जाती है। किन्तु दूरी के कारण रानी को यह रिश्ता कम पसंद था। वो भी अपनी पुत्री का विवाह पिंगल से चाहती थी। जब पूंगल से आमंत्रण आता, तब राजा ओर रानी एक योजना स्वरूप गुजरात भी सूचना भेज देते, जिसमें देरी की जाती, ओर पिंगल से पुत्री का विवाह सम्पन्न करा देते है। गुजरात राजकुमार जब जालौर पहुँचता तब तक विवाह हो चूका होता है। गुजरात शासक दल–बल के साथ आता पर ऊमादे पूंगल पहुँच चूकी होती है।[12] फिर विवश हो गुजरात शासक पुनः चला जाता है।

कुछ समयोपरान्त ऊमादे के एक कन्या का जन्म होता है। कन्या का नाम मारवणी रखा जाता। पूंगल में एक बार अकाल पड़ता, तब राजा सपरिवार पुष्कर की ओर प्रयाण करता है। उस समय नरवलगढ़ में राजा नल राज्य करता था। उसके भी एक पुत्र साल्हकुँवर होता है। राजा नल भी पुष्कर की यात्रा के लिए आता । दोनो शासक मिलते ओर अपने पुत्र ओर पुत्री का विवाह वहीं सम्पन्न करा देते है। कुछ समय बाद पुंगल नरेश पुनः अपने राज्य चला जाता। समय बीतता जाता, इसी बीच राजा नल ढ़ोला का विवाह मालवा की कन्या मालवणी

से कर देता है। मालवणी सुन्दर ओर चतुर होती, वह अपने सौन्दर्य के पाश में ढ़ोला को कैद कर लेती है। बचपन के विवाह की बात ओर पुंगलगढ़ के संदेश को ढ़ोला तक नहीं पहुँचने देती। ढ़ोला को भी बचपन के विवाह की याद नहीं रहती।

पुंगल नरेश काफी प्रयास करता पर मालवणी के समक्ष उनकी एक न चलती, अंततः पुंगल के पुरोहित द्वारा ढ़ोला को अपने रिश्ते की बात का पता चलता है। ढ़ोला पुंगल मारवणी को लेने पहुँचता, ओर उसे लेकर आता, बीच रास्ते में सर्प डंस से मारवणी मृत्यु को प्राप्त हो जाती, पर शिव एवं पार्वती के आर्शीवाद से पुनः जीवित हो जाती, ओर बाद में दोनो रानियाँ ओर ढ़ोला सुख पूर्वक जीवन बिताते है। शेखावाटी के लोक साहित्य, भित्ती चित्रों, ख्यालों के सृजन मे इस गाथा का योगदान आज भी देखा जा सकता है।[13]

जलाल–बूबना

यद्यपि यह कथा भारतीय दृष्टिकोण से दूर प्रकीया प्रेम पर आधारित है फिर भी प्रेम के निर्मल स्वरूप प्रेमी–प्रमिका के अथक साहस तथा मिलन की सूझबूझ के कारण जलाल बूबना की गाथा राजस्थान विशेषकर शेखावाटी के ख्यालों के सृजन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है, इसने आज भी शेखावाटी के लोक गीतों को अमर बना दिया है।

''म्है तो थारा डेरा निरखण आई,
म्हारी जोड़ी रा जलाल''

बलख के बादशाह कुलनहसीब की जब मृत्यु हुई तो उसके दो पुत्रों को लेकर उसकी पत्नि अपने भाई मृगतमायची के यहाँ चली जाती। मामा ने अपने भांजो का अच्छा पालन पोषण किया। मृगतमायची भी थटाभखर का बादशाह था, बलख में बादशाह के मरने के बाद उसके बंधु बांधव राज्य पर कब्जा जमा लेते हैं। जलाल, योग्य, कुशाग्र बुद्धि ओर वीर था, उसने अपने मामा को अपनी वीरता ओर साहस का परिचय दिया। अतः उसे अलग महल, नौकर चाकर, हाथी घोड़े आदि की व्यवस्था भी कर दी गई।

थटाभखर से लगा सिंध का राज था। उस समय सिन्ध मे भँवर नाम का राजा राज्य करता था। उसके मूमना और बूबना दो कन्याए होती है। काजी दोनो बेटियों के लिए जलाल ओर मृगतमायची को श्रेष्ठ वर बताते है। तब राजा तय करता कि जलाल को बूबना ओर मृगतमायची को मूमना का नारियल दिया जाये, पर बूबना की सौन्दर्यता के कारण मृगतमायची अपने लिए बूबना ओर जलाल के लिए मूमना का नारियल ले लेता है, पर बूबना पहले ही मन ही मन जलाल को अपना पति मान लेती है, पर जलाल का मूमना ओर बूबना का मृगतमायची के साथ विवाह होता है, परन्तु दोनों के असीम प्रेम के कारण चोरी छिपे जलाल–बूबना मिलते रहते । अंत मे एक दूसरे की मौत की खबर से दोनो मर जाते है। उन्हे एक ही कब्र मे दफनाया जाता है। जनश्रुति के अनुसार पार्वती की हठ के कारण शिव पुनः जलान बूबना मे जीव डालते ओर तीनों जलाल बूबना व मूमना आराम से आगे का जीवन बिताते है।[14]

नागजी नागवत्ती

नागजी की प्रेम कहानी अपनी कोमलता ओर गायन की सरलता दोनो ही दृष्टियों से उत्कृष्ट है। रावण हत्थे पर इस प्रेम कथा को गा–गाकर प्रस्तुत करने वाला स्वयं भी प्रेम सागर मे डूब जाता है, और श्रोताओं को भी प्रेम की लहरों में निमग्न कर देता है।

जाखड़े नाम का एक राजा कच्छ के भूखण्ड पर लोकप्रियता के साथ राज्य करता था। राजा लोक कल्याणकारी था, लेकिन दुर्भाग्य से एक बार उसके राज्य मे लगातार तीन–चार वर्ष तक अकाल पड़ा, परेशान राजा और उसकी प्रजा को सहारा, घोल राज्य के राजा ने दिया जहाँ अन्नःधन का भण्डार भरा था।

जाखड़े की एक पुत्री थी, नागवंती जो कि समस्त सुलक्षणों और सौन्दर्य से परिपूर्ण थी। राजा घोल के भी नागजी नाम का पुत्र था, जो वीर साहसी और महत्वाकाक्षी था। नागजी नागवंती के रूप सौन्दर्य पर मोहित हो जाता है, और अपनी भाभी पेमलदे की मध्यस्तता में नागवंती से चुपके से विवाह रचा लेता है। दोनो राजाओं को इस बात का पता नहीं चलने देते, चूकि दोनो की सगाई कहीं अन्यत्र हो गई थी।

एक दिन संयोग से नागजी नागवती को मिलते हुए दोनो राजा देख लेते है, ओर आग बूबला होते, जाखड़े अपनी पुत्री की अन्यत्र विवाह की तैयारी करना शुरू कर देता है, जिससे नागवंती प्रसन्न नहीं थी। दोनो प्रेमी मिलने की योजना बनाने पर मंदिर में पहुँचते–पहुँचते नागवंती को देर हो जाती है। नागजी अपनी कटार से अपनी जीवन लीला समाप्त कर देते है। बाद में उनकी प्रेमिका उनके साथ सती हो जाती है। आज भी शेखावाटी के ख्यालों, लोकगीतो ओर भित्तिचित्रों मे इन प्रेमी प्रेमिकओं की लोक गाथा को देखा व सुना जा सकता है। इस प्रकार जलाल बूबना, नागजी नागवंती, ढोलामारू की लोक प्रेम गाथाओं ने

स्थानीय लोकगीतो, फड़ और लोक चित्रों के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।[15]

रोमांच कथात्मक लोक गाथाए

राजस्थान मे ऐसी लोक गाथाए भी प्रचलित है। जिनमें अतिमानवीय तत्व अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है, तथा इनमें ऐसी अद्भुत घटनाओं का समायोजन मिलता है। जो रोमांचकारी है, जैसे निहालदे–सुल्तान, जलाल–बूबना।

निहालदे सुल्तान

चकवै बेन के पुत्र मैनपाल कीचलगढ़ के राजा के सात रानियों में से किसी के भी संतान नही थी, बाद मे बाबा गोरखनाथ के आर्शीवाद से मैनपाल को एक सुन्दर पुत्र की प्राप्ति हुई। उसका नाम सुलतान रखा गया, बचपन में सुल्तान नटखट थे, कुए पर पानी भरने आई पणिहारियों के घड़े फोड़ डालता था। एक दिन एक ब्राह्मण लड़की ने राजा से शिकायत की कि या तो सुल्तान को 12 वर्ष का देश निकाला दे अन्यथा वो शाप देगी, राजा ने 12 घड़ी के देश निकाले के आदेश दिये जो गलती से कलम से 12 वर्ष में बदल गये।

सुलतान अपने देश से निकल गया, ओर वो कमधजराव के यहाँ जाकर रहने लगा जिसने उसे धर्म पुत्र बनाया अपनी पुत्री फूलकुँवर के साथ शिक्षा–दीक्षा दी गई, एक बार शिकार खेलते हुए फुलकुँवर ओर सुलतान केलागढ़ पहुँचे जहाँ उनकी मुलाकात निहालदे से हुई दोनो एक दूसरे पर मंत्र मुग्ध हो गये, निहालदे ने अपनी माँ को यह बात बताई केलागढ़ में स्वयंवर रचाया, निहालदे की सगाई पहले फुलकुँवर से हो चूकी थी। स्वयंवर मे फुलकँवर व अन्य सफल नहीं हो सके, ओर कमधजराव की इच्छानुसार सुलतान को बुलाया गया। उसने गोरखनाथ का स्मरण कर मत्स्य का पेट चीर डाला। निहालदे सुलतान के गले मे वर माला पहनाई, दोनो का विवाह हो गया। फुलकुँवर से विवाह न होने से रानी क्षुब्ध हो गई। सुलतान को राज्य से जाना पड़ा। कामधजराव के विश्वास दिलाने पर निहालदे को उसी के पास छोड़ नरवलगढ़ चला गया। वहाँ की रानी मारू ने सुलतान को धर्म का भाई बना लिया, ओर कार्य दे दिया, पूर्व मे रानी के आदेश का हुक्म चलता था। अब नरेश ढ़ोल सिंह ओर सुलतान प्रशासन संभालने लगे। अपनी साहस, वीरता से अनेक बड़े कार्य किये सभी सुलतान से प्रसन्न थे।[16]

निहालदे अपने पति को परवाने भेजती रही अंततः दुखी हो सती का वरण करने की तैयारी करने लगी, पर सही समय पर सुलतान पहुँच गया, ओर निहालदे ओर सुलतान पुनः एक हो गये, पुनः विवाह के बंधन मे बंधे। सुलतान के देश निकाले की अवधि भी पूरी हुई, ओर पुनः अपने राज्य कीचलगढ़ पहुँचे जहाँ सुलतान का राज्यभिषेक किया गया, और निहालदे रानी बनी। निहालदे ओर सुलतान की लोक कथा आज भी शेखावाटी के लोगो की जुबान पर सुनी जा सकती है। चाहे वो ख्याल हो नाटक या लोक गीत सभी के विकास में इस रोमांचक कथा के योगदान को देख सकते है।[17]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. के. के. शर्मा – राजस्थानी लोकगाथाएं, पृ. सं. 57, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2003*
2. *वही पृ. सं. 58*
3. *वही पृ. सं. 59*
4. *डॉ. कुमुद शर्मा – लोक नायक पाबूजी, पृ. सं. 48, जयपुर पब्लिशिंग हाउस, जयपुर 2003*
5. *वही पृ. सं. 49*
6. *चन्द्रदान चारण – गोगाजी चौहान री राजस्थानी गाथा, पृ. सं. 20, भारतीय विद्यामंदिर शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर (राज.), 2000*
7. *दिनेशचंद्र शुक्ल – राजस्थान के प्रमुख संत एवं लोक देवता, पृ. सं. 40, राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर, 1995*
8. *डॉ. सौभाग्य गोयल – अजमेर में जन आन्दोलन (19वीं एवं 20वीं शताब्दी) पृ. सं. 38 अग्रसेन प्रकाशन, अजमेर, 1999*
9. *वही पृ. सं. 39*
10. *डॉ. रामप्रसाद दाधीच – लोक संस्कृति एवं अन्य निबंध, पृ. सं. 14, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1999*
11. *वही पृ. सं. 15*
12. *वही पृ. सं. 16*
13. *डॉ. कृष्ण बिहारी सहल – राजस्थानी लोक गाथाएं एवं निहालदे सुल्तान, पृ. सं. 30, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1999*
14. *वही पृ. सं. 37*
15. *वही पृ. सं. 48*
16. *वही पृ. सं. 50*
17. *डॉ. हीरालाल माहेश्वरी – राजस्थानी भाषा साहित्य और संस्कृति, पृ. सं. 145, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1998*

महात्मा ज्योतिबा फूले, शिक्षा क्रान्तिकारी दूत

पपेन्द्र सैनी
शोधार्थी, महाराज विनायक ग्लोबल यूनिवर्सिटी, जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारतीय समाज को सदैव समाज सुधारको और मार्गदर्शको का सानिध्य मिलता ही रहा है। जिनमें महात्मा ज्योतिबा फूले भी एक है। इन्होनें दलित, पराश्रित, निराश्रित और दीनहीन समाज को शिक्षा, नैतिक संघर्ष और जागरूकता का पाठ पढ़ाया। 'विधा बिना मति गयी' की अलख जगाने वाले महात्मा ज्योतिबा 19 वी सदी के महान विचारक,समाज सेवी, लेखक, दार्शनिक तथा क्रांतिकारी कार्यकर्ता थे। आधुनिक भारत के निर्माताओ में महात्मा फूले का नाम अग्रणी है। उन्होने 19 वी शताब्दी के पुर्नजागरण में शोषण मुक्त स्वस्थ समाज स्थापना हेतु अपना जीवन समर्पित कर दिया। फूले ने सामाजिक समता, धार्मिक सहिष्णुता, आर्थिक न्याय, दलित वर्ग की राजनीति मे भागीदारी और शोषण मुक्ति के लिए जीवन के अंतिम क्षण तक संघर्ष किया और इस रूप में वे महाराष्ट्र के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण राष्ट्र के महान चिंतक बन गये। इनके सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन की वर्तमान मे भी प्रासंगिकता है। एक युगप्रवर्तक कर्मयोगी थे। वे मानवता के हितेषी, पीड़ित, दलित एवं उपेक्षितों के सजग- प्रहरी एवं संरक्षक थे। उनके हदय में मानवता के प्रति दया, सहानुभूति एवं ममत्व के भाव भरे हुए थे। वे स्त्री - पुरूष समानता, स्वतंत्रता एवं भाईचारे के पोषक थे। समाज के सभी वर्गो को समान अधिकार दिलाने हेतु वे आजीवन प्रयत्नशील एवं संघर्षरत रहे।

संकेताक्षर : *लेखक, महामानव, समाज सुधारक, चिंतक, 'श्रेष्ठ ज्योति' प्रथम भारतीय, सजग- प्रहरी।*

महाराष्ट्र मे सतारा नगर से 40 कि.मी. दूर कट्गुण नामक एक गाँव है। फूले जी के पूर्वज उसी गांव के पाटिल (चौधरी) और कुलकर्णी (पटवारी) के चौगुला (सहायक) थे। उस समय गांव के दो बड़े अधिकारी होते थे। पाटिल और कुलकर्णी । तब फूले का कुल परिवार (वंश) गोन्हे कहलाता था। यह फूलमाली थे। इस परिवार में एक बालक का जन्म हुआ उसका नाम रखा गया शेटीबा । ज्योतिराव के परदादा की कुलकर्णी से अनबन होने पर कट्गुण नामक गांव से खानबड़ी गांव में रहने लगे। वहीं से शेटीबा का जन्म हुआ शेटीबा के तीन पुत्र थे राणोंजी, कृष्णा, गोविंद। यह तीनों फूलमाली होने तथा पेशवा के यहां फूलो के व्यवसाय करने के कारण फूले नाम से लोकप्रिय हुए। गोविंद का विवाह पुणे के निकट धनकवाड़ी गांव के निवासी चिमनाबाई से हुआ। गोविंद दंपति ने दो पुत्रों को जन्म दिया। उनमें एक का नाम राजाराम तथा दूसरे का नाम ज्योतिराव था।

दिनांक 11 अप्रैल 1827 ई. को जन्मे ज्योतिराव की मां एक वर्ष पश्चात पंच तत्व में विलीन हो गई। तब दाई माँ ने उनका पालन-पोषण किया। यह प्रतिभा सम्पन और परिश्रमी बालक थे। सात वर्ष की आयु में पारंपरिक विद्यालय में प्रविष्ट हुए अंग्रेजी माध्यम के इस विद्यालय में बिना भेदभाव के शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात खेती का काम सौंप दिया गया। खेती और उद्यान के कारण कार्य को करते हुए शिक्षा में रुचि बनी रही। तेरह वर्ष की आयु में सन 1840 में खंडाला तहसील के नयागांव नवासे पाटिल की 8 वर्षीय कन्या सावित्री बाई से इनका विवाह कर दिया गया।

गोविंदराव के घनिष्ठ मित्र ईसाई पादरी लेजिट के एक साक्षात्कार मे ज्योतिराव ने निः संकोच उतर दिये। लेजिट उनसे बहुत प्रभावित हुए। उन्होने स्कौटिश स्कूल मे ज्योतिराव को प्रवेश करवाया। उस समय वह 14 वर्ष के थे। इस मिशन स्कूल की शिक्षा ज्योतिराव ने सन 1847 ई. मे पूर्ण कर ली।

इन्होंने तब तक अंग्रेजी की 7 पुस्तकों का अध्ययन पूरा कर लिया। मराठी, अंग्रेजी, मोड़ी,और गुजराती भाषाओं की विद्धान बन गए तथा अनेक धार्मिक, ऐतिहासिक व सामाजिक ग्रंथों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया। साथ ही अपनी पत्नी को भी उन्होंने घर पर ही अक्षर ज्ञान कराना आरंभ किया।

अज्ञान दलितों का शत्रु है। इसी को मध्यनजर रखते हुए महाराष्ट्र में सत्य शोधक समाज के संस्थापक महात्मा ज्योतिबा फूले ने इस विद्रोह की शुरुआत की। उन्होंने शिक्षा के महत्व को बुनयादी ताकत प्रदान की और इसका दलितों को फायदा हुआ। वर्ण भेद, जाति भेद और धार्मिक असमानता की स्थितियों को समाप्त कर समतामूलक स्वस्थ मानवी समाज बनाया इन विचारकों ने। आज विद्रोह साहित्य उभर कर सामने आया है। अछूत को आजादी मिलने के बावजूद अछूत बने रहने की त्रासदी उसे व्याकुल कर देती है और वह क्रोधित सिंह की भाँति उसका शिकार करने को तैयार हो जाता है।

इतिहास की अनेक घटनाएँ साक्षी हैं कि लेखकों तथा साहित्यिकों ने अपने काव्य तथा साहित्य के माध्यम से राजनीतिक या सामाजिक क्रांति करने का प्रयास किया है। छत्रपति शिवाजी के जमाने में पराधीनता के लगभग आदी बन चुके लोगों के मनों में समर्थ रामदास स्वामी ने अपनी वाणी तथा लेखनी से स्वतंत्रता के लिए लड़ने की प्रेरणा पैदा की। आधुनिक महाराष्ट्र में लोकहितवादी के शतपत्रों, लोकमान्य तिलक तथा आगरकर के अग्रलेखों ने स्वतंत्रता की भाषा जनसाधारण तक पहुँचाई। महात्मा फूले ने प्रत्यक्षतः समाज- जागरण का काम करते हुए भी अभंग की तरह का, वास्तव में काव्य छंद का आधार लेते हुए, एक नया छंद 'अखंड' साहित्य जगत को दिया।

सन् 1857 के बाद का काल भारत में राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन का रहा। ईश्वरचंद्र विद्यासागर तथा राजा राममोहन राय के विचारों के कारण बंगाल में नवजागरण की लहर दौड़ने लगी थी। विविध सांस्कृतिक प्रवाह तेजी से आने लगे थे। उसी समय बंगाल की भाँति महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फूले व आगरकर आदि नेता पुरानी रूढ़ियों और परंपराओं से मुक्त होकर समाज सुधार का प्रयास कर रहे थे।

'सत्य शोधक समाज' ने बौद्धिक विकास सांस्कृतिक उत्थान और न्याय की स्थापना के लिए जन-आंदोलन आरंभ किया मानव-मात्र की समानता के समर्थक थे। जाति, पंथ, धर्म, संप्रदाय, लिंग, भाषा, आदि के नाम पर होने वाले भेदभाव के प्रबल विरोधी थे। बहुत कम लोग इस तथ्य से परिचित होंगे कि महात्मा गांधी से पूर्व महाराष्ट्र मे एक ऐसे महान् समाज-सुधारक पैदा हुए थे, जिन्होंने जाति-पाँति, अस्पृश्यता, आदि सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने और किसानों की स्थिति सुधारने व समाज में महिलाओं को उनके अधिकार दिलाने का उल्लेखनीय कार्य किया था।

तुलना समान व्यक्तियों के बीच की जानी चाहिए, ताकि वह दिलचस्प और शिक्षात्मक हो सके। ऐसी तुलना के लिए सौभाग्यवश परिस्थिति अनुकूल थी। रानाडे समाज-सुधारक थे और एक समाज-सुधारक के नाते उनकी लाभकारी तुलना अन्य समाज-सुधारकों से की जा सकती है। रानाडे और ज्योतिबा फूले के बीच तुलना विशेषकर प्रकाशवान् होगी। फूले का जन्म 1827 में हुआ और मृत्यु 1890 में हुई। रानाडे का जन्म 1842 में और मृत्यु 1901 में हुई। अतः दोनों समकालीन थे और दोनों ही उच्च श्रेणी के समाज सुधारक थे। रानाडे की अन्य राजनीतिज्ञों के साथ तुलना करने में कदाचित् कुछ लोग घबड़ाएँगे। इसका कारण यह हो सकता है कि ऐसे लोगों की राय में रानाडे राजनीतिज्ञ नहीं थे। जो कहते हैं कि रानाडे राजनीतिज्ञ नहीं थे, वे राजनीतिज्ञ शब्द के अर्थ को अतिसीमित और प्रतिबन्धित बना देते हैं। एक राजनीतिज्ञ केवल राजनीति में ही व्यस्त नहीं रहता।

महिला सशक्तिकरण

भारत का प्रथम छात्रा विद्यालय

1. निम्न वर्ग की आर्थिक व सामाजिक दशा सुधारने के लिए ज्योतिराव फूले ने बिना किसी भेदभाव के निशुल्क शिक्षा हेतु पुणे के बुधवार पेट में भिड़े नामक व्यक्ति के मकान में निजी क्षेत्र में 1जनवरी 1948 ई. को छात्रा विद्यालय की स्थापना की। यह भारत में प्रथम छात्रा विद्यालय था।

छात्र- छात्राओं को गणित भाषा और सामाजिक विज्ञान की निशुल्क शिक्षा दी जाने लगी। छात्राओं के प्रवेश में अधिक वृद्धि होने लगी। उस समय धार्मिक व सामाजिक मान्यताओं की दृष्टि से सहज कल्पना की जा सकती है कि विरोध, बाधा और रूढ़िवाद के हिमालय को कैसे पार किया होगा ज्योतिराव ने, जबकि शूद्र और नारियों के लिए शिक्षित होना धर्म का उल्लंघन माना जाता था।

2. निरंतर छात्राओं की वृद्धि से प्रेरित होकर फूले ने गंज पेट में शूद्र बालिकाओं के लिए एक अन्य विद्यालय की स्थापना की। लाख प्रयत्न करने पर भी इनके लिए जब कोई शिक्षिका तैयार नहीं हुई तो भली-भांति विचार करके अपनी ही पत्नी सावित्रीबाई को इस विद्यालय की शिक्षिका नियुक्त किया।

इस प्रकार सावित्रीबाई राष्ट्र की प्रथम शिक्षिका बनी। प्रताड़ना, अपमान, लांछन, मानसिक तनाव के होते हुए सावित्रीबाई ने शिक्षण का पुनीत कार्य निरन्तर बनाये रखा।

3. तीन जुलाई 1851 ई. को ज्योतिराव फूले ने पूना ब्राह्मण बस्ती मे बुधवार पेठ में एक और बालिका विद्यालय की स्थापना की। फूले इस विद्यालय मे भी बिना वेतन के चार घंटे प्रतिदिन शिक्षण कार्य करते थे। सावित्रीबाई को भी इस का विद्यालय में शिक्षण हेतु बुला लिया।

4. राष्ट्रो में शिक्षा, शिक्षा प्रसार हेतु मई 1852 ई. में ''शिक्षण संस्था'' की स्थापना की जिसका उद्देश्य और अधिक स्कूल व पाठशाला खोलना था।

उस समय सामाजिक व्यवस्था के अनुसार स्त्रियों को सार्वजनिक रूप से शिक्षा देना धर्म के विरुद्ध मान्यता थी कि अच्छे घर की पुत्री और बहू को घर से बाहर नहीं निकलना चाहिए। ज्योतिराव के पिता को भड़काया की पुत्र वधू को घर से बाहर न जाने दे। पिता डर गए तथा उनके प्रभाव में आकर फूले दंपति को पिता की धमकी के अनुसार घर छोड़ना पड़ा। यह समाचार नवंबर 1851 ई. के ''बोम्बे गार्डियन'' अखबार में प्रकाशित हुआ।

5. सन 1852 ई. में 'पूना लाइब्रेरी' स्थापना की।

6. सन 1855 ई. में ज्योतिराव ने 'रात्रि पाठशाला' खोली। उन्होंने लगभग 40 वर्ष की उम्र मे बीस विद्यालयो की स्थापना की।

सत्यशोधक समाज की राजनीतिक भूमिका

सत्य शोधक समाज का गठन 1873 मे फूले द्वारा किया गया था । इस समाज के झंडे के नीचे फूले निचली जतियों को एकत्रित करके उनको राजनीतिक गतिविधियों का अहसास भी कराने का प्रयास करते थे। इस प्रकार फूले के सत्य शोधक समाज की राजनीतिक भूमिका रही है ।

वर्तमान समय में ज्योतिराव फूले के सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन की महती आवश्यकता है। आज भी समाज में सामाजिक एवं राजनीतिक स्तर पर कई तरह की बुराइयां व भ्रांतियां व्याप्त है। इन बुराइयों व अपराधो को मिटाने हेतु फूले के सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन को जीवन में उतार कर समाज व राजनीति में परिवर्तन लाया जा सकता है।

राजनीतिक योगदान एवं महान विचारक

ज्योतिराव के भाषणों व लेखों के आधार पर 1878 में दक्कन कानून बना। इसी प्रयास के अनुरूप सन 1888 ई. में मिल मजदूर संगठन की स्थापना की गई।

ज्योतिराव फूले ने राजनीति में सक्रिय भाग लिया। वे सन 1876-82 ई. के लिए पुणे नगर नगरपालिका सदस्य चुने गये ।

ज्योतिराव ने एक योजना बनाई जिसके अनुसार पुणे देश की एकमात्र नगरपालिका थी जिसके द्वारा वहां के नागरिकों को पानी फिल्टर करके वितरित किया जाता था।

ज्योतिराव नगरपालिका की आय व्यय जांच उपसमिति के 1867- 68 व 1877-78 में सदस्य रहे।

प्रजातंत्र के समर्थक

फूले राजनीति के क्षेत्र में जन भागीदारी के पक्षधर थे। समाज के दलित व कमजोर वर्गो की सत्ता में भागीदारी के समर्थक थे। साथ ही वे दलित वर्गो के हितों की राजनीति के पक्षधर थे।

ज्योतिराव गोविन्दराव फूले का महाराष्ट्र के समाज-सुधारकों में प्रमुख स्थान है। वे एक युगप्रवर्तक कर्मयोगी थे। उन्हें दलित मसीहा माना जाता है। उन्होंने सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं का मूलोच्छेदन किया। वे सच्चे स्वाभिमानी थे। उन्होंने रूढ़िवादिता, जातीय-संकीर्णता तथा ब्राह्मणवाद के विरुद्ध संघर्ष किया। स्त्रियों, शूद्रों एवं अतिशूद्रों के विकास हेतु उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन ही लगा दिया। वे मानवता के हितैषी, पीड़ित, दलित एवं उपेक्षितों के सजग-प्रहरी एवं संरक्षक थे। उनके हृदय में मानवता के प्रति दया, सहानुभूति एवं ममत्व के भाव भरे हुए थे। वे स्त्री-पुरुष समानता, स्वतंत्रता एवं भाईचारे के पोषक थे। समाज के सभी वर्गो को समान अधिकार दिलाने हेतु वे आजीवन प्रयत्नशील एवं संघर्षरत रहे।

महात्मा जोतिबा फूले गरीब दलित परिवार में पैदा हुए थे। इसलिए उनका जीवन शुरू से ही बहुत संघर्षशील रहा। उन्होंने किशोरावस्था में ही यह समझ लिया था कि उन्हें समाज में अच्छी नजर से नहीं देखा जाता। अतएव, वे समाज के भेदभाव तथा उसके कारणों को

जल्दी ही समझ गये और उसके लिए उन्होंने कार्य करना शुरू कर दिया। सबसे पहले उन्होंने दलित समाज की लड़कियों की शिक्षा का प्रबन्ध किया। फिर समाज से भेदभाव खत्म करने का संकल्प लिया।

ज्योतिबा ने जातिगत भेदभाव को इस समाज के लिए सबसे बड़ा अभिशाप माना। इसे खत्म करने के लिए वे अंग्रेजी सरकार से लड़े। नयी शिक्षा व्यवस्था कायम करने के लिए कानून बनवाये और दलित, गरीब तथा वंचित समाज को सम्मानजनक जीवन जीने का हक दिलवाया। ज्योतिबा फूले का व्यक्तित्व 'महात्मा' के नाम से समादृत है। उनके मूल्यवान जीवन को कुछ शब्दों में समेटना आसान नहीं।

उन्नीसवीं सदी को सामाजिक क्रान्ति की सदी की संज्ञा से अभिहित करना अतिरंजन नहीं होगा। सामाजिक क्रान्ति के अग्रनायक श्री ज्योतिराव गोविन्द राव फूले इसी सदी की उपज हैं। उन्होंने शिक्षा–प्रसार के माध्यम से स्त्रियों, दलितों, शूद्रादिशूद्रों को जगाने का अप्रतिम सफल प्रयास किया।

ज्योतिराव फूले का मूल नाम 'जोतिबा' था। यह नाम गोविन्द राव के कुलगुरु ने जन्म के समय ही सुझा दिया था। जोतिबा, कोल्हापुर के आसपास के बहुजन समाज के कल्याणकारी महामानव थे, जिनकी प्रतिमा आज भी कोल्हापुर की पहाड़ी पर एक भव्य मन्दिर में प्रतिष्ठित है। जोतिबा अर्थात् 'श्रेष्ठ ज्योति'। ज्योतिराव गोविन्द राव फूले को लोकजगत् में महात्मा जोतिबा फूले के नाम से जाना जाता है। 1 मई 18 को बम्बई के माण्डवी कोलीवाड़ा के शिवनेरी सभागार में मराठा समाज ने ज्योतिराव को महात्मा' की उपाधि से विभूषित किया था। शिवनेरी शिवाजी महाराज का जन्म स्थान है।

साहित्य सृजक

ज्योतिबा फूले की सबसे पहली रचना 'तृतीय रतन' नाटक है, जो सन 1855 में लिखा गया। उसके बाद सन 1891 तक व लगातार लिखते रहें। पँवाड़ा छत्रपति शिवाजी भोसले का (जून 1869), पँवाड़ाः शिक्षा विभाग के ब्राह्मणों अध्यापकों का (जून 1869) ब्राह्मणों की चालाकी (1869), गुलामगिरी (1873), हंटर शिक्षा आयोग के सामने निवेदन पेश (19 अक्टूबर 1882), किसान का कोडा (18 जुलाई 1883), ग्राम जोशी के संबंध में (29 मार्च 1886), सत्यशोधक समाज के लिए मंगल गाथा और पूजा विधि (जून 1887) सार्वजनिक सत्य धर्म (1891), अखण्डादि काव्य रचना आदि रचनाये फूले कालीन भारतीय समाज की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, शेक्षिक स्थिति को अच्छी तरह समझ लेने के लिए पर्याप्त है। यही नहीं, उन्होंने अपने विचारों को समाज के आम आदमी तक पहुंचाने के लिए सत्यशोधक समाज की स्थापना की और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन्होंने जो भी लिखा, उसको स्वम छपवा कर प्रकाशित किया। सन 1873 मे प्रकाशित 'गुलामगिरी' को इन्होंने यूनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका) के उन लोगों को समर्पित किया है। जिनहोने ने वहां के काले लोगों को गौरो की दासता से मुक्त कराने के काम को आगे बढ़ाया था। ज्योतिबा फूले ने शूद्रो–अति शूद्रो की गुलामी की तुलना काले, हब्शी गुलामों से की ।

वर्तमान में ज्योतिबा की कूल 22 किताबें मिलती है। लगभग सभी मौलिक हैं और कुछ सत्यशोधक समाज की रिपोर्ट के रूप में प्रस्तुत की गई है।

ज्योतिबा फूले का संपूर्ण साहित्य दलितों अछूतो कमजोर, वाछितों, शोषित, पीड़ित, के गरीबों के पक्ष में खड़ा है। ज्योतिबा समाज में बराबरी लाने के उपायों पर जिंदगी भर सोचते– समझते रहे। उनके लिए लड़ते रहे, उनके लिए लिखते रहें, उन्हीं के लिए जिए और उन्हीं के लिए मरे।

साहित्य रचना को, जहां तक बन पड़े, उन्होंने लोकधर्मी बनाया उनका पूरा साहित्य भारतीय जन क्रांति के मूल तत्व को विषद करने वाला दस्तावेज है।

सदियों से सोए हुए समाज को जगाना और उसे उसकी अस्मिता का भान करा देना फूले साहित्य का मुख्य उद्देश्य था। उन्होंने अपनी बात लोगों को समझा दी कि अज्ञान और अंधविश्वास की युगों से जमी हुई सख्त परते उन्हें तोड़ने की और उनके लिए लोहा लेकर फौलादी हल चलाना जरूरी था। उनकी शैली 'कबीर की शेली' थी। अपना साहित्य रचना को, जहां तक बन पड़े. उन्हें लोकधर्मी बनाया. उनका पूरा साहित्य भारतीय जन क्रांति के मूल तत्वों को विशुद्ध करने वाला दस्तावेज है। नकार, विद्रोह, विज्ञान, संकल्प और रचना उनके साहित्य की पंचशुत्री है।

सत्यशोधक समाज

महात्मा फूले ने समाज को भ्रमित होने से बचाने तथा धर्म परिवर्तन से दूर रहने के लिए 24 सितम्बर 1872 ई. को ''सत्य शोधक समाज'' की स्थापना की। इसकी शाखांए पूरे दक्षिण प्रान्त मे फैला दी । देश भक्त न्यायमूर्ति रानाडे, राय बहादुर शास्त्री, लाल

शंकर– उमाशंकर त्रिवेदी आदि व्यक्तियों ने ज्योतिराव को पूर्ण सहयोग दिया ।

1. ईश्वर एक, सर्व व्यापी निर्गुण,निर्विकार तथा सत्य स्वरूप है और हम सभी मे व्याप्त है ।
2. प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर भक्ति का अधिकार प्राप्त है। उसके लिये किसी मध्यस्थता की आवश्यकता नहीं ।
3. मनुष्य की श्रेष्ठता उसकी जाति मे नहीं वरन उसके स्वय के गुणों मे है ।

सत्य शोधक समाज का गठन 1873 मे फूले द्वारा किया गया था। इस समाज के झंडे के नीचे फूले निचली जातियों को एकत्रित करके उनको राजनीतिक गतिविधियों का अहसास भी कराने का प्रयास करते थे। इस प्रकार फूले के सत्य शोधक समाज की राजनीतिक भूमिका रही है।

शिक्षा क्रांतिकारी दूत महात्मा फूले

महात्मा ज्योति राव फूले को भारतीय इतिहास में एक विशेष स्थान प्राप्त है। उनके शिक्षा अर्थशास्त्र राजनीति एवं धर्म संबंधी बहुमूल्य विचार अदभुत ज्ञान– गरिमा से ओतप्रोत थे जो युग युग तक है हमारा मार्गदर्शन करते रहेंगे।

निम्न वर्ग की आर्थिक व सामाजिक दशा सुधारने के लिए ज्योतिराव फूले ने बिना किसी भेदभाव के निशुल्क शिक्षा हेतु पुणे के बुधवार पेट में भिड़े नामक व्यक्ति के मकान में निजी क्षेत्र में 1जनवरी 1948 ई. को छात्रा विद्यालय की स्थापना की। यह भारत में प्रथम छात्रा विद्यालय था।

राष्ट्रो में शिक्षा, शिक्षा प्रसार हेतु मई 1852 ई. में ''शिक्षण संस्था'' की स्थापना की जिसका उद्देश्य और अधिक स्कूल व पाठशाला खोलना था। मुंबई सरकार के गवर्नर की अध्यक्षता में फूले का सार्वजनिक अभिनंदन किया गया।

सन 1855 ई. में ज्योतिराव ने 'रात्रि पाठशाला' खोली। उन्होंने लगभग 40 वर्ष की उम्र मे बीस विद्यालयो की स्थापना की। महाराष्ट्र सरकार के अभिलेखो मे 18 विद्यालय खोले जाने का उल्लेख मिलता है।

अंग्रेज सरकार ने भारत मे शिक्षा सुधार हेतु सन् 1882 में हण्टर आयोग की स्थापना की। इस आयोग के समक्ष ज्योतिराव ने कहा कि यदि सरकार प्रजा जनों की स्थिति में सुधार चाहती है तो उसे सबके लिए शिक्षा अनिवार्य कर देनी चाहिए। जबकि राजा राम मोहन राय ने कनिष्ठ वर्गो में शिक्षा–प्रसार का विरोध किया था। ज्योतिराव ने आयोग ये स्पष्ट रूप से कहा कि बारह वर्ष तक के सभी बालक–बालिकाओं को अनिवार्य रूप से शिक्षा दी जानी चाहिए।

बालिका विद्यालय की स्थापना करने वाले ज्योतिराव फूले प्रथम भरतीय थे। उनके सतत् प्रयासों से उच्च शिक्षा हेतु भी 1882 में बालिकाओं को अनुमति दी गई।

उन्होंने 1855 में रात्रि–पाठशाला खोली, जिसमें दिन भर कार्य करने का वाले मजदूर, किसान, महिलाएँ तथा गृहणियाँ पढ़ने आती थीं। यह हमारे देश की प्रथम रात्रि–पाठशाला थी। इन्हें रात्रि–पाठशालाओं का जनक कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मस्के, साक्षान्त–परम्परागत वर्ण–व्यवस्था और दलित साहित्य,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2009. पृ. 92*
2. *सबनिसा, मिलिंडा प्रभाकर–वंदे मातरम, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृ. 28*
3. *पाण्डेय, पृथ्वीनाथ–निबन्ध सागर,प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 278*
4. *जगताप, मुरलीधर– सामाजिक क्रांति के अग्रदूत महात्मा ज्योतिबा फूले, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, 2009, पृ. 114*
5. *सैनी, किशन सिंह –भारतीय सामाजिक क्रान्ति के प्रेरणा स्त्रोत महात्मा ज्योतिराव फूले (1827 ई. –1890ई.), सपना प्रिंटिंग प्रैस खिरनी घाट, भरतपुर राजस्थान 2002 पृ.03*
6. *सैनी, मोहनलाल ज्योतिराव फूले का सामाजिक एवं राजनीतिक दर्शन एक अनुशीलन, आयुष पब्लिकेशन, जयपुर, 2017, पृ. 104*
7. *शीतल, डॉ. सोहनलाल, महात्मा ज्योतिराव फूले, रमन बुक सेंटर, मथुरा, 2016, पृ.07*
8. *नागर, हीरा लाल – महात्मा ज्योतिबा फूले, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2017 पृ.07*
9. *आर्य, जियालाल–ज्योतिपुंज महात्मा फूले, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2006, पृ.07*
10. *विमल कीर्ति, एल. जी मिश्राम (मलबारी के दो टिप्पणियों के बारे में महात्मा फूले के विचार) 04 दिसम्बर 1884 राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्लीए पृ. 01*

ऑगनबाड़ी कार्यकत्री महिलाओं की समाजाकि–आर्थिक प्रस्थिति

दिव्या राव
शोधार्थी, एम. बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखंड)
डॉ. एम. पी. सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, एम. बी. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखंड)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

किसी भी समाज अथवा राष्ट्र के उन्नयन में यदि निरपेक्ष दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो महिलाओं की भूमिका पुरूषों से कहीं भी कम दृष्टिगोचर नहीं होती है। महिलाएं राष्ट्रीय विकास एवं सामाजिक संरचना की रीढ़ होती है। भारत में गारो, खासी तथा नायर मातृ–सत्तात्मक परिवारों में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की प्रस्थिति ऊँची है। सम्पूर्ण भारतीय जनसंख्या में ग्रामीण महिलाओं का प्रतिशत लगभग पुरूषों के समान ही है, परन्तु जनसंख्यात्मक समानता के बाद भी इन्हें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक समानता नहीं प्राप्त हो सकी है। परिवार से बाहर महिलाओं का कार्य करना गलत समझा जाता था, वहीं आज की बदलती परिस्थितियों ने महिलाओं को विभिन्न अवसर देकर एक नये वर्ग को जन्म दिया है। आज सामाजिक परिवर्तन की ऑधियों के परिणाम स्वरूप महिलाओं ने अपने अधिकारों को जाना है और घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर अपनी अलग व नयी पहचान बनाई है। पारिवारिक दायित्व के निर्वहन के साथ–साथ परिवार की आर्थिक स्थिति को भी सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रही है। वे ये मानने लगी हैं कि आर्थिक सम्पन्नता उनको व्यक्तिगत रूप से भी सामाजिक श्रेष्ठता प्रदान करती है।

संकेताक्षर : *आंगनबाड़ी, परिवार, अधिकार, सामुदायिकता, सामाजिक सहभागिता।*

सरकार द्वारा महिलाओं की स्थिति को उच्च बनायें रखनें हेतु ऑगनबाड़ी कार्यक्रम का संचालन किया गया, यह कार्यक्रम विशेष रुप से महिलाओं द्वारा महिलाओ के लिए है। ऑगनबाड़ी एक सरकारी संस्था है। यह महिलाओं एवं बच्चों के पोषण व स्वास्थ्य के लिए संचालित की गयी थी। परिवार नियोजन तथा प्रसव जैसे कार्यों में भी ऑगनबाड़ी अहम भूमिका निभाती है, भारत में वर्ष 1975 में ऑगनबाड़ी योजना आरम्भ की गयी इसमें छः वर्ष से कम आयु के आठ करोड़ बालकों को इसका लाभार्थी बनाया गया।

ऑगनबाड़ी कार्यक्रम योजना में ऑगनबाड़ी कार्यकत्री इसका मुख्य स्तम्भ है। उसी को ऑगनबाड़ी के हर काम को संचालित करना होता है। इसमें शामिल हैं रविवार व त्यौहारों के अवकाश को छोड़कर प्रतिदिन केन्द्र खोलना जिसका समय सामान्यतः प्रातः 8 से 2 बजे तक होता है, ऑगनबाड़ी क्षेत्र में रहने वाले सभी परिवारों का पता लगाना, उन्हें सूचीबद्ध करना, घर–घर सर्वेक्षण करना, छह साल तक की उम्र के सभी बच्चों की शिक्षा और देखभाल, बच्चों के सर्वांगीण विकास पर खास ध्यान देना, अभिभावकों और माताओं को घर जाकर समझाना, प्रतिदन समय पर भोजन का इंतजाम देखना, छह साल से कम उम्र के बच्चों तथा गर्भवती व दूध पिलाने वाली महिलाओं को अनुपूरक आहार (नाश्ता, गरम पका भोजन, रेडी टू ईट खाना या घर के जाने हेतु राशन) देना टीकाकरण, वी एन.एन.डी. और स्वास्थ्य–जॉच करना उन्हें रेफरल के लिए समय से स्क्रीनिंग करना, केन्द्र का समय पूरा होने के बाद गर्भवती महिलाओं या किशोरियों के यहॉ गृहभ्रमण करना, समुदाय को लाभबंद करना, बच्चों, महिलाओं और किशोरियों के पोषण और स्वास्थ्य के बारे में जागरूकता फैलाना, ग्राम स्वास्थ्य और पोषण दिवस का रिकार्ड रखना आदि।

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत ऑगनबाड़ी कार्यकत्रियो की सामाजिक–आर्थिक प्रस्थिति के विश्लेषणात्मक अध्ययन का प्रयास किया गयाा है।

शोध प्रारूप :– प्रस्तुत अध्ययन वर्णात्मक शोध अभिकल्प पर आधारित है। अध्ययन का समग्र काशीपुर ब्लॉक के ग्रामीण ऑगनबाड़ी केन्द्र में कार्यरत ऑगनबाड़ी कार्यकत्रियों का हैं, कार्यरत ऑगनबाड़ी कार्यकत्रियों कुल संख्या 204 है, प्रतिदर्श चयन हेतु उद्देश्य पूर्ण निर्दशन पद्धति का प्रयोग किया गया है, उद्देश्य पूर्ण निर्दशन पद्धति द्वारा कुल संख्या से 25 प्रतिशत (51) कार्यकत्रियों का चुनाव प्रतिदर्श के रूप में किया गया है। चयनित इकाईयों से शोधार्थी ने स्वयं साक्षात्कार किया है, जिसके लिए एक अनुसूची तैयार की गयी।

अध्ययन के उद्देश्य

1. ऑगनबाड़ी कार्यकत्रियो की पारिवारिक एवं सामाजिक स्थिति को ज्ञात करना।

2. ऑगनबाड़ी कार्यकत्रियो के जीवन मे आये परिवर्तनों को ज्ञात करना।

विश्लेषण एवं निष्कर्ष

तालिका संख्या – 01 ऑगनबाड़ी कार्यकत्रियों के पारिवारिक स्वरूप को दर्शाती तालिका

विवरण	संख्या	प्रतिशत
संयुक्त परिवार	22	43
एकल परिवार	29	57
योग	51	100

तालिका संख्या – 01 के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश 57 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्री एंकाकी परिवार में निवास करती है जबकि 43 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्री संयुक्त परिवार में निवास करती है। अतः स्पष्ट होता है अधिकांश कार्यकत्री एंकाकी परिवार से है।

तालिक संख्या – 02 ऑगनबॉड़ी कार्यकत्री अपनी कमाई को खर्च करने में स्वतन्त्रता को दर्शाती तालिका

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हॉ	38	75
नहीं	13	25
योग	51	100

तालिका संख्या – 02 के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश 75 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्री अपनी कमाई को खर्च करने में स्वतन्त्र है, जबकि 25 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्री अपनी कमाई को खर्च करने में स्वतन्त्र नही है।

तालिक संख्या – 03 परिवार में ऑगनबॉड़ी कार्यकत्री के निर्णय को मान्यता

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हॉ	22	44
नहीं	17	34
कह नहीं सकते	11	22
योग	51	100

तालिका संख्या – 03 के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश 44 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रियों ने इस तथ्य को स्वीकारा है कि पारिवारिक निर्णयों में उनके प्रस्तुत किये गये तथ्यों को मान्यता प्राप्त होती है, वही 34 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्री नें बतलाया कि उनको परिवार के निर्णय में मान्यता नही मिलती तथा 22 प्रतिशत ऐसी ऑगनबॉड़ी कार्यकत्री है जिन्होनें इस सन्दर्भ में कोई उत्तर नही दिया।

तालिक संख्या – 04 पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह सम्बन्धि तालिका

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हॉ	39	76
नहीं	12	24
योग	51	100

तालिका संख्या – 04 के आधार पर स्पष्ट होता है कि अधिकांश 76 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्री अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह ठीक ढ़ग से कर पाती है, जिसमे घर कार्य, पशुपालन, कृषि कार्य आदि सम्मिलित है, वही 24 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रि अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह अत्यधिक कार्यभार के कारण ठीक ढ़ग से नही कर पाती है।

तालिक संख्या – 05 स्वंय मे आत्मविश्वास की भावना

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हॉ	48	94
नहीं	03	06
योग	51	100

तालिका संख्या– 05 के तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 94 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रियों ने बतलाया कि ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रि बनने के उपरान्त

उन महिलाओं मे आत्मविश्वास की भावना प्रबल होई है जो ऑगनबॉड़ी कार्यकत्री बनने से पूर्ण नही थी, वही 06 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रि ऐसी है जिनमे आज भी आत्मविश्वास की भवना का उदय उचित ढ़ग से नही हो पाया है।

तालिक संख्या – 06 समाज से मान–सम्मान प्राप्त होना

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हॉ	49	96
नहीं	02	04
योग	51	100

तालिका संख्या– 06 के तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 96 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रियों को ऑगनबॉड़ी कार्यक्रम से जुडने के बाद समाज मे पहले की अपेक्षा अब ज्यादा मान–सम्मान प्राप्त हो रहा है।

तालिक संख्या – 07 अपने अधिकारो के प्रति जागरुक होना

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हॉ	46	90
नहीं	05	10
योग	51	100

तालिका संख्या– 07 के तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 90 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रिया अपने अधिकारों के प्रति जागरुक है, वही 10 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रिया अपने अधिकारों के प्रति जागरुक नही है।

तालिक संख्या – 08 कार्यकत्री को घरेलू महिलाओं कि तुलना में अधिक महत्व

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
हॉ	48	94
नहीं	03	06
योग	51	100

तालिका संख्या– 08 के तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 94 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्री ने यह तथ्य स्वीकार किया है कि उन्हे घरेलू महिलाओं कि तुलना मे अधिक महत्व दिया जाता है, जबकि 06 प्रतिशत महिला ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रिया यह मानती है कि घरेलू महिलाओं को भी उन्ही के समान महत्व दिया जाता है।

तालिक संख्या – 09 कार्यकत्री की सामाजिक कार्यो मे सहभागिता

प्रत्युत्तर	आवृत्ति	प्रतिशत
बहुत कम	41	80
बढ़चढ़कर	02	04
बिल्कुल नही	08	16
योग	51	100

तालिका संख्या– 09 के तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 80 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रियों ने बतलाया कि कार्य का अत्यधिक बोध होने के कारण वे सामाजिक कार्यो मे सहभागिता बहुत ही कम कर पाती है, वही 04 प्रतिशत प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रियों तथा 16 प्रतिशत ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रिया सामाजिक कार्यो मे सहभागिता बिल्कुल भी नही कर पाती है।

निष्कर्ष – उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर स्पष्ट है कि अधिकांश ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रिया एकांकी परिवार मे रहती है, वह आत्मनिर्भर तथा अपनी कमाई को खर्च करने मे स्वतन्त्र भी है, उनको पारिवारिक निर्णयों मे भी मान्यता दी जाती हैं। अध्ययन मे यह तथ्य प्रकट हुआ कि ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रिया पारिवारिक दायित्वों जिनमें घर कार्य, पशुपालन, कृषि कार्य आदि शामिल है का उचित ढ़ग से निर्वाह कर रही है। ऑगनबॉड़ी कार्यकत्रि बनने के उपरान्त उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति मे भी सकारात्मक सुधार देखने को मिलता है। पहले जहां उनमे आत्मविश्वास की कमी देखने को मिलती थी वही आज वे महिलाए आत्मविश्वास की भावना से परिपूर्ण है, उन्हें समाज मे मान–सम्मान प्राप्त हो रहा है, अब वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो रही है परन्तु उनका कार्यभार मे बढोतरी के चलते वे सामाजिक कार्यो मे सहभागिता नही कर पाती है। शोध से यह ज्ञात हुआ कि ऑगनबॉड़ी कार्यकत्री महिलाओं की सामाजिक,आर्थिक प्रस्थिति पूर्व की अपेक्षा अब अधिक सुदृढ़ हुयी है।

संदर्भ गंथ सूची

1. *सिंह, राकेश, 2014 'ऑगनबाड़ी कार्यक्रम; एक प्रवेशिका' सर्वोदय इंक्लेव, नई दिल्ली, पृष्ठ सं..20*
2. *भारती, निशा, 2013 ''भारत में स्वास्थ्य का समाजशास्त्र'', अहा जिदंगी समपूर्ण स्वास्थ्य महाविशेषांक, वर्ष 9, पृष्ठ सं. 33*
3. *मिश्र, निमिशा, ''समाज मे महिलाओं की स्थिति'' सत्साहित्य प्रकाशन, 205 बी चावडी बजार दिल्ली–11000*

राजस्थान में जैन सन्तों द्वारा स्त्री शिक्षा के विकास में योगदान

डॉ. सुनिता टांक
व्याख्याता, दयानन्द आर्य बालिका महाविद्यालय, ब्यावर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

नारी ने सदा ही अपनी विद्वता और संस्कृतियों के लिए प्रसिद्धी और यश प्राप्त किया है। सुशिक्षित, सुसंस्कृत नारी ने ही देश को कई मानव रत्न दिये है। अतः किसी देश की नागरिक होने के नाते शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक स्त्री का मूल अधिकार है जो देश की प्रगति, उन्नति एवं विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। मध्यकालीन समाज में स्त्री शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ा। तत्कालीन भारतीय समाज में महिलाओं से सम्बन्धित अनेक सामाजिक कुरीतियाँ विद्यमान हुई जिससे समाज में स्त्रियों की स्थिति काफी शोचनीय होती गई जिसका प्रभाव स्त्रियों की शिक्षा पर भी पड़ा स्त्रियां मात्र घर की चार दीवारी तक सीमित होकर रह गई। ऐसी स्थिति में भी जैन धर्म में स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया जैन धर्म सदा स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिलाने के पक्ष में रहा तथा मध्यकाल में रचनात्मक कार्यों में स्त्री शिक्षा के प्रचार का कार्य किया व स्त्री शिक्षा के प्रोत्साहन का कार्य भी किया। कई पाठशालाओं, कन्याशालाओं आदि शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करवाई जिसमें संकुचित विचारधाराओं के मध्य एक नवीन स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला कार्य सिद्ध हुआ।

संकेताक्षर : *सनातन धर्म, धर्मशास्त्र, आर्दशवाद, स्त्री शिक्षा, श्रमणी संघ, साध्वी, भिक्षुणी, कन्याशाला, पाठशाला, धर्मावलम्बी, गुरुकुल, जनसेवा।*

समाज के विकास में पुरुष एवं महिला दोनों का समान रुप से योगदान रहा है। रामायण काल में राम को भी राजसूर्य यज्ञ करने के लिए सीता के अभाव में सोने की सीता बनवानी पड़ी थी वह भौतिक और दैविक सम्पदा की स्वामिनी थी। महिलाओं ने मर्यादा की अक्षांस रेखा का उल्लंघन नहीं किया विदुषी गार्गी, मैत्री, श्रद्धा के उदाहरण हमें स्फूर्ति प्रदान करते है।[1] नारी की समाज को मुख्य देन प्रेरणा है वह मनुष्य की चेतना है बुद्धि है। वहीं क्रांति की अग्नि भड़काती है। वहीं शांति के शीतल जल में उसे शांत करती है। स्त्री ही अपनी दया, माया, ममता और प्रेम से जीवन को सरस और अमृत तुल्य बनाती है। वह नर की खानि नृसिंह की जननी और आदि शक्ति की भूतल पर प्रतीक है। पुरुष उसके साथ सम्पन्न होकर ही पूर्णता प्राप्त करना है।[2]

कन्यका, प्रेमसी और माता के रुप में वह वंदनीय है और सभी अपने बुद्धि बल और चातुर्य से उसने समाज को दृढ़ और सुसंगठित बनाया है। उसके उपकार अनगिनत है। वह भारत की विकसित परम्परा पर ही अनंत काल तक चलती रहे। नारी आदर्शवाद और यथार्थवाद युक्तवाद और परम्परा का विचित्र मिश्रण है।[3] युगांतकारी परिवर्तनों में भी हमारी सनातन संस्कृति को अक्षत और अक्षुष्ण बनाये रखा है।

पौराणिक काल में स्त्री का स्थान उच्च था। समाज पर उसके पति व्रत की धाक थी वह जीवन की महाशक्ति थी। सावित्री उसी बल के आधार पर अपने पति सत्यवान को यमराज के पास से छुड़ा लाई। सीता नारी का आदर्श है। असह्य विपत्तियों में फंसने पर भी राम उसके रोम–रोम में रम गये है। राम के प्रति उसकी निष्ठा अगाध है। मध्ययुग में आततायियों से अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए राजपूत ललनाए जौहर की आग में सहर्ष अपने को भस्मीभूत कर देती थी।[4]

मध्य युग में भी नारी अन्तःपुर में ही राज्य नहीं करती बल्कि वह राज काज में भी भाग लेती रही। रजिया ने

शासनारुढ़ होकर दिल्ली सल्तनत की बागडोर अपने हाथ में ली, नूरजहाँ ने अपने पति जहांगीर की राज व्यवस्था संभाली। भास्कराचार्य की पत्नि लीलावती ने गणित विज्ञान पर अपनी मुहर लगाई।[5]

जैन धर्म और स्त्री दशा में सुधार

प्रत्येक धर्म में नारी दशा में सुधार को विशेष महत्व दिया गया है। चाहे वो प्राचीन वैदिक धर्म, यहूदी, इस्लाम, बौद्ध अथवा सनातन धर्म सभी ने नारी की दशा व दिशा में सुधार, संरक्षण एवं परिवर्धन की विशिष्टता को स्वीकार कर समाज के मजबूत स्तंभ महिला के विकास की गति को बढ़ाने का प्रयास किया मध्यकाल की अनेक परम्पराओं, रीति-रिवाजों ने नारी के विकास के रथ में अनेक रोड़े अटकाये पर समाज सुधारकों यथा जैन संतों के अथक प्रयासों से नारी के विकास को गति मिली।

ब्राह्मण परम्परा में नारी को कोई स्थान नहीं था वह न तो धर्मशास्त्र पढ़ सकती थी और न सुन सकती थी तथा गत बुद्ध ने नारी को धर्मशास्त्र पढ़ने सुनने का अधिकार दिया उसे भी पुरुष के समान माना पर संघ में प्रवेश को हिचकते रहे बाद में महा प्रजापति गौतमी को संघ में प्रवेश दिया। आनंद के कहने पर आम्रपालि को भिक्षुणी बना लिया। परन्तु बुद्ध इस बात से प्रसन्न नहीं थे।

उल्लेखनीय है कि जैन परम्परा में प्रारम्भ से ही नारी का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ऋषभदेव के समय से ही श्रमणी संघ अस्तित्व में रहा। तीर्थ के अंदर श्रमण और श्रावक वर्ग के समान श्रमणी और श्राविका वर्ग के अधिकार दिया। ऋषभदेव के युग में सुन्दरी और ब्रह्मी के नेतृत्व में तीन लाख श्रमणिया धर्म प्रचार में संलग्न थी।जैन धर्म में उन्नीसवें तीर्थंकर मल्ली स्वंय नारी थी और महासती बन्धुमति के नेतृत्व में पचास हजार से अधिक साध्वियां विचरण करती थी। अरिष्टनेमी के शासन में महासति यक्षिणी के नेतृत्व में चालीस हजार साध्वियां धर्म प्रचार एवं समाज सुधार में संलग्न थी। महावीर के युग में चंदन बाला के नेतृत्व में छतीस हजार साध्वियों धर्म प्रचार में लीन थी। बौद्ध भिक्षुणियों की सुरक्षा का प्रश्न सदैव रहा पर जैन श्रमणी वर्ग के लिए ऐसा नहीं था। समाज में उनके प्रति अपार श्रद्धा थी।[6] कुछ प्रमुख जैन संत आचार्य जयमल्ल जी, संत रघुनाथ जी, भूधर जी, आचार्य सोमकीर्ति, भट्टारक ज्ञान भूषण इत्यादि द्वारा स्त्री शिक्षा एवं दशा सुधार हेतु सुदृढ़ प्रयास किये गये।

जैन धर्म सदा स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिलाने का पक्षधर रहा है। प्राचीनकाल में स्त्रियों को दीक्षा देने के विषय में भगवान बुद्ध को भी डर था, किन्तु महावीर स्वामी इस बात में निर्भय थे। महावीर स्वामी के जीवनकाल में ही लाखों स्त्री सन्यासिनियां पुरुषों की तरह धर्मप्रचार में संलग्न थी। जो चार संघ थे उनमें मुनि श्रमण और साध्वी श्रमण कहे जाते थे और श्रावक श्राविका गृहस्थाश्रम में रहकर धर्मकार्य करते थे। उसी प्रकार मध्यकाल में भी श्रमणिकाएं धर्म प्रचार करती थी। इनका कर्तव्य था कि गृहस्थ जैनों के घरों में जाएं और चेष्टा करे कि जैन स्त्री, वधू, कन्या को उचित शिक्षा तथा उपदेश मिले। कन्या शिक्षा के लिए वे बहुत प्रयत्नशील रहती थी। जैन स्त्री यतियों का यह कार्य सब धर्मावलम्बियों के लिए अनुकरणीय है।[7] इस प्रकार मध्यकाल में स्त्री शिक्षा को घरों में प्रारम्भ करने की एक अनूठी पहल थी। इस कार्य का ऐसा उदाहरण देखने को अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।

जैन सन्तों के रचनात्मक कार्यो में सबसे उपयोगी, लाभदायक, दूरदर्शितापूर्ण और समाज में नवीन जाग्रति व स्फूर्ति उत्पन्न करने वाला कार्य शिक्षा का प्रचार है। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि मध्यकाल में शिक्षा की उपेक्षा कर समाज की गति नहीं और समाज के उत्कर्ष के अभाव में धर्म का प्रवाह भी रुक जाता है अतः उन्होंने धर्म प्रचार के साथ-साथ अपने उपासरो में ही शिक्षण कार्य जारी रखा तथा स्त्री शिक्षा को भी प्रोत्साहन दिया। अतः भिन्न-भिन्न प्रांतों में जहां-जहां भी भ्रमण के लिए जाते अपने उपासरों के माध्यम से पाठशालाओं कन्याशालाओं आदि शिक्षण संस्थाओं की श्रमण वर्ग द्वारा स्थापनाएं करवाई। जैन संतो की इसी दूरदर्शिता का ही परिणाम है कि वर्तमान में सैकड़ो जैन नवयुवक विद्यालय, जैन गुरुकुल संस्थाएं, जैन कॉलेज, जैन विद्यालय व अनेक हाई स्कूल, गुरुकुल, विद्यालय, कन्या-पाठशालाएं आदि जैन समाज के गौरव व जनसेवा के प्रतीक है।[8]

मध्यकालीन राजस्थान में संस्कृत साहित्य द्वारा शिक्षा के प्रचार-प्रसार में जैन विद्वानों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने केवल जैन ग्रन्थ ही नहीं लिखे अपितु उनके प्रचार एवं प्रसार व सुरक्षा की पृष्ठभूमि भी तैयार की। जिस प्रकार राजस्थान के राजाओं द्वारा राज्य के ग्रन्थ भण्डारों को साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र बना दिया गया था, उसी प्रकार मध्यकालीन जैन आचार्यो ने

भी मन्दिरों व उपासरों में जैन ग्रन्थ भण्डारों की स्थापना कर उन्हें संस्कृत शिक्षा व लेखन का केन्द्र बना दिया था। इन ग्रन्थ भण्डारों में नये ग्रन्थ लिखे जाते थे, पुराने ग्रन्थों की प्रतिलिपियां तैयार की जाती थी तथा दूर-दूर से महत्वपूर्ण ग्रन्थों को लाकर पुस्तकालय को विकसित किया जाता था ताकि शिक्षार्थियों को शिक्षा अर्जन कराने में बाधा उपलब्ध ना हो और लेखकों को एक ही स्थान पर संदर्भ ग्रन्थ उपलब्ध हो जाए।

जन समुदाय में संस्कृत भाषा के प्रसार के लिए जैनाचार्यों ने इन ग्रन्थ भण्डारों में शिक्षा केन्द्र खोल दिये थे, जिनमें बच्चों को प्रारंभ से ही संस्कृत और प्राकृत पढ़ाई जाती थी। शिक्षा केन्द्रों में जैन-अजैन की रचनाओं का भेद नहीं किया जाता था। इस क्षैत्र में हेमचन्द्र, भट्टारक शुभचन्द्र, प्रभाचन्द्र, ज्ञानभूषण आदि जैन दिगम्बर आचार्यों का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इनके सानिध्य में सौ-सौ छात्र रहकर संस्कृत सीखते थे। संस्कृत शिक्षा के प्रचार में उन श्रावको का योगदान भी सराहनीय है जो आचार्यों और शिष्यों को सैंकड़ो ग्रन्थों की प्रतिलिपि करा कर भेंट करते थे। ताकि उनका अध्ययन शिक्षा केन्द्रों में निर्विहन सम्पन्न हो सके।[9]

इसी तरह राजस्थान में राजस्थानी जैन कथाओं द्वारा भी जैन साधु सन्तों ने मनोरंजन के द्वारा शिक्षा प्रसार का प्रयास किया करते थे। दूसरी और धार्मिक साधना का प्रचार-प्रसार करके मानव की दुष्प्रवृतियों के नाश के लिए जो उपाय किये वो प्रेरक है। इन जैन कथाओं में धर्म की सर्वत्र प्रमुखता है धार्मिक सिद्धान्त बड़े गूढ़ होते है जो साधारण जनता की समझ में सुगमता से नहीं आ पाते। अतः विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण करते हुए इन संत साधुओं ने जनता की इस कमजोरी को पहचाना और प्रचलित रुढ़ियों के सहारे कई रोचक कथाओं की यथावसर सृष्टि की तथा गहन सिद्धान्तों को बड़ी सरलता से बोधगम्य बनाया। इन कथाओं के माध्यम से जैनाचार्यों ने साधारण जनता में शिक्षा के प्रचार व समाज में शिक्षा की आवश्यकता को उदघाटित कर उसके प्रशस्त मानवीय स्वरुप को चित्रित किया। कई कथाकारों ने नारी शिक्षा की आवश्यकता तथा नारी की सहज प्रवृतियों को भी चित्रित किया।[10]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *श्री बृजमोहनलाल – नारी शिक्षा साधना के स्वर्णिम सोपान पृ. सं. 69, दिगम्बर जैन आर्दश महिला संस्कृत स्नातकोतर महाविद्यालय, श्री महावीर जी 2003*
2. *श्री बृजमोहनलाल – नारी शिक्षा साधना के स्वर्णिम सोपान पृ. सं. 69, दिगम्बर जैन आर्दश महिला संस्कृत स्नातकोतर महाविद्यालय, श्री महावीर जी 2003*
3. *श्री बृजमोहनलाल – नारी शिक्षा साधना के स्वर्णिम सोपान पृ. सं. 69, दिगम्बर जैन आर्दश महिला संस्कृत स्नातकोतर महाविद्यालय, श्री महावीर जी 2003*
4. *श्री बृजमोहनलाल – नारी शिक्षा साधना के स्वर्णिम सोपान पृ. सं. 69, दिगम्बर जैन आर्दश महिला संस्कृत स्नातकोतर महाविद्यालय, श्री महावीर जी 2003*
5. *दिनेश, नंदिनी – श्री रत्न मुनि स्मृति ग्रंथ पृ. सं. डालिमया257, गुरुदेव स्मृति ग्रंथ समिति, लोहामंडी आगरा, 1964*
6. *श्री चंद्र सुराना (सरस)– मुनिद्रय अभिनन्दन ग्रंथ, पृ. सं. 280, मुनि अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशन समिति ब्यावर 1973*
7. *अगरचंद नाहटा – राजेन्द्र सूरी स्मारक ग्रंथ, दौलतसिंह लोढ़ा पृ. सं. 330, सौधर्म वृहतपागच्छीय जैन श्वेताम्बर श्री संघ आहोर बागरा (मारवाड़ राज.) 1957*
8. *विजयवल्लभ सूरी – विजयवल्लभ सूरी स्मारक ग्रंथ, पृ. सं. 7, खण्ड-2, महावीर जैन ग्रंथालय बोम्बे-26, 1956*
9. *डॉ. नरेन्द्र भानावत -जिनवाणी (जैन संस्कृति और राजस्थान) पृ. सं. 233, सम्यक ज्ञान प्रचारक मण्डल जयपुर, 1975*
10. *डॉ. नरेन्द्र भानावत -जिनवाणी (जैन संस्कृति और राजस्थान) पृ. सं. 233, सम्यक ज्ञान प्रचारक मण्डल जयपुर, 1975*

प्रेमचन्द के कथा साहित्य में दलित–चेतना

डॉ. हरिकेश मीना
सह आचार्य, राजकीय कन्या महाविद्यालय, करौली

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

दलित चेतना एक सांस्कृतिक चेतना ही नही बल्कि एक वैकल्पिक चेतना है। इसलिए इसे विद्रोही चेतना भी कह सकते है। दलित चेंतना की जड़ में भारतीय सामाजिक संरचना है जो न सिर्फ जाति पर आधारित है बल्कि इसे धार्मिक वैधता भी प्रदान करती है। भारत में जाति –व्यवस्था सामाजिक दुराव के सिद्धान्त पर कार्य करती है। यह हमारे सामाजिक सम्बंधो को ही नहीं बल्कि धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को भी प्रभावित करती है। यह गुलामी की व्यवस्था आज से नही बल्कि सदियों से चली आ रही है। हिन्दू समाज में यह व्यवस्था प्रारम्भ से ही धर्म प्रधान रही है। व्यवहारिक स्तर पर हिन्दुत्व की जो अवधारणा आम आदमी तक पहुचती है। वह बहुत हद तक जातीय आधार, व्यावहार और संस्कारों से परिसीमित रहती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर आज भी यह स्थिति जस की तस बनी हुई है बदलाव के बावजूद दलित वर्ग को अपनी मूलभूत सुविधाओं से वंचित रखने के प्रयास आज भी जारी हैं। दलित चिंतन की अलख जगाने का श्रेय निर्विवाद रूप से डॉ अम्बेडकर को ही जाता है। यह चेतना हमें साहित्य और राजनीति दोनों क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। महात्मा बुद्व के बाद वे पहले व्यक्ति थे जिन्होने वर्ण व्यवस्था के कुचक्रों में पिसते हुए दलितों को जागरुक करने का प्रयास किया और उसे उखाड फेकने में अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया।

संकेताक्षर : *दलित, सामन्त, हिन्दू समाज, स्त्री विमर्श, आर्थिक शोषण, शिक्षा।*

हिन्दी साहित्य में दलित चेतना की शुरूआत नवें दशक के अंतिम वर्षो में हुई हिन्दी से पहले मराठी में सबसे पहले इस आन्दोलन की शुरूआत मानी जाती है। प्रेमचन्द द्वारा लिखे गये गोदान (1936) में कृषि –संस्कृति तथा दुर्दशा के बहाने सामन्ती शोषण एवं जाति दंश को गहरी संवेदना एवं अनुभूति के साथ उभारा है। प्रमुख समालोचक डॉ. गोपालराय ने लिखा है। ‘‘प्रेमचन्द महान हैं। इस पर व्यापक सहमति से इनकार नहीं किया जा सकता पर वे महान क्यों है ? यह जरूर जानने का विषय हैं। व्यक्ति के रूप मे उनकी साधारणता निर्विवाद है। एक सााधारण मध्यम वर्गीय परिवार में पैदा हुआ आदमी महज चौवन वर्ष की उम्र में कुछ उपन्यास, कहानी लिखकर जीवन भर संघर्ष करते रह कर भी औसत मध्यम वर्ग की सरहदों में ही काल ग्रस्त हो जाये इससे अधिक साधारण बात हो ही नही सकती। एक कथा लेखक के रूप में उन्हें अधिकतर समकालीन आलोचक की उपेक्षा ही मिली।

प्रेमचन्द व्यक्ति के रूप में चाहें जितने साधारण रहे हों लेकिन कथाकार के रूप में वे इतने बड़ें थें कि उनका समय उन्हें समझने की कसौटी ही निर्मित नही कर पाया। वे उस सामान्य जन की मूल व्यथा और मौन – मुखर विद्रोह को अभिव्यक्ती दे रहे थे जो औपनिवेशिक शासन और सामन्ती महाजनी व्यवस्था के क्रूर, शोषण –दमन के साये में सांस ले रही था । लेखक के रूप में वें अपने समय के अपवाद थे। अपने समय से उपर अपने समय की समझ से बाहर एक महान कथाकार की यही पहचान होती है। जिसके लिए हिन्दी साहित्य आजीवन ऋणी रहेगा।[1]

प्रेमचन्द ने कथा साहित्य के माध्यम से जाँत–पाँत, छूआछूत, उँच–नीच की भावना पर अपनी कलम से तीव्र प्रहार

किया है। ये भावनाएँ संक्रामक रोग की तरह समस्त हिन्दू समाज की जड़ों को खोखला कर रही थीं, वे मानते थे कि अनपढ़ ग्रामीण स्त्री–पुरूष तो इस छूत के शिकार थे ही पर पढे लिखे लोग भी उससे ग्रसित थे। प्रेमचन्द ने इन संकीर्ण विचारों, सोच को जड़ से उखाडने का काम किया। मानवता के बीच जाँत–पाँत की ये संकीर्ण दीवारे उन्हें अमानवीयता की हदे पार करती लगी। साधारण जनता को पतन के गर्त से बाहर निकालने का प्रयास किया था। प्रेमचन्द के समय में दलित – विमर्श और स्त्री विमर्श की सोच भी किसी के मानस पटल पर शायद ही रही, उन दिनों प्रेमचन्द ने अपने कथा साहित्य को न सिर्फ विषय बनाया ,बल्कि सामंती – महाजनी शोषण के विरूद्ध मौन–मुखर विद्रोह का झण्डा बुलंद कर उनके हक के प्रति सचेत व जागरूक किया। प्रेमचन्द सदियों से पद दलित और अपमानित कृषकों की आवज बने थें परदे में कैद, लांछित और अपमानित, असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त हिमायती थें।[2]

दलित चेतना की दृष्टि से प्रेमचन्द की प्रमुख कहानी ''ठाकुर का कुआँ'' ''दूध का दाम'', और ''सद्गति'' है। ''ठाकुर का कुआँ'', एवं ''सद्गति'' पर डॉ. अम्बेडकर का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। ये दोनो कहानियाँ दलित –विमर्श व दलित चेतना की प्रमुख कहानियाँ है। इन कहानियों में प्रेमचन्द समाज सुधार के हृदय परिवर्तन से मुक्त होने की कोशिश करते है। ''ठाकुर का कुआँ'', कहानी में दलित पीडा को प्रमुखता से उभारा है। कहानी का पात्र ''जोखू कहता है'' हाथ–पॉव तुड़वा आएगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्राहमण देवता आशीर्वाद देगें ठाकुर लाठी मारेंगे, साहू जी एक के पाँच लेगें, गरीबों का दर्द कौन समझता है हम तो मर भी जाते हैं तो कोई दुआऐं मांगने नही आता, कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुऐं से पानी भरने देगें।[3]

इस कहानी में प्रेमचन्द गंगी के माध्यम से जात–पाँत, उँच–नीच में जकड़े हुए आम आदमी की पीड़ा का चित्रण इस प्रकार करते हैं ''हम क्यो नीच हैं, और ये लोग क्यो उँचे है ? इसलिए की लोग गले में तागा डाल लेते हैं। यहाँ तो जितने भी है एक से एक छँटे हैं, चोरी ये करें,जाल–फरेब ये करे झूठें मुकदमें ये करें। अभी इस ठाकुर ने उस दिन बेचारे गडरियें की एक भेड चुरा ली थी और बाद में मार कर खा गया। इन्ही पंडित जी के घर में वर्ष भर जुआ होता है। यही साहुजी तो घी में तेल मिला कर बेचते हैं दाम पूरे का लेते है। मजदूरी देने में नानी मरती है। किस बात में उँचे है।[4] भारतीय समाज में जातिवाद की जकड़न इतनी गहरी है कि इसे आज तक नही तोडा जा सका, इसी व्यवस्था के कुचक्र में फँसे आम आदमी बाहर निकलने के लिए छटपटाते रहते हैं। ''दूध का दाम'' कहानी में प्रेमचन्द ने मंगल के माध्यम से दलित चेतना की अभिव्यक्ति को प्रमुखता से चित्रित किया है। खेल खेल में बच्चो का संवाद इस कहानी में दलित चेतना को किस तरह स्थापित करता हैः– ''सुरेश ने पूछा क्यों रे मंगल खेलेगा, ? मंगल बोला ना भैया, कहीं मालिक देख लें तो मेरी चमड़ी उधेड़ दी जाएगी' तुम्हें क्या तुम तो अलग हो जाआगे। सुरेश ने कहा, तो यहॉ देखने कौन आता है। चल हम लोग सवार–सवार खेलेगें, तू घोडा बनेगा, हम लोग तेरे उपर सवारी करके दौडाएंगे। ''इसी कहानी में मंगल शंका करते हुए कहता है मैं बराबर घोड़ा ही रहूँगा कि सवारी भी करूंगा, यह बता दो। यह प्रश्न टेड़ा था। किसी ने इस पर विचार नही किया था, सुरेश ने एक क्षण सोच् कर कहा, तुझे कौन पीठ पर बिठाएगा, सोच। आखिर तू भंगी है कि नही ? जाँत–पाँत, उँच–नीच की इस खोखली व्यवस्था में दबे कुचले, आम आदमी को इसकी कैद से मुक्त करने का साहस प्रेमचन्द ही कर सकते थे।

''दूध का दाम'' कहानी में प्रेमचन्द ने निम्न जाति का पात्र मंगल अपने दोस्तों से कहता ''मै कब कहता हूँ की मैं भंगी नही हूँ लेकिन मेरी माँ ने ही दूध पिलाकर पाला है। जब तक मुझे सवारी करने को नही मिलेंगी, मै घोडा न बनूँगा।, तुम लोग चघड़ हो, आप तो मजे से सवारी करोगे और मै घोडा ही बनूगा। सदियों से लेकर आज तक दलित सिर्फ सेवा ही करता रहेगा। उसे अधिकारों की मॉग करने का हक नही है। प्रेमचन्द इसी व्यवस्था की जड़ों को उखाड़ फेंकने का काम करते है। इन कहानियों में प्रेमचन्द की दलित के प्रति धारणा स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है हम कह सकते हैं कि दलित चेतना व दलितों पर अम्बेड़कर का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

इसमें कोइ दो राय नहीं है कि प्रेमचन्द ने हिन्दी साहित्य में सबसे पहले दलित चिंतन को अपने साहित्य में स्थान प्रदान किया। उनकी कहानियों एवं उपन्यासों में यह चिन्तन स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। इनकी प्रसिद्ध कहानी 'सद्गति' जो उत्कृष्ट कहानी के रूप में गिनी जाती है। आदर्शोन्मुख यर्थाथ से आगे बढ़ कर

भारतीय गाँव के सामंती महाजनी ढ़ाँचे की नग्नता को चित्रित करती है, जिसमें पाखण्डों, आडम्बरों के सामने' दुःखी, चुपचाप अपने को मर मिटने देता है। कोई शिकायत शिकवा तक नही करता है। भीषण अमानवीय भय और अमंगल की आशंका पर आधारित व्यवस्थाओं से हताश होकर वह चुपचाप अपने प्राणों की बलि चढा देता है। उसके मरने पर कुछ नही होता,कोई फुसफसाहट कोई उसके बारे में सोचता नहीं, यह घोर अमानवीय, नैराश्य की कहानी है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में दलित चेतना को प्रमुखता से जगह दी है। गोदान, कर्मभूमि, रंगभूमि, प्रतिज्ञा आदि उपन्यासों में प्रेमचन्द दलितों की सभी सम्स्याओं को उभारने का प्रयास किया है।

रंगभूमि उपन्यास में दलित समस्या को चित्रित करते हुए उन्होने सूरदास की मूर्ति की स्थापना करवाई ,उस समय सभी वर्ण, धर्म तथा जातियों के लोग एक साथ बैठकर खाना खाते है। प्रेमचन्द लिखते है ''सन्ध्या समय प्रीतिभोज हुअ, छूत और अछूत एक साथ बैठकर एक ही पंक्ति में खाना खा रहे थे। यह सूरदास की सबसे बडी विजय थी[5] 'प्रतिज्ञा उपन्यास में जब अमृतराय यह प्रतिज्ञा करता है कि ''वह किसी विधवा से शादी करेगा, तब कमला प्रसाद अपनी संकीर्ण मानसिकता का परिचय देते हुए कहता है' ''रहेगी बिरादरी की ही विधवा। न कि बिरादरी की भी कैद न रही।[6]'' प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में इन संकीर्ण मनोवृत्तियों के धार्मिक पहलुओं पर भी प्रकाश डाला है उन्होने अपने कथा साहित्य में यह कोशिश अवश्य की है कि सभी मनुष्य जाँति–पाँत, उँच–नीच, छूत–अछूत के भेदभाव को भूल कर मानवीयता के साथ एक सूत्र में बँध जाये।

'प्रेमन्द ने ''प्रेमाश्रम'' उपन्यास में छूत–अछूत' की संक्रामकता पर विचार करते हैं और मिथ्या आड़म्बरों का विरोध करवाते हुए उपन्यास के प्रमुख पात्र प्रेमशंकर से कहलवाते हैं ''पर खेद है कि तुम इतने विचारशील हो कर बिरादरी के गुलाम बने हुए हो। शिक्षा का फल होना चाहिए कि तुम बिरादरी के सूत्रधार बनों उसको सुधारने का प्रयास करों न की उसके दबाब में आकर अपने सिद्धान्तों का बलिदान कर दों।''[7]

यहॉ पर प्रेमचन्द ने पढ़े–लिखे स्वंय को शिक्षित मानते हैं, लोगो को संदेश दिया है कि तुम संस्कारों के गुलाम मत बनों, बल्कि उसके सूत्रधार बन कर सुधारने की कोशिश करनी चाहिए, इसी में समाज का तथा देश का विकास संभव है। प्रेमचन्द मानते थे दलितों की दुर्दशा का सबसे बडा कारण उनका अशिक्षित होना, आर्थिक शोषण है। इन शोषकों ने इनकी दशा इतनी दयनीय कर दी थी कि रात –दिन बैलो की तरह जुते रहने पर भी दो वक्त की रोटी नसीब नही होती, इसके पीछे सबसे बड़ा कारण अशिक्षा। शिक्षा के प्रचार –प्रसार से दलितों में व्याप्त बुराइयों उनके आर्थिक शोषण से मुक्ति मिल सकती है। दलित जितने शिक्षित होंगें आर्थिक विषमता की बेडियों को तोडने में कामयाब एवं अपने अधिकारों के लिए जागरुक होगें।प्रेमचन्द ने दलितों के प्रति गहरी सहानुभूति, संवेदना दिखाई है। दूसरी तरफ उनकी कमजोरियों की तरफ भी स्पष्ट संकेत किया है' कर्मभूमि उपन्यास में प्रेमचन्द ने दलित जीवन की यथार्थ कथा को प्रस्तुत किया है। वे मानते थे कि शिक्षा के प्रसार के कारण ही दलितों की सामाजिक स्थिति, सामाजिक स्तर को उँचा उठाया जा सकता है, अशिक्षा, आर्थिक विषमता के कारण उनमें व्याप्त बुराइयों को दूर किया जाकर उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है।

कथा सम्राट प्रेमचन्द ने कथा –साहित्य में दलितो को शोषित वर्ग के रूप में ही प्रस्तुत नहीं किया है वरन इनमें भी अपने अधिकारों के प्रति चेतना व्याप्त है। और ये भी अपने अधिकारों के लिए विरोध प्रकट करते हैं। ''कर्मभूमि उपन्यास में गूदड़ इसका प्रतिनिधित्व करते हुए कहता है।'' भगवान ने छोटे बड़े का भेद क्यों लगा दिया, इसका मरम समझ में नही आता उसके तो सभी लड़के है फिर सबको एक ऑख से नही देखता ? फिर पयाग कहता है पूरब जनम का संस्कार है, जिसने जैसे करम किए हैं वैसे फल पा रहा है। लेकिन प्रेमचन्द पूर्व जन्म के संस्कारों में विश्वास नही करते। बेचारे दलित क्या जानते हैं, ये सब बेड़ियॉ उनके लिए उच्च वर्ग के द्वारा बनाई गई हैं। पूर्व जन्म के इसी विश्वास को प्रेमचन्द मूर्त रूप देने के लिए गूदड चौधरी से कहलवाते हैं ''यह सब मन को समझाने की बातें हैंबेटा जिससे गरीबों की दशा पर संतोष रहे और अमीरों के भोग विलास में कोई बाधा न पहुँचे, गरीब समझता है भगवान ने हमको गरीब बना दिया, आदमी का क्या दोष, पर यह कोई न्याय नही है। हमारे बाल बच्चे तक काम में लगे रहें और भरपेट भोजन तक नसीब न हों और एक एक अफसर को दस–दस हजार की तलब मिले[8] कितनी बडी बिडम्बना है एक तरफ तो भूखे प्यासे लोग जो हाड तोड मेहनत करने के बाद भी पेट

भर भोजन नही मिलता और एक तरफ मुफ्त का खाने वाले लोग है।

प्रेमचन्द ने अपने कथा साहित्य में दलितों की स्थिति, उन पर किये जाने वाले अत्याचारों, सामाजिक व्यवस्था की जकड़न में पिसते हुए उनकी समस्याओं पर लेखनी चलाकर एक साहसिक कार्य किया। ''गोदान'' में तो उन्होने कृषक वर्ग की समस्या, ऋण समस्या, विधवा विवाह, महाजनी सभ्यता के द्वारा किये जाने वाले शोषण के खिलाफ आक्रोश व्यक्त किया है । होरी की समस्या न केवल होरी की है बल्कि पूरे भारत के किसान की समस्या है। मातादीन, दातादीन, सहुआयन, रायसाहब जैसे लोग किस प्रकार भगवान का भय दिखाकर झूठी हमदर्दी दिखाकर किस प्रकार उनका शोषण करते हैं।

''गोदान का नायक होरी महज तीन बीघा जमीन का मालिक है जिसमें आधी उपज बीज देने वाले दातादीन को देनी पडती है। दलित होने के नाते न तो होरी और उसके परिवार को सम्मानजनक ढंग से जीवन जीने का हक है, न अच्छा खाने का और न ही अच्छा पहनने का। उच्च वर्ग कदम–कदम पर उसका शोषण करता है, मगर कभी धर्म, परम्परा, रूढ़ि–कुरूति का भय दिखा कर, तो कभी बहला–फुसलाकर जब अपना स्वार्थ हो तो किस प्रकार उच्च वर्ग के लोग अपना काम निकालने के लिए झूठी हमदर्दी दिखाते है। जब स्वार्थ साधना हो तो होरी दातादीन जैसे ब्राहमण को भी अपने परिवार का सदस्य नजर आता है। वह होरी को पुचकारते हुए कहता है'' तुम शुद्र हो तो क्या हुआ हम ब्राहमण हुए तो क्या। है तो सब एक ही परिवार के''[9]

''गोदान'' तो दलितों की समस्याओं के उपर लिखा गया प्रेमचन्द का प्रमुख उपन्यास है। गोदान में जगह–जगह दलितो के क्रान्तिकारी कदमों की आहट सुनाई देती है, यादवों के विरोध के बावजूद झुनियॉ को बहू के रूप में स्वीकार करने का होरी धनिया का निर्णय तमाम संकटों, परेशानियों का सामना करते हुए झुनिया को परिवार का प्यार देना। गोबर तो आज की पीढी का नौजवान है, जो शोषण व अन्याय के खिलाफ विद्रोह करता हैऔर किसी से नही डरता है। गोबर को हम आज की पीढ़ी का शोषण के खिलाफ, आक्रोश व्यक्त करने वाला प्रेमचन्द के क्रान्तिकारी विचारो का पोषक ही दिखाई देता है। ब्राह्मणों के रूढ़िवादी समाज की परवाह न करते हुए गर्भवती सिलिया को धनिया का संरक्षण। कितनी बडी त्रासदी है मातादीन सिलिया के साथ सो सकता है, लेकिन उसको अपना नही सकता, उसका देह शोषण करता है परन्तु पत्नि का दर्जा नही देता। प्रेमचन्द का साहस देखिए उसके प्रेमी मातादीन को ब्राह्मण से दलित बनाने का साहसिक कदम उठाते हैं। ये प्रेमचन्द की दूरदृष्टि ही थी जिन्होने हिन्दी साहित्य में दलितों के उद्धार के लिए इतना बडा साहस किया ।

हिन्दी साहित्य में दलित चिंतन की शुरूआत प्रेमचन्द के द्वारा की गई, उनके कथा साहित्य में दलितों की त्रासदी, उनका अमानवीय जीवन, शोषण के खिलाफ आवाज न उठाना, वर्णव्यवस्था से त्रस्त जिन्होने। दलितों के जीवन को प्रमुखता से उभारा है। प्रेमचन्द वर्गीय चेतना के कथाकार है वर्ण व्यवस्था ने दलितों को जो सामाजिक नरक दिया उसकी छटपटाहट, आक्रोश प्रेमचन्द के कथा साहित्य में स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। प्रेमचन्द अपने समय के ऐसे कथाकार है जिन्होनें हिन्दी साहित्य यर्थाथ को स्वीकार्य बनाया, साहित्य को प्रासंगिक बनाया, कहानी और उपन्यासों में नायकों की परम्परा को बदला। उनकी रचनाऐं जितनी सहज और सरल है व्यवहारिक है उतना ही उनका प्रभाव गहरा है यह सहजता जीवन की जटिलताओं से भरी है। हिन्दी साहित्य में दलित रचनाकार प्रेमचन्द को अपने निकट पाता है। प्रेमचन्द जितने प्रासंगिक अपने समय में थे उससे ज्यादा आज है। यही उनकी पहचान व विशिष्टता है। प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के प्रथम ऐसे दलित पुरोधां थे जिनकी रचनाऐं अपने समय का जीवन्त दस्तावेज है, जिन्होने रूढ़ियो में जकड़ें शोषण का शिकार दलितों को मुख्यधारा से जोड़ने का कार्य किया था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *जनसत्ता, 30 जुलाई 2006*
2. *साहित्य सहचर, पृष्ठ 25*
3. *ठाकुर का कुआॅ पृष्ठ 31*
4. *वही पृष्ठ 32*
5. *प्रेमचन्द प्रतिज्ञा पृष्ठ18*
6. *प्रेमचन्द प्रतिज्ञा पृष्ठ*
7. *प्रेमचन्द प्रेमाश्रम पृष्ठ 118*
8. *प्रेमचन्द कर्मभूमि पृष्ठ 87*
9. *गोदान पृष्ठ 192*

महिला मानवाधिकार : सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में

डॉ. चित्रा आचार्य
सहायक आचार्य, जे. एन. एम. पी. (पी.जी.) महाविद्यालय, फलौदी

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

महिला मानवाधिकारों का आंदोलन 18वीं शताब्दी से उस दौरान सुदृढ़ हुआ जब लोगों को यह महसूस होने लगा कि महिलाओं का इस पुरूष केन्द्रित समाज में दमन किया जा रहा है। 18वीं सदी के अंत एवं 19वीं सदी के प्रारंभ में महिला लेखकों द्वारा रचित अनेक उपन्यासों से भी महिलाओं की भूमिका को स्पष्ट किया। महिला मानवाधिकारों के प्रति वास्तविक योगदान उन लोगों का था जिन्होंने सबसे पहले महिला शिक्षा एवं उनके घर से बाहर निकलने के विषय में सोचा। पुरूषों के अधिकारों की अंतहीन शक्ति के कारण हर युग, हर संस्कृति, हर जाति और धर्म में महिला हिंसा का दौर चला आ रहा है। हिंसा पुरूष शक्ति का महिला की शारीरिक कमजोरी पर एक सीधा सा प्रक्षेपण है।

संकेताक्षर : *मानवाधिकार, महिला मानवाधिकार, महिला शिक्षा, महिला मानवाधिकारों का विकास।*

मानवाधिकार की धारणा उतनी ही पुरानी है, जितना की मानव का इतिहास। यह एक ऐसी अवधारणा या विचार है, जिसमें बदलती हुई परिस्थितियों और समय के साथ विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहे है। उसके उपरांत भी मानवाधिकारों की विचारधारा से कोई देश या समाज सहमत नहीं हो सकता है।

मानवाधिकार शब्द दो शब्दों के मेल से अस्तित्व में आया है। मानव और अधिकार। मानव शब्द से तात्पर्य मनुष्य से है, जिसके अंतर्गत बिना किसी जाति, लिंग, धर्म, क्षेत्रीयता, अहमियत के भेदभाव किए बिना संपूर्ण विश्व में विद्यमान मानव जाति का प्रतिनिधित्व होता है। अधिकार शब्द से तात्पर्य उन मांगों से है जो समाज द्वारा स्वीकृत कर ली जाती है।

बोसांके के अनुसार – अधिकार वह मांग है जिसे समाज स्वीकार करता है और राज्य लागू करता है। प्लेनो और आलटन के अनुसार – मानवाधिकार वे अधिकार है, जो व्यक्ति के जीवन, अस्तित्व और व्यक्तिगत विकास के लिए सर्वाधिक आवश्यक समझे जाते है।

मानवाधिकार मात्र आदर्श या कल्पना मात्र नहीं है और न ही ये कुछ ऐसे अधिकार हैं, जो हमें विशेष कानून के अस्तित्व के कारण प्रदान किए जाते है। वास्तव में मानवाधिकार ऐसे दावे है, जो व्यक्तियों के मानवोचित गुणों से संबंधित है। मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो मानव होने के नाते आवश्यक रूप से मिलने चाहिए जो व्यक्ति की सुरक्षा और गरिमा के लिए अपरिहार्य है।

पुरूषों के अधिकारों की अंतहीन शक्ति के कारण हर युग, हर संस्कृति, हर जाति और धर्म में महिला हिंसा का दौर चला आ रहा है। हिंसा पुरूष शक्ति का महिला की शारीरिक कमजोरी पर एक सीधा सा प्रक्षेपण है। इसे समाज की विडम्बना पूर्ण विरोधाभास ही कहा जा सकता है कि जिस समाज में आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक व राजनीतिक क्षेत्रों में महिलाओं की भूमिका तेजी से बढ़ती हुई बताई जाती है। उसी समाज में उसके प्रति किए जाने वाले अपराध, उसका तिरस्कार, शोषण व अपमान का स्तर भी बढता ही जा रहा है। नारी के प्रति हिंसा का अविरल चक्र चलता ही जा रहा है। इसलिए महिला मानवाधिकार महिला विकास के लिए अतिआवश्यक है। इसलिए महिला मानवाधिकार

वर्तमान में अतिमहत्वपूर्ण अवधारणा बनी हुई है।

महिला मानवाधिकार : ऐतिहासिक विकास

हालांकि मानवता के प्रांरभिक काल में अधिकांशतः मातृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्थाएँ ही पाई जाती थी परन्तु उसके पश्चात् पितृसत्तात्मक व्यवस्थाओं के आगमन से स्त्रियों को दोयम स्थिति पर डाले जाने के शुरूआत हुई। अतः यह कहा जा सकता है कि स्त्रियों के उत्पीडन एवं दासता का इतिहास उतना ही पुराना है जितना असमानता और उत्पीड़न पर आधारित सामाजिक संरचनाओं के उद्भव और विकास का इतिहास। विश्व के इतिहास में आज भी औरत, वह चाहे पश्चिमी विकसित राष्ट्रों की हो अथवा पूरब के विकासशील राष्ट्रों की, पितृसत्तात्मक समाज में एक उपनिवेश ही है। इस प्रकार स्त्री की हीनता एवं दोयम स्थिति का एक प्रमुख कारण प्राचीन कालीन पारिवारिक व्यवस्था को माना जा सकता है। पुरूष वर्ग ने अपनी इस प्रतिष्ठा को प्रमाणित करने के लिए स्त्रियों की इस स्थिति को ईश्वर रचित सिद्ध करने का प्रयास भी किया है। आदिकाल से ही विचारक स्त्रियों की केवल कमियों को अभिव्यक्त करते रहे और उन्हें अधिकारों व स्वतंत्रताओं से वंचित रखा गया।

प्राचीन राजनीतिक चिंतन में केवल प्लेटो स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार देने की बात करता है। यद्यपि यह भी सत्य है कि उसका अंतिम उददे्श्य एक आदर्श राज्य की सृष्टि करना था और वह स्त्रियों को अधिकार इसी उददे्श्य की पूर्ति हेतु प्रदान करता था तथापि उसके द्वारा स्त्री–पुरूष में योग्यता होने पर समान रूप से दार्शनिक शासक बनने का अधिकार देना स्त्री–अधिकार के प्रति उसके सकारात्मक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है। प्लेटो के पश्चात् एक लम्बे समय तक पाश्चात्य राजनैतिक चिंतन में कोई भी चिंतक महिला अधिकारों अथवा स्त्री–पुरूष की बात नहीं करता। यही नहीं महिलाएं इतिहास के पन्नों में लगभग अदृश्य रही है। वस्तुत मध्ययुग तक संपूर्ण विश्व में यह संकल्पना सर्वमान्य थी कि स्त्री का स्थान पुरूष से निम्न है। उन्हें सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक और आर्थिक किसी भी क्षेत्र में पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त नहीं थे।

आधुनिक काल के प्रारंभिक दौर में स्थिति

महिला मानवाधिकारों के प्रति वास्तविक योगदान उन लोगों का था जिन्होंने सबसे पहले महिला शिक्षा एवं उनके घर से बाहर निकलने के विषय में सोचा। यद्यपि कुछ महिलाओं ने शिक्षक के रूप में अनुपम ज्ञान और दक्षता भी अर्जित की लेकिन मध्यकालीन यूरोप में उनकी स्थिति बहुत खराब थी। अतः इस दृष्टि से महिला अधिकारों के विचार का प्रारंभ 15 वीं शताब्दी के आरंभ में ही फ्रासीसी महिलाओं द्वारा हो गया था। उन्होंने महिला शिक्षा उनके स्वतंत्रतापूर्वक रहने व कार्य करने, सार्वजनिक जीवन में हिस्सा लेने एवं उनके भाग्य पर उनका स्वयं का स्वामित्व जैसे महिला अधिकारों की बात की। 17 वीं शताब्दी के दौरान अनेक महिला लेखकों ने भी स्त्री शिक्षा के अधिकार की मांग की।

स्त्रियों के सामाजिक अधिकारों एवं स्त्री–पुरूष समानता की मांग सर्वप्रथम बुर्जुआ क्रांतियों की पूर्वबेला में प्रबोधनकाल के दौरान प्रबल रूप से मुखरित हुई। इस काल के अधिकांश विचारकों ने स्त्रियों की पराधीनता को प्राकृतिक अधिकारों का हनन माना। अमेरिकी क्रांति के दौरान मर्सी वॉरेन और एबिगेल एडमस के नेतृत्व में स्त्रियों ने पहली बार मताधिकार और सम्पति के अधिकार सहित सामाजिक समानता की मांग की। यूरोप में संगठित नारी आंदोलन की शुरूआत फ्रांसीसी क्रांति के काल में हुई। इस दौरान स्त्रियों ने जन प्रदर्शनों सहित सभी राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभायी। स्त्रियों में क्रांतिकारी क्लबों के रूप में पहले ऐसे स्त्री संगठन सामने आए जिन्होंने न केवल सामन्तवाद विरोधी संघर्षों में खुलकर भाग लिया अपितु, स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व के नारों को बिना किसी भेदभाव के समान रूप से स्त्री–पुरूष पर लागू करने की मांग की। स्त्री अधिकारों की विचारधारा को काल्पनिक समाजवादियों जैसे सेंट साईमन फूरियर तथा राबर्ट ओवन के चिंतन के माध्यम से भी गति मिली। उन्होंने स्त्रियों को आर्थिक व कानूनी दृष्टि से पुरूषों के समान अधिकार देने की बात कही। इसकी प्राप्ति के लिए उन्होंने निजी सम्पति, श्रम के परम्परागत विभाजन एवं परिवार नाम की संस्था की समाप्ति का आग्रह किया। इनके अंतर्गत थाम्पसन ने महिलाओं के लिए सिर्फ पूर्ण राजनीतिक अधिकारों और उनकी समान बौद्धिक क्षमताओं की बात ही नहीं की, बल्कि दो कदम आगे बढते हुए, उन्होंने महिलाओं को शारीरिक दृष्टि से पुरूषों की तुलना में कहीं ज्यादा श्रेष्ठ बताया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि महिलाओं की आर्थिक

स्वतंत्रता उनकी वास्तविक स्वतंत्रता के लिए जरूरी है।

19वीं सदी में महिला मानवाधिकारों का विकास

सामान्य यह कहा जाता है कि महिला मानवाधिकारों का आंदोलन 18वीं शताब्दी से उस दौरान सुदृढ़ हुआ जब लोगों को यह महसूस होने लगा कि महिलाओं का इस पुरूष केन्द्रित समाज में दमन किया जा रहा है। 18वीं सदी के अंत एवं 19वीं सदी के प्रारंभ काल में महिला लेखकों द्वारा रचित अनेक उपन्यासों से भी महिलाओं की भूमिका को स्पष्ट किया। यह काल नारीवाद की प्रथम लहर का काल था। इस लहर की प्रमुख विशेषता यह है कि यह एक विश्वव्यापी लहर थी। महिला अधिकारों की मांग केवल यूरोप और उत्तरी अमेरिका के देशों में नहीं हो रही थी, बल्कि पाश्चात्य जगत के बाहर दक्षिणी अमेरिका और एशिया में भी उभर रही थी।

स्त्रियों के समान अधिकारों के पक्ष में जोरदार तर्क प्रस्तुत करने का श्रेय ब्रिटेन के जॉन स्टुअर्ट मिल को जाता है जो कि अपनी पत्नी हैरियट टेलर से बहुत प्रभावित थे। उनका विश्वास था कि स्त्री–पुरूष के बीच कानूनी समानता न केवल दोनों के लिए न्यायपूर्ण और सुखद होगी, बल्कि मनुष्य के दैनिक जीवन को अधिक नैतिक भी बनायेगी। उन्होंने 1867 में स्त्रियों को वयस्क मताधिकार प्रदान करने के आशय से ब्रिटिश संसद में एक प्रस्ताव रखा।

20वीं सदी में महिला मानवाधिकारों का विकास

20वीं सदी का दूसरा दशक महिलाओं की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण समय रहा। इस सदी के प्रारंभ से ही कामकाजी महिलाओं की संख्या निरंतर बढ़ रही थी। इसके साथ ही महिलाओं का घर से बाहर काम पर बिताया गया समय भी बढ़ा। दूसरे महायुद्ध के प्रारंभ होने के बाद अनेक महिलाएँ श्रमिकों के रूप में काम करने लगी। यहाँ तक कि उन्हें पुरूष वर्चस्व वाले विनिर्माण और भारी उद्योगों में भी काम पर रखा जाने लगा।

इन सभी परिवर्तनों से यह स्पष्ट हो गया कि महिलाएँ भी पुरूष–कार्यों को कर सकती है एवं समाज उनके श्रम पर भी आश्रित है इसने महिलाओं की समानता की मांग को प्रोत्साहित किया। समाजवाद एवं साम्यवाद के उदय ने भी महिलाओं को समानता का अधिकार प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया।

नारीवादी आंदोलन की प्रथम लहर 1960 के दौरान महिलाओं की स्थिति में क्रमिक रूप से परिवर्तन प्रारंभ हुए। यह आंदोलन स्त्री को मताधिकार दिलाने की मांग से प्रारंभ हुआ था और अंततः अनेक संघर्षो के उपरांत इसने अपने प्रमुख लक्ष्य को प्राप्त भी कर लिया।

लगभग 1960 से 1980 तक की कालावधि नारीवाद की द्वितीय लहर के रूप में जानी जाती है। इस काल के नारीवादी सामाजिक कानूनी एवं आर्थिक समानता की प्राप्ति से संबंधित थे। धीरे–धीरे काम के क्षेत्र में महिलाओं के प्रति भेदभाव बढ़ने के फलस्वरूप महिलाओं में जेंडर आधारित अन्याय में प्रति जागरूकता बढ़ने से नये संगठनों का निर्माण होने लगा। इस काल में महिला उत्थान के लिए किए गए अन्य प्रयासों में समान कार्य के लिए समान वेतन, प्रजनन संबंधी अधिकार एवं उन्हें राजनीति में भागीदारी के लिए प्रोत्साहित करना जैसे प्रयास भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

लगभग 1980 के बाद का काल महिला अधिकारों की दृष्टि से नारीवाद की तृतीय लहर के रूप में जाना जाता है। यह अत्यंत अस्पष्ट दौर है जिसे उत्तर नारीवादी भी कहा जाता है। यद्यपि 1990 के दशक से पुनः महिला आंदोलनों का पुनर्जागरण हुआ और वर्तमान में कई यूरोपीयन नारीवादी जनतांत्रिक राजनीति और चुनावी राजनीति में विशेष रूचि ले रहे है।

संयुक्त राष्ट्र संघ और महिला मानवाधिकार

महिला एवं महिला मानवाधिकारों के प्रति अपनी सकारात्मक सोच का परिचय संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने चार्टर के निर्माण के साथ ही देना प्रारंभ कर दिया था। संयुक्त राष्ट्र संघ अपनी स्थापना से ही स्त्री–पुरूष की समानता में अपना विश्वास प्रकट करता रहा है और यह विश्व में सर्वत्र इस समानता की सभी मनुष्य जन्म से ही स्वतंत्र पैदा होते है तथा वे अधिकार एवं गरिमा की दृष्टि से समान हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा समय–समय पर मानव के अधिकारों की स्थापना एवं रक्षा के लिए अनेक अभिसमय पारित किए गए है।

इसमें से निम्न अभिसमय विशेष रूप से महिला मानवाधिकारों से संबंध रखते हैं–

1 Convention on the political right of woman 1952

2 Convention on the Nationality of married women 1957

3 Convention on the consert to marriage, minimum age of marriage and registration of marriages 1962

4 Declaration on the elimination of discrimination against women 1967

5 Declaration on the protection of women and children in emergency and armed conffirt 1974

6 Convention on the elimination of all forms of discrimination-1979

1975 में पहली बार महिलाओं की प्रस्थिति अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चिंता का विषय बनी तथा 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया गया जिसे बाद में महिला दशक (1975–85) में तब्दील कर दिया गया। 1978 में महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त करने के लिए समिति का गठन किया गया। इस समिति ने 1992 में महिलाओं के प्रति हिंसा को उनके खिलाफ भेदभाव की संज्ञा दी तथा इसी वर्ष महिलाओं के प्रति हिंसा अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे के रूप में चर्चित हुआ। 1995 में बीजिंग सम्मेलन में महिला अधिकारों के लिए मानवाधिकारों के रूप में संघर्ष की विस्तृत रणनीति जारी की गई। यथा–शिक्षा प्राप्ति के क्षेत्र में असमानता तथा अपर्याप्त अवसर, स्वास्थ्य लाभ की स्थिति में असमानता और महिलाओं के प्रति बढ़ते अत्याचार, संघर्ष की स्थितियों का महिलाओं पर प्रभाव, आर्थिक ढांचों, नीतियों तथा उत्पादन प्रक्रिया में महिलाओं का योगदान एवं असमानता की संरचनाएं, अधिकारों और निर्णय प्रक्रिया में सहभागिता में असमानता, महिला विकास के लिए उपलब्ध अपर्याप्त तंत्र, अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर मान्य महिलाओं को मानव अधिकार के प्रति जागरूकता और निष्ठा का अभाव प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन और पर्यावरण के संरक्षण में महिलाओं के योगदान को अपर्याप्त मान्यता एवं अपर्याप्त समर्थन तथा बालिका की शोचनीय स्थिति आदि। 1998 में अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय ने लैंगिक हिंसा को अपराध घोषित किया, जिसकी मांग लम्बे समय से की जा रही थी। वर्ष 2000 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के विशेष अधिवेशन में सदस्यों देशों ने कई नयी पहल करने का संकल्प लिया, हर प्रकार की घरेलू हिंसा के खिलाफ कानूनी व्यवस्था को सुदृढ़ करना, कम आयु में आरोपित विवाह आदि पर रोक लगाने के लिए सक्षम कानूनी व्यवस्था करना, बालक तथा बालिकाओं दोनों के लिए मुफ्त अनिवार्य शिक्षा, उचित व्यवस्था लाभ और निवारक कार्यक्रमों का प्रचार इस प्रकार विगत अर्द्धशताब्दी में संघर्षों के नये आयाम विकसित हुए हैं कुछ उपलब्धियाँ भी हासिल हुई।

वर्ष 1975 के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा महिलाओं के विकास के लिए यूनिफेम महिलाओं का संयुक्त राष्ट्र विकास कोश एवं इंस्ट्रा तथा दो संयुक्त राष्ट्र निकायों की भी स्थापना की गई। यूनिफेम 1976 की स्थापना राष्ट्र महासभा द्वारा महिलाओं के विकास कोश के लिए बनी योजनाओं को सीधे तौर पर सहायता प्रदान की जा सके। यूनिफेम विकासशील देशों की महिलाओं को सहायता भी प्रदान करता है। यह विकास कोश मुख्य रूप से निम्न वर्गों से संबंधित है– व्यापार एवं उद्योग, ऋण, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, कृषि, राष्ट्रीय योजना, भोजन एवं सुरक्षा तथा नीति–निर्माण। इसने लाओस व वियतनाम में महिलाओं को आर्थिक अवसर एवं राजनीतिक सहभागिता दिलाने तथा पनामा, कोस्टारिका व ग्वेटनमाला में औरतों को कानूनी अधिकार दिलाने हेतु चेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इंस्ट्रा की स्थापना महासभा द्वारा 1975 में प्रथम विश्व महिला सम्मेलन की सिफारिश पर की गई। इसका प्रमुख कार्य संपूर्ण विश्व में शोध, प्रशिक्षण तथा सूचना संबंधी गतिविधियां करना है ताकि महिलाओं को विकास का प्रमुख अभिकर्ता बनाया जा सके।

अतः यह कहा जा सकता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने महिलाओं की स्थिति को बेहतर बनाने हेतु अनेक प्रयास किए गए हैं। स्वतंत्र भारत संयुक्त राष्ट्र संघ के समस्त प्रयासों का पूर्ण समर्थक एवं भागीदार रहा है। स्वतंत्र भारत में भी महिलाओं को संविधान एवं संविधानोत्तर कानूनों के द्वारा तकरीबन प्रत्येक क्षेत्र में पुरूषों के समान अधिकार प्रदान किए है।

महिला मानवाधिकार : भारतीय संदर्भ में

प्राचीन भारत का एक गौरवमय इतिहास रहा है। इस युग की आध्यात्मिक ने 'धरा' को जीवन का आधार और 'पुरूष' को धर्म माना। यहाँ 'धरा' को माता–पिता के रूप में सम्मान दिया गया एवं 'विश्वधात्री' के नाम से इसकी स्तुति की गई। वस्तुतः वैदिक काल के प्रारंभिक वर्षों में नारी को सम्मानित स्थिति प्राप्त थी। परन्तु उसकी स्थिति में सर्वाधिक गिरावट मुगल

आक्रमणों के काल में आई और ब्रिटिश काल तक भारतीय नारी की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई। ब्रिटिश काल में समाज सुधारकों के प्रयासों, नवीन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों तथा भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के फलस्वरूप 19वीं सदी से भारतीय नारी की स्थिति में कुछ सकारात्मक परिवर्तन आने लगे। भारतीय महिलाओं द्वारा शिक्षा ग्रहण करने, स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भागीदारी निभाने तथा गांधी जी के मार्गदर्शन में प्रबुद्ध व जागरूक राजनेताओं के प्रयासों के फलस्वरूप स्वतंत्र भारत के संविधान में महिलाओं को न केवल 'समानता' का मूल अधिकार प्रदान किया गया है वरन् उनके लिए सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अलाभकारी स्थितियों के उन्मूलन करने हेतु आवश्यक उपाय करने के लिए राज्यों को निर्देशित भी किया गया है।

स्वतंत्र भारत में जब संविधान का निर्माण हुआ और लागू किया गया तो न केवल ऐसे प्रावधान किए गए जिसमें महिलाओं सहित प्रत्येक व्यक्ति को गरिमामय जीवन जीने का अधिकार दिया गया बल्कि अनेकानेक कानून बनाकर शोषण की प्रक्रिया पर प्रतिबंध लगाए गए क्योंकि सैकड़ों वर्षों तक पराधीनता की त्रासदी झेल चुके थे कि प्रत्येक नागरिक के सर्वांगीण विकास के लिए मानवाधिकार अनिवार्य है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि ''भारतीय संविधान देश के सभी नागरिकों को न्यायिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सुरक्षा, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा एवं अवसर की समानता, व्यक्ति के गौरव तथा देश की एकता और अखण्डता की पुष्ट करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सरकार द्वारा महिलाओं की विकास की मुख्य धारा में समाहित करने हेतु अनेक कल्याणकारी योजनाओं और विकासात्मक कार्यक्रमों का संचालन किया गया। जिससे महिलाओं की सुरक्षा व उनकी स्थिति में सुधार को ध्यान में रखा गया।''

भारतीय संविधान के अंतर्गत समस्त महिलाओं व पुरूषों को समानता, स्वतंत्रता, शोषण से सुरक्षा, धार्मिक स्वतंत्रता, शिक्षा एवं संस्कृति इत्यादि सभी अधिकार समान रूप से प्रदान किए गए हैं कि ताकि उन्हें किसी भी प्रकार समानता से वंचित न होना पड़े। महिलाओं में परिणित कराने हेतु विशेष सुरक्षात्मक विधानों की व्याख्या की गई है।

इन मानवाधिकारों से नारी की स्थिति में सुधार आया है। सरकार द्वारा जो कानून–नियम और अधिनियम बनाए और लागू किए गए उनके प्रभाव से बाल विवाह, दहेज प्रथा और अंतर्जातीय विवाह की समस्याओं से छुटकारा पाना आसान हो गया है। इन सभी कारकों के संयुक्त प्रयास से स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुए है। शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियाँ इतनी तेजी से आगे आ रही हैं, जिसकी 60 वर्ष पूर्व कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। शिक्षा के प्रयास के कारण स्त्रियों को समाज में व्याप्त रूढ़ियों (बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा) से मुक्ति मिल गई है। साथ ही उन्होने समाज कल्याण और महिला कल्याण में रूचि लेना आरंभ कर दिया है। स्वयं सहायता समूहों का निर्माण कर महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों के विरूद्ध भी आवाज उठाना भी अब वे अपना हक समझती है। स्त्री शिक्षा की उस प्रगति को देखते हुए श्री पणिक्कर ने यह निष्कर्ष दिया है कि ''स्त्री शिक्षा ने विद्रोह की उस कुल्हाड़ी की धार तेज कर दी है जिससे हिन्दू सामाजिक जीवन की कुरीतियों और कुप्रथाओं रूपी जंगली झाड़ियों को साफ करना संभव हो गया है।''

औद्योगिकरण और नवीन विचारधारा के कारण स्त्रियों की पुरूषों पर आर्थिक निर्भरता कम होती जा रही है। आज शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा समाज कल्याण, मनोरंजन, उद्योग और विभिन्न कार्यालयों में स्त्री कर्मचारी की मांग और संख्या लगातार बढ़ रही है। वास्तविकता तो यह है कि स्त्रियों को आर्थिक जीवन में स्वतंत्रता के कारण उनके आत्मविश्वास, कार्यक्षमता और मानसिक स्तर ऊपर उठा है।

स्त्री के पारिवारिक अधिकारों में वृद्धि हुई है, परिवार में उसकी स्थिति अब याचिका न होकर एक प्रबंधक की है। बच्चों की शिक्षा, पारिवारिक आय के उपभोग, संस्कारों का प्रबंध, पारिवारिक निर्णय और पारिवारिक योजनाओं के रूप का निर्धारण करने में स्त्री की इच्छा का महत्व निरंतर बढ़ रहा है। आज की नयी पीढ़ी तो स्वयं स्त्रियों को उनके पारिवारिक अधिकार देने के पक्ष में है। यदि किसी कारणवश उन्हें अधिकार देने से वंचित रखा भी गया तो आने वाले समय में अपनी शक्ति द्वारा स्वयं ही प्राप्त कर लेगी।

राजनीतिक क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति जिस गति से ऊँची उठी है वास्तव में वह आश्चर्य का विषय है। देश

के शीर्ष पदों, प्रधानमंत्री पद पर इंदिरा गांधी और राष्ट्रपति पद पर श्रीमति प्रतिभा देवी सिंह पाटिल ने कब्जा जमाया। पांच मुख्यमंत्री लगभग दो–तीन दर्जन महिलाएँ मंत्री पदों पर रह चुकी है। स्त्रियों ने अपनी राजनीतिक शक्तियों का सदुपयोग कर मध्यकाल की रूढ़ियों को समाप्त करने तथा प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रशंसनीय कार्य किए हैं। भारतीय समाज में सबसे अधिक सहनशील, धैर्यवान और भाांति प्रिय स्त्री वर्ग ने अपनी प्रस्थिति में सुधार लाने के लिए व्यापक अधिकारों की मांग करना आरंभ कर दिया तो उत्पन्न होने वाली चेतना को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि समाज का नये सिरे से मूल्यांकन किया जाएं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 *भारत में मानवाधिकार कानून एवं संस्थाएँ, निरंजन साहू, वाईवा बुक्स, दिल्ली, 2009*

2 *मानवाधिकार सामाजिक न्याय और भारत का संविधान, पूरणमल, पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर, 2003*

3 *नारीवादी विमर्श, राकेश कुमार, आधार प्रकाशन, पंचकुला, हरियाणा, 2001*

4 *नारी प्रश्न, सरला माहेश्वरी, राधाकृश्णन प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 1998*

5 *महिला और मानवाधिकार, एम.ए. अंसारी, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2000*

6 *मानवाधिकार और राज्य : बदलते संदर्भ उभरते आयाम, आशा कौशिक, पोइंटर पब्लिशर्स, जयपुर, 2004*

7 *https://www.un.org/en/about-us/universal-declaration-of-human-rights*

8 *https://www.amnesty.org/en/what-we-do/discrimination/womens-rights/*

9 *https://www.news18.com/news/india/womens-equality-day-2021-five-constitutional-rights-that-protect-women-4128629.html*

1857 ई. के विद्रोह में उत्तर भारतीय राज्यों की भूमिका

डॉ. बृजेश कुमार
सहायक आचार्य, गौरीशंकर कॉलेज, फिरोजाबाद (उत्तरप्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा प्लासी और बक्सर युद्ध विजय के बाद ब्रिटिश साम्राज्य का तेजी से विस्तार होने लगा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी उस समय सशक्त सैनिक शक्ति बन गयी थी जिसने एक-एक करके उत्तर भारतीय रियासतों के अस्तित्व को समाप्त करना प्रारम्भ कर दिया। कम्पनी ने कुछ रियासतों को षड़यत्रों द्वारा पराजित करके तथा कुछ को सहायक संधि द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बनाया।प्लासी और बक्सर युद्ध के बाद से ही भारतीय राज्यों एवं उनकी प्रजा के हृदय में अग्रेजीं एवं अग्रेजी राज्य के प्रति अंसतोष की भावना लगातार पननपे लगी थी। लार्ड क्लाइव से लेकर लार्ड डलहौजी तक जिस प्रकार कम्पनी के प्रतिनिधियों ने भारतीय रियासतों पर अत्याचार किये उन्हे लूटा और उन्हे अपमानित किया, जिनके परिणामस्वरूप देश के भीतर स्वाधीनता की ज्योति जगाना कुछ रियासतों ने प्रारम्भ कर दिया था जिसमें उत्तर भारत की रियासतो ने प्रारम्भ कर दिया था जिसमें उत्तर भारत की रियासतों की भूमिका प्रमुख थी और ये उत्तर भारत की रियासतें प्रारम्भ से लेकर अतं तक 1857 ई. के विप्लव का केन्द्र बिन्दु थी। यही कारण था जब मेरठ के सिपाहियों ने विद्रोह किया तो असतुंष्ठ उत्तर भारतीय रियासतों के नरेशो ने उन्हे प्रोत्साहित ही नहीं किया अपितु शीघ्र ही विद्रोह का नेतृत्व भी ग्रहण कर लिया। अबध मेरठ बुन्देलखण्ड झासी दिल्ली आदि में लोगों ने ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ हथियार उठा लिये इसके साथ ही यहा किसानों ने भी विद्रोह में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसके अलावा मुजफरनगर, इटावा, बिहार, छोटा नागपुरसंथाल परगना आदि स्थानों पर भी लोगों ने अग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह किया। ब्रिटिशशासन ने इस विद्रोह का शक्तिपूर्वक दमन किया। ब्रिटिशशासन के लाख दमन के बावजूद भी यह कहा जा सकता है कि उत्तर भारतीय रियासतों में स्वतन्त्रता प्राप्ति की उमंग बढ़ती जा रही थी।

संकेताक्षर : *विप्लव, उत्तर भारतीय रियासत, ईस्ट इण्डिया कम्पनी, मेरठ।*

1857 ई. का बिप्लव का अध्ययन भारतीय इतिहास के मनीषियों के लिए अपरिहार्य है। यह एक ऐसी गम्भीर एवं प्रभावोत्पादक घटना थी जिसकी तीव्र लपटों में एक बार अंग्रेजी शासन का अस्तित्व पूर्ण रूप जलकर भस्म होता हुआ प्रतीत होने लगा था। ब्रिटिश साम्राज्य की शोषणकारी नीति ने उत्तर भारतीय रियासतों को विप्लव करने के लिए प्रेरित किया। 1857 ई. के विद्रोह में एक के बाद एक उत्तर भारतीय रियासतों के ब्रिटिश प्रतिरोध ने ऐसा वातावरण उत्पन्न कर दिया था कि उस समय राजनीतिक विश्लेषक यह अनुमान लगाने लगे कि यह विप्लव ब्रिटिश साम्राज्य के लिए सबसे बड़ा खतरा यदि ब्रिटिश सरकार इसका दमन ना कर पाती तो ब्रिटिश सत्ता का अतः सुनिश्चित था।

1857 ई. में भारतीय ने यह निर्णय कर लिया था कि अंग्रेजी को भारत से बाहर निकाल पडे। 1857 की क्रान्ति में धन की कमी न थी। सहस्रो रईसों और साहूकारों ने अपनी थैलियाँ राष्ट्रीय राजनेताओं के कदमों पर रख दी। बैरकपुर से पेशावर तक और लखनऊ से सतारा तक राष्ट्रीय फकीर और सन्यासी घूम-घूमकर एक-एक ग्राम और एक-एक पलटन में पराधीनता के युद्ध का प्रचार करने लगे।

उत्तर भारत के नरेशों के दूत दिल्ली से लेकर मैसूर तक समस्त भारतीय नरेशों के दरबारों में पहुंचे ओर उनके गुप्त प्रचारक कम्पनी की समस्त देशी फौजों तथा जनता को अपनी ओर करने के लिए निकल पडे। जो गुप्त पत्र नाना ने इस समय भारतीय नरेशों को लिखे उनमें उन्होने यह दिखलाया था कि किस प्रकार अंग्रेज एक–एक भारत की रिसायत को हड़प कर समस्त भारत को पराधीन करने के प्रयत्नों में लगे हुऐ हैं।[1]

''इन पत्रों में होशियारी के साथ–साथ और शायद नैरास्पपूर्ण शब्दों में भिन्न–भिन्न जातियों और भिन्न–भिन्न धर्मों के नरेशों और सरदारों को सलाह दी गयी थी और उन्हें आमंत्रित किया गया था कि आप लोग आगामी युद्ध में भाग ले। अवध के अपहरण का हमला इतना प्रबल पड़ा कि लोग एक दूसरे से पूछने लगे कि कौन सुरक्षित रह सकता है। यदि अंग्रेज सरकार में अवध के नवाव जैसे अपने वफादार दोस्त और मददगार का राज्य छीन लिया जिसने कि अंग्रेजों को मदद दी थी तो अंग्रेजों के साथ वफादारी करने से क्या लाभ कहा जाता है कि जो नवाब और राजा (विप्लव) पीछे हट रहे थे जब आगे बढ़ने लगे और नाना साहब को अपने पत्रों का यथेष्ट उत्तर मिलने लगा।[2]

कारतूस की घटना को लेकर बैरकपुर में क्रांति का श्रीगणेश हो चुका था किन्तु मेरठ के क्रान्तिकारी अभी 31 मई का इंतजार कर रहे थे।

10मई की शाम को ये हिन्दुस्तानी सिपाही शहर में घूमने के लिये। लिखा है कि शहर की स्त्रियों ने स्थान – स्थान पर उन्हें यह कहकर लाच्छना दी –''छिः नुम्हारे भाई जेलखाने में हैं और तुम यहाँ बाजार में मक्खियाँ मार रहे हो। तुम्हारे जीने पर धिक्कार हैं।'' सिपाहियो के हृदय में मेरठ की स्त्रियों के शब्द चुभ गये । रात को बांरगो में गुप्त सभायें हुई। निश्चय हुआ कि 31 मई तक चुप बैठना असम्भव है।

10 मई को मेरठ शहर के अन्दर नगर निवासी तथा सहस्त्रों समस्त ग्राम निवासी बाहर से आ आकर एकत्रित हो रहे थे। उधर छावनी में जोरो की तैयारी जारी थी। इन लोगों ने जेलखाने की दीवारे गिरा दी। समस्त कैदियों की बेडियां काट दी। हिन्दू –मुसलमान पैदल सवार और तोपखाने के सिपाहियो ने अग्रेजों के बंगलो, होटलो मे आग लगा दी। अनेक अग्रेजों ने हिन्दुस्तानी नौकरो के घरों में शरण ली। 10 तारीख की रात को मेरठ के सिपाही दिल्ली की और रवाना हो गए।

जे.सी विलसन लिखता है कि वास्तव मे मेरठ शहर की स्त्रियों ने वहाँ के सिपाहियो को समय से पहले भड़काकर अंग्रेजी राज को भारत होने से बचा लिया। 11 तारीख को विद्रोही दिल्ली पहुँच गये। दिल्ली के सवार मेरठ सिपाहियो के गले मिलने लगे। कर्नल रिपले घबरा गया और तुरन्त वही मार डाला गया। दिल्ली की सेना के सब अंग्रेज अफसर मार डाले गये बंगले जला दिये गये। सम्राट बहादुरशाह और बेगम जीनत महल ने सोचा कि अब 31 मई तक रुके रहना मूर्खता होगी। सहस्त्रों मुसलमान और दिल्ली के हिन्दू वाशिन्दे स्थान पर लुटियो मे मेरठ से आये हुए सिपाहियों को ओलो और बतासो का शरबत पिलाने लगे। दिल्ली के अंग्रेजी बैंक पर कब्जा हो गया और अन्य अंग्रेजी इमारतो को गिरा दिया गया।

16 मई 1851ई. को भारत की प्राचीन राजधानी दिल्ली पूरी तरह कम्पनी के हाथों से आजाद हो गयी और सम्राट बहादुरशाह फिर से दिल्ली का क्रियात्मक सम्राट गिना जाने लगा। नाना साहब और क्रान्ति के अन्य नेताओं ने बहादुरशाह ही के नाम पर समस्त भारत के नरेशों, प्रजा, सैनिकों को अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध के लिए आहवान किया था। बहादुरशाह का झण्डा ही उस समय भारत भर के क्रांतिकारियों का झण्डा था।

नाना साहब पर अंग्रेजों को बहुत विश्वास था। व्हीलर ने कम्पनी का खजाना नाना साहब को सौंप दिया। कम्पनी की भारतीय सेना के दो मुख्य नेता थे, सूबेदार टीका सिंह और सूबेदार शक्युद्दीन खाँ। नाना साहब के दो मुख्य विश्वस्त सहायक ज्वाला प्रसाद और मौहम्मद अली थे। इन चारों में गुप्त मंत्रणा हुआ करती थी।

5 जून को कानपुर में अंग्रेजी इमारतों में आग लगा दी और अंग्रेजी झण्डे गिराकर उनकी जगह हरे झण्डे लगा दिये गये। 6 जून को जनरल व्हीलर को नाना साहब ने चेतावनी दी कि आप किला हमार सुपुर्द कर दिया जाएगा। उसकी दिन शाम को नाना की तोपों ने कानपुर किले के अन्दर गोले बरसाने शुरू किये। किले के अन्दर अंग्रेज इतनी तेजी के साथ मरने लगे कि लिखा है– उन्हे दफनाना कठिन हो गया। किले के अन्दर केवल एक कुंआ था। नाना की सेना ने उस पर इस प्रकार गोले बरसाये कि अनेक अंग्रेज पुरूष और स्त्री पानी न मिलने के कारण तड़पने लगे। 21 दिन तक गोलीबारी हुई। विप्लवकारियों के पहरे के कारण कोई संदेश बाहर भेजना कठिन था फिर भी वह एक वफादार हिन्दुस्तानी नौकर जनरल व्हीलर का संदेश

लेकर लखनऊ पहुँचा। दूसरी ओर नाना के गुप्तचर किले की सूचना बड़ी होशियारी से लेकर नाना को दे रहे थे।[3] बाबा साहब के पास चारों ओर से जमीदारों की ओर से धन और जन दोनों की सहायता धड़ाधड चली आ रही थी।

कानुपर की हिन्दू और मुस्लिम स्त्रियों उस समय अपने घरों से निकलकर गोला बारूद इधर–उधर ले जाने सैनिकों को भेजने पहुँचाने और अंग्रेजी किले के नीचे तोपचियों को मदद देने का कार्य कर रही थी।[4]

25 जून को जनरल व्हीलर ने अपने किले के ऊपर सुलह का सफेद झण्डा फहरा दिया। 26 जून को दोनों प्रतिनिधियों में बातचीत हुई जिसमें अजीमुल्लाखां जो कि अंग्रेजी का विद्वान था उसने प्रतिनिधियों को विवश किया कि वह हिन्दी में वार्तालाप करें।

27 जून को जब अंग्रेज किश्तियों में बैठ चुके थे तब किसी आकस्मिक संकेत पर नाविकों ने किश्तियों को छोड़ दिया और मारधाड़ शुरू कर दी जैसे ही नाना को इसकी सूचना मिली उन्होने कहा कि अंग्रेजों को मारो परन्तु स्त्रियों, बच्चों को मत छुओ, मगर इलाहाबाद में जो कम्पनी ने जनता पर अत्याचार किये थे, उन्हें सुन सुनकर क्रोध में पागल हो रही थी। 16 जुलाई को कानपुर पर पुनः अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इन दिनों कानपुर के नीनीघर नामक मकान पर कुछ अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों की हत्या कर दी। कानपुर पर अधिकार करने के पश्चात् अंग्रेजों ने मुसलमान अधिकारी से जमीन का खून जीब से साफ करवाया। ब्राहमणों को जमीन में गढ़वा दिया।

नील के व्यापक नरसंहार के सम्बन्ध में टाइम्स के संवाददाता रसेल ने लिखा है– ''नील की सैनिक टुकड़ी की एक सहायक अधिकारी ने उसकी व्यापक रक्तपात की नीति का प्रतिरोध यह कहकर किया कि यदि उसने प्रदेश को निर्जन बना दिया जो उसकी सेना के लिए खाद्य सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकेगी।''[5]

बिठूर पर अंग्रेजों ने दो बार आक्रमण किया और महल से सम्पूर्ण सामान लूटकर ले गये। 3 जनवरी 1885 को एक अंग्रेज ने लिखा है कि सिपाहियों को इतना सोना चांदी कुंए में मिला कि वह ले जा नहीं सकते थे।''[6] 1858ई. के पश्चात् नाना का अता पता अनिश्चित सा हो गया। अवध की सल्तनत के छिनने के समय से मौलवी अहमदशाह ने अपना सारा समय इस स्वाधीनता महायुद्ध की तेयारी में लगा रखा तथा फैजाबाद से लखनऊ और आगरे तक वह बाराबर दौरे करता रहता था। क्रान्ति पर उसने अनेक भाषण दिये और अनेक पत्रिकायें लिखी। अंग्रेजों ने मौलवी को फांसी का हुक्म दे दिया। मौलवी की गिरफ्तारी से फैजाबाद शहर में तैहलका मच गया। सिपाहियों ने आजादी का झण्डा खड़ा कर दिया और अपने अधिकारियों से साफ कह दिया कि इस समय के बाद हम केवल अपने हिन्दुस्तानी अफसरों की आज्ञा मानेंगे। मौलवी को जेलखाने से निकलकर दूर भेज दिया।

इसी प्रकार राजा हनुमन्त सिंह की अत्यधिक जागीर अंग्रेजों द्वारा छीनी जा चुकी थी फिर भी उसने अंग्रेजों की सहायता की परन्तु अन्त में कप्तान बैरी ने राजा हनुमन्त सिंह से कहा कि – ''तुम पर आफत आई मैने तुम्हें बचा लिया। किन्तु अब मैं अपनी सेना जमा करके लखनऊ जा रहा हूँ और तुम्हें मुल्क से बाहर निकालने की कोशिश करूंगा।''[7]

इतिहास से पता चलता है कि उस समय अवध के अन्दर अनेक हिन्दू और मुसलमान हनुमन्त सिंह मौजूद थे, जिनमें जितना जबरदस्त स्वाधीनता प्रेम था उतनी ही जबरदस्त वीरोचित उदारता भी थी। 10 जून के बीच केवल लखनऊ शहर के एक भाग को छोड़कर समस्त अवध स्वतन्त्र हो गया।

''दस दिन के अन्दर अवध से अंग्रेजी राज्य स्वप्न की तरह मिट गया। उसका कोई अवशेष बाकी न रहा। अवध निवासियों के जिन शासकों ने अपनी सत्ता के दिनों में, अत्यन्त अच्छी नियत से अनेक लोगों के साथ धोर अन्याय किया था उन शासकों का जब पतन हो गया तो अवध निवासियों ने उसके साथ अपने व्यवहार में उच्च श्रेणी की उदारता और दयालुता बरती।''[8]

अवध के विभिन्न भागों से जमीदारों के सिपाही और स्वयं सेवक सदस्यों की संख्या में अब लखनऊ में बेगम हजरत महल के झण्डे के नीचे आकर जमा होने लगे। अवध निवासियों की इस आजादी की लड़ाई में बेगम हजरत महल के अधीन अवध की अनेक स्त्रियों तक मरदाना भेष पहनकर हथियार बांधकर अपने अलग दल बनाकर लड़ रही थी।''[9]

अवध की अधिकांश प्रजा और वहाँ के प्रायः सब राजा, जमीदार और तालुकेदार सच्चे उत्साह के साथ इस युद्ध में शामिल थे। उनमें से अनेक ऐसे लोगे थे जिन्हें स्वयं अंग्रेजी राज्य के बजाय हानि से लाभ हुआ था, फिर भी

ये लोग अंग्रेजी राज्य के इस समय विकल शत्रु थे। बेगम हजरत महल ने इन्हीं लोगों के साथ मिलकर अंग्रेजो को बुरी तरह से अनेक बार पराजित किया था।

नाना साहब, बाला साहब, पिलायतशाह और अली खाँ मेवाती के अधीन हजारों सिपाही आकर जमा होने लगे। घाघरा नदी के किनारे चौक घट मे बेगम हजरत महल और सरदार मामू खाँ की सेना थी। रुइया का राजा नरपति सिंह, राज रामबख्स, बद्रनाथ सिंह, चन्दन सिंह, गुलाव सिंह, भूपाल सिंह, हनुमंत सिंह इत्यादि अनेक बड़े-बड़े जमीनदार अपने-अपने सैन्यदल के साथ अबघ को स्वतन्त्र करने की तैसारी में प्रयत्नशील थे।

अंग्रेज यह सुनकर चकित रह गये कि 13 महीने तक लगातार युद्ध जारी रहने और 6 महीने से ऊपर लखनऊ में रक्त की नदियां बहने के बाद कोई वीर लखनऊ पर हमला करने का साहस कर रहा है।

पहली नबम्वर को ''भारतीय नरेशों और भारतीय प्रजा के नाम'' मलिका विक्टोरिया का ऐलान भारत में प्रकाशित किया गया। इसके विरोध में हजरत महल ने लिखा कि-कम्पनी ने सारे हिन्दुस्तान पर कब्जा कर लिया, उसने बनारस के राजा को आगरे में कैद कर लिया है। बिहार, उडीसा, बंगाल के नरेशों का नाम निशाने तक नहीं छोड़ा। स्वयं हमारे साथ गद्दारी करके हमारा मुल्क और करोड़ो रुपयो का माल हमसे छीन लिया। मलिका को अपना बढाने की इच्छा नहीं हैं, फिर भी वह इन रियासतो को अपने राज्य में मिला लेने से बाज नहीं रह सकती।

उस ऐलान में लिखा है कि जिन लोगों ने हत्याये की हैं या हत्याओं मे मदद की हैं उन पर कोई दया न की जायेगी ,शेष सबको क्षमा कर दिया जायेगा। एक मूर्ख मनुष्य भी देख सकता हैं, कि इस ऐलान के अनुसार दोषी या निर्दोष मनुष्य नहीं बच सकता। हमारी प्रजा में से कोई अंग्रेजो के ऐलान के धोखे में न आए। ''मलिका विक्टोरिया के ऐलान के बाद भी अवध के अंदर आश्चर्यजनक युद्ध जारी रहा। हमारे लिए उन पर अचानक हमला कर सकना एक अलौकिक सी बात थी, क्योकि हमारे चलने की अफवाह, एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को हमारे सवारों से अधिक तेजी के साथ पहुँच जाती थी।''

रानी लक्ष्मीबाई का नाम इतिहास में स्वर्ण अक्षरो में अंकित है। रानी लक्ष्मीबाई का अंग्रेजो की सेना के सामने कुछ भी महत्व नही था फिर भी उसने शहीद की मौत ज्यादा पसंद की। झाँसी स्वाधीनता की विवेचना हम पिछले पृष्ठों में कर चुके हैं।

झांसी की सुरक्षा असम्भव समझकर रानी लक्ष्मीबाई 4 अप्रेल 1858 ई. की रात को अंधेरे में निकल पड़ी और बडी बहादुरी से लडती हुई कालपी पहुँची। कालपी में उस समय मध्य भारत के सब विद्रोही नेता एकत्रित थे। मई 1858ई. मे कालपी पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इसके पश्चात् सभी नेताओं ने सिंधिया की सेना की सहायता से ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। यद्यपि ग्वालियर का राजा अंग्रेजो का भक्त था। ग्वालियर की रक्षा करते हुए लक्ष्मीबाई को वीरगति प्राप्त हुई। भारतीय लोक परम्परा में उनकी स्मृति अत्यन्त वीर देश प्रेम से ओतप्रोत, साहसी सेनानी के रूप मे सुरक्षित है।[10]

इसमे कोई संदेह नही कि सिंधिया, होल्कर और राजपूताने के नरेशो का केवल संकोच और अतिश्वास के कारण उस राष्ट्रीय विप्लव में भाग न ले सकना। यदि राजपूत नरेश समय पर अपनी सेना सहित दिल्ली पहुँच जाते तो कम्पनी की सेना के लिए ठहर सकना सर्वथा असम्भव होता और राजधानी के अन्दर प्रभावशाली नेता की कमी पूरी हो जाती। सम्राट बहादुरशाह ने इन लोगो को विप्लव में भाग लेने के लिए अनेक पत्र लिखे, किन्तु उसे सफलता न मिल सकी।''

निष्कर्ष

1857 ई. के विद्रोह में उत्तर भारतीय रियासतो की महत्वपूर्ण भूमिका थी। इन रियासतो की भूमिका के आधार पर हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अंग्रेज चाहे कितने ही बहादुर क्यों न हो, यदि समस्त भारतवासी पूरी तरह इनके विरूद्ध हेा जाते तो भारत में अंग्रेजो का निशाना तक कही बाकी न रहा जाता । किलो के भीतर सेनाओं ने जिस तरह जी तोडकर अपने स्थानो की रक्षा की वह निसंदेह वीरोचित था। किन्तु इस वीरता में भारतवासी शामिल थे। राजा हमारे साथ वीरता न दशाते, सिक्ख हमारी पलटनो में भर्ती न होते और उधर पंजाब को ''शांत न रखते तो हमारा दिल्ली का मोह कर सकना सर्वथा असम्भव होता।''

इसमे काई संदेह नही कि अधिकांश रियासतों ने अपने देश की रक्षा स्वाधीनता के लिए विप्लव में भाग लिया था।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *सुन्दर लाल, भारत में अंग्रेजी राज्य, जिल्द तीसरी, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद,1929,पृष्ठ संख्या1386-88*
2. *केयजे डब्ल्यू, इण्डियन म्यूटिनी, वाल्यूम प्रथम, पृष्ठ संख्या 27*
3. *सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजी राज्य, जिल्द तीसरी,प्रथम संस्करण इलाहाबाद 1929 पृष्ठ संख्या 1442-43*
4. *सुन्दरलाल, वही. पृष्ठ संख्या 1446*
5. *गुप्ता, पी. सी. नाना साहब रेड दी एट कानपुर पृ. सं. 149*
6. *वही. पृ. सं. 164-165*
7. *मालसेन, इण्डियन म्यूटिनी वाल्यूम।।। पृ.सं. 273 फारेष्ट डब्ल्यूजी,सलेक्शन फ्राम दी स्टेट पेपर्स वाल्युम 2 पेज-2*
8. *वही. पृ. सं. 37*
9. *जैन, एम, एस, आधुनिक भारत का इतिहास दिल्ली 1977 पृ. सं. 210*
10. *सुन्दर लाल, भारत में अंग्रेजी राज्य, भाग 1, इलाहाबाद पृ.सं.1653*

आशा प्रभात के उपन्यासों में नारी अस्मिता का स्वरुप

दीपिका चौहान
शोधार्थी, गंगाधर मेहेर विश्वविद्यालय, संबलपुर (ओड़िशा)

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

'साहित्य में स्त्री विमर्श अस्मिता का वह आंदोलन है, जो हाशिए पर छोड़ दिए गए नारी अस्तित्व को फिर से केंद्र में' और उसकी मानवीय गरिमा को प्रतिष्ठित करने का अभियान है । जहां समाज स्त्री को दूसरे दर्जे पर रखता है, उसके मानवीय इकाइयों को गौण रखता है वहां साहित्य इसका विरोध करता है और स्त्री को जीवंत मानवीय इकाई के रुप में स्वीकार करने के प्रयास में है। अपने स्वत्व की तलाश में जुटी स्त्रीयों के मानसिक जद्दोजहद को आशा प्रभात अपने उपन्यासों में बखूबी दर्शाती हैं। लेखिका ने सीता, लता, मुक्ता के माध्यम से औरत से व्यक्ति बनने की जद्दोजहद को बहुत ही सहज भाषा में अभिव्यक्त करने का उपक्रम किया है । ये वो स्त्रियां हैं जो खुद की अस्मिता की रक्षा स्वयं करती हैं तथा अपने स्वाभिमान का रक्षा करते हुए रिश्तों के बंधन से खुद को आजाद करती हैं।

संकेताक्षर : *मानवीय मूल्य, लैंगिक विभाजन, स्वाभिमान, पितृसत्तात्मक, पारंपरिक माइंडसेट, स्टीरियो टाइप।*

द्रुत गति से होने वाले आधुनिक औधोगिक विकास, जनसंख्या विस्फोट तथा नगरीकरण के कारण आज का मानव मानसिक पीडाओं, व्ययाक्तिक कुंठाओं तथा आर्थिक विषमताओं से त्रस्त है। इसका मुख्य कारण मानव मूल्यों का हनन है

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने मूल्यों को अनेक भागों में विभाजित किया है। उन्ही के आधार पर मूल्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है –

- व्यक्तिगत मूल्य
- पारिवारिक मूल्य
- सामाजिक मूल्य
- राजनैतिक मूल्य
- धार्मिक मूल्य
- साहित्यिक मूल्य
- शैक्षणिक मूल्य /

साहित्य प्रारम्भ से ही अभिव्यक्ति का अच्छा स्रोत रहा है। साहित्य सृजन करते हुए साहित्यकार जीवन मूल्यों और उसके विकास की संभावनाओं पर निर्द्वन्द्व होकर विचार करता है। साहित्यकार के साहित्य में व्याप्त प्रथाएँ, रीति–रिवाज आदि उतर आते हैं। उपरोक्त मूल्यों में सर्वोच्च मूल्य है 'मानवीय मूल्य'। जिस समाज में मानवीय मूल्यों का विघटन होता है उस समाज का विध्वंस होना अनिवार्य है।

मनुष्य ईश्वर की श्रेष्ठतम रचनाओं में से एक है। जिसकी तुलना संसार के किसी भी जीव राशी से नहीं की जा सकती इसी बात को ''न मानुषात श्रेष्ठतंर हि किंचित'' जैसी पुरानी उक्तियों से ही सिद्ध किया जा सकता है। इसी

तरह की बात प्रकारान्तर से प्रस्तुत करने वाली हिन्दी–उर्दू लेखिका आशा प्रभात के उपन्यास मानव की (स्त्री के विशेष सन्दर्भ में) महत्ता को स्थापित एवं प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील है।

समाज में स्त्री के सती, दैवीय, आदर्श रुप को ही स्वीकारा जाता है समाज में माने जाने वाले आदर्श परिधि की सीमा लाँघने पर स्त्री को सवालों के कटघरे में खड़ा कर दिया जाता है। लेकिन स्त्री क्या सिर्फ बेटी, बहु, पत्नी, प्रेमिका मात्र है? रिश्तों के बंधन से परे, लैंगिक विभाजन से परे स्त्री सिर्फ मनुष्य नहीं है! स्त्री के लिए 'मैं कौन हूँ' का प्रश्न सदियों से चला आ रहा है। स्त्री में उतनी ही संवेदना होती है, ग्लानि, हर्ष–विषाद, स्वभिमाम, अहं भाव होता है जितना पुरुष में होता है पर स्त्री सिर्फ के लिए सदैव स्त्रित्व का प्रश्न क्यों? पितृसत्तात्मक समाज की यह कैसी विड़म्बना है जहाँ स्त्री को सिर्फ रिश्तों के दायरे तक ही सीमित रखता है वह मनुष्य के रुप में स्वीकार्य ही नहीं है और शायद इसीलिए ही सदियों से कन्यादान की प्रथा चली आ रही है। दान तो केवल वस्तुओं की हो सकती है फिर मनुष्य का दान कैसा?

आशा प्रभात के उपन्यासों के प्रमुख पात्र सीता, मुक्ता, लता, खुद को पहचानने और अपनी खुदी को बरक़रार रखने के लिए समाज की प्रताड़नाओं से निरंतर संघर्ष करती रहती हैं। आप ने शक्ति स्वरुपा, जगत जननी देवी रुप में पूजनीय सीता के भी मानवीय पक्षों का वर्णन अपने उपन्यास 'मैं जनक नंदिनी' में किया है। जहाँ सीता देवी या आदर्श नारी नहीं बल्कि सिर्फ मानवी है।

''मैं मानवी हूँ या कोई पाषण प्रतिमा? प्रतिमा ही हूँ कदाचित तभी तो जब जिसने जिस विधि चाहा व्यवहार किया है मेरे साथ। जहाँ इच्छा हुई वहाँ रख दिया, रखवा दिया या उच्छिष्ट मान उपसर्जित किया। दयावश किसी ने अपनाया किसी ने वस्तु समझ हरण किया और आत्महीन समझ किसीने निर्वासित।''

(मैं जनक नंदिनी, पृष्ठ संख्या –१७)

आशा प्रभात ने उपन्यास की भूमिका में इस बात का उल्लेख किया है आज तक जनमानस में सीता का आदर्श रुप ही दिखाया गया है – आदर्श बेटी, आदर्श पत्नी और मां के रुप में, परंतु इन रुपों में उसे बहुत संघर्ष करना पड़ा। लेकिन उसने एक कर्त्तव्यपरायण स्त्री के रुप में सभी कर्तव्यों का निर्वहन किया। लेकिन सीता की रची बसाई कथा होती तो फिर एक और सीता कथा लिखने की कोई आवयश्यकता नहीं थी ।

सीता के प्रति जो स्टीरियोटाइप विचारधारा है उसको खंडित करने का प्रयास किया गया है। सीता के मूल तथा समर्पित हिंदू स्त्री के रुप को दिखाया जाता रहा है लेकिन आशा प्रभात ने इसी रुप को विद्रोहिणी के रुप में देखा है। आज ऐसे हजारों स्त्रीयां हैं जो गृहिणी है और अपने कर्तव्यों का पालन करती हैं लेकिन वे मौन रहकर विद्रोह भी करती हैं । चाहे अमीरा त्रिपाठी की सीता हो या आशा प्रभात की सीता, दोनों कथाओं में सीता के विरांगन रुप को दर्शाया गया है। मैं जनक नंदिनी में सीता जनक की पुत्री सीता है न की राम की पत्नी । जब राम उससे वापस आने के लिए कहते हैं तो सीता राम से कहती हैं कि आपने अपने पति धर्म का निर्वाह नहीं किया इसलिए मैं जनक नंदिनी जानकी आपका परित्याग करती हूं। सीता का यह रुप शायद ही किसी ने सोचा होगा परंतु आशा प्रभात ने यह सत्य का उदाहरण अपने उपन्यास में किया।

कितनी पीड़ा सीता के मन में छुपी है। युग चाहे जो भी हो स्त्री के मानवीय पक्षों को सदैव ही गौण किया गया है इसलिए तो सीता स्वयं को पाषण प्रतिमा के रुप में अनुभव करती है जिसके साथ जिसने जैसे चाहा वैसा व्यवहार किया है कभी उसे वनवास तो कभी उसे निर्वासन मिला। स्त्री के सम्पूर्ण जीवन में उसे इतना भी अधिकार प्राप्त नहीं होता जहाँ वो अपने भीतरी द्वंद्व व्यक्त कर सके एवं अपने अधिकार की बात कह सके। उसके हिस्से में सिर्फ इतना अधिकार प्राप्त है कि उसके ऊपर थोपे गये निर्णयों को सहर्ष स्वीकार करे आप लिखती हैं –

''जीवन के इस लम्बे सफ़र में उसे मात्र इतना ही अधिकार मिला है कि वह हर दिए गए निर्णय के आगे ख़ामोशी से सर झुकाती जाये। जीवन के तमाम मोड़ों पर जितने पुरुषों ने साबला पड़ा, रिश्ते चाहे उनसे जो भी रहे हों, वे सारे के सारे पुरुष ही रहे हैं।''

(जाने कितने मोड़, पृष्ठ संख्या –2)

यथार्थ और आरोपित यथार्थ के बीच जीवन जीती महिलाएँ माँ के रुप में सर्वोच्च स्थान ग्रहण करती हैं, पत्नी के रुप में अर्धांगिनी का दर्जा पाकर परिवार के ताने–बाने में मौजूद रहती हैं परंतु वास्तविकता यह है कि व्यक्तित्वहीनता और पराश्रीतावस्था को उसकी व्यक्तित्व की बुनियादी आवश्यकताएँ बना दिया जाता है

ताकि हाशिये पर रखना आसन हो जाए।

''अब मैं सिर्फ मुक्त हूं । एक मां, एक व्यक्ति अपनी तरह से अपने शर्तों पर जीती।''

''मैं और वह'' (पृष्ठ. स. –26)

हमारे देश में नारी को कई नाम से पुकारा जाता है। देवी, लक्ष्मी, दुर्गा, गृहलक्ष्मी आदि परंतु क्या वो इतना सम्मान पति है जितना उनको शब्दों के माध्यम से दिया जाता है या फिर महिला दिवस में। जहां रिश्तों के बंधन में बांधकर स्त्रियों के स्त्रीत्व को छुपाया जा रहा है वहीं उसे में पूजा जाता है। त्रिकोण प्रेम संबंध में फंसी मुक्ता रिश्तों के बीच सिमट तो जाती है परंतु अंत में वह खुद को इस दलदल से निकालकर अपनी जिंदगी अपने शर्तों पर जीती है जहां न उसे किसी समाज के बंधन का एहसास होता है न ही कोई रिश्तों की बेड़ियां उसे अपनी ओर खींचती है। वह सिर्फ एक व्यक्ति है और एक व्यक्ति की तरह ही जीना चाहती है।। आशा प्रभात का उपन्यास स्त्री–पुरुष संबंध की बारीकी से पड़ताल करता है। मुक्ता के माध्यम से लेखिका ने औरत से व्यक्ति बन जाने की जद्दोजहद को बहुत ही सहज भाषा में अभिव्यक्त किया है।

कोरा आदर्शवादी चिंताधारा ने ही उसे अधिक स्त्री को रुढ़िवादी बना दिया है जिसके कारण वह सदैव हाशिये पर रही है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' के खयालों में केवल स्त्री को ऊँचा उठाया गया है उसे मानवीय बनने नहीं दिया। सीता के माध्यम से आशा प्रभात स्त्री मानस के तलघर को बिना किसी अवरुद्ध सामने रखते हैं। उनके उपन्यासों में स्त्री के मानवीय इयत्ता को पाने और जीने का स्वप्न है। मुक्ति के राहों में अविराम चलना उनका संकल्प है।

सीता, मुक्ता, लता के माध्यम से लैंगिक विभाजन के पक्ष को और मजबूत करना नहीं है बल्कि स्त्री मुक्ति है। पारम्परिक माइण्ड सेट को बदलना है। स्त्री चाहे जिस युग की हो उसे किसी आधार या ढाँचे में हम नहीं ढाल सकते। स्त्री चाहे जैसी भी हो जिस रुप में हो उसे उसी रुप में स्वीकार करना चाहिए ना कि उसे विभिन्न उपमानों से सजाकर उसके मानवीय पक्षों को गौण करना चाहिए।

''स्त्री ना देवी है ना दानवी है,
हाड़–मांस युक्त वह भी मानवी है !!''

निष्कर्ष

इस समय आवश्यकता है एक ऐसे देशव्यापी आंदोलन की जो सजग कर दे। जहां सिर्फ नारी उत्थान की बातें ना हो बल्कि उस पर अमल भी की जाए। उन्हें इस दिशा में प्रयत्नशीलता बना दे जिससे मनुष्य जाति के कलंक के समान लगने वाले इन अत्याचारों का तुरंत अंत हो जाए अन्यथा नारी के लिए नारीत्व अभिशाप तो है ही। नारी ने अपनी शक्ति को कभी जाना और कभी नहीं जाना। वर्तमान युग तो उनके न जानने की ही करुण कहानी है। सभी स्त्रीयों में यह चेतना लानी होगी की वह रिश्तों से परे एक व्यक्ति भी है। एक अलग पहचान होती है और उनका अलग अस्तित्व होता है। स्त्री को मनुष्य के रुप में प्रतिष्ठित करना, शोषण और उत्पीड़न के विरोध संघर्ष करना, स्त्री को अपने अस्तित्व और अस्मिता की पहचान करवाना, मानसिक रुप से उनको सुदृढ़ बनाना। मानसिक और शारीरिक शोषण के खिलाफ आवाज उठाना, तथा स्त्री को अपने भीतर सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक रुप से परिवर्तन लाना आदि उद्देश्य है ।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *मैं जनक नंदिनी, राजकमल प्रकाशन, 2017*
2. *मैं और वह, राजकमल प्रकाशन, 2006*
3. *जाने कितने मोड़,नेशनल पब्लिकेशन हाउस, 2004*
4. *श्रृंखला की कड़ियां – महादेव वर्मा लोकभारती प्रकाशन 2007*
5. *भारतीय साहित्य में स्त्री विमर्श, प्रो. चंपक पटेल जे. टी. एस, पब्लिकेशन, 2018*
6. *देवदत्त पटनायक, सीता – रामायण का सचरित्र का पुनर्कथन, पेंगुइन बुक्स, 2017*
7. *अमीरा त्रिपाठी, सीता – मिथिला की योद्धा, वेस्टलैंड पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, 2017*

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का शैक्षिक दृष्टिकोण एवं प्रांसगिकता

विशाखा सिंह नेहा
जयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

डॉ. अम्बेडकर बीसवीं शताब्दी के यशस्वी वक्ता, ओजस्वी लेखक, श्रेष्ठ चितंक, महान शिक्षाविद, भारतीय संविधान सभा के सदस्यों मं सर्वाधिक शिक्षित व्यक्ति तथा स्वतंत्र भारत के प्रथम कानून मंत्री थे। उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं असीम ज्ञानकोश उन्हें इतिहास में विशेष स्थान प्रदान करता है। ज्ञानी सर्वगुण सम्पन्न अम्बेडकर जी ने समाज के वंचित वर्ग एवं महिलाओं का उद्धार शिक्षा को सर्वश्रेष्ठ माध्यम मानते हुये करने का प्रयास किया। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार बुद्धि का विकास मानव के अस्तित्व का अंतिम लक्ष्य होना चाहिये। डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि हमारी सभी सामाजिक उत्पीडन के लिये शिक्षा एकमात्र दवाई है । प्लेटो के समान अम्बेडकर ने शिक्षा को व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में डॉ. अम्बेडकर ने शिक्षित बनो संगठित रहो संघर्ष करो का नारा देकर प्रोत्साहित किया जो सामाजिक एवं आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक डॉ. अम्बेडकर के जन्मदिवस 14 अप्रेल को विद्यार्थी दिवस के रुप में मनाया जाता है। अम्बेडकर ने विद्यावान होने के साथ-साथ शीलवान होने पर भी जोर दिया और कहा कि डिग्रीयां महज कागज है वो बुद्धिमत्ता व परिपक्वता नहीं लाती है जो आज भी प्रांसागिक है। सर्वशिक्षा, स्त्रीशिक्षा, निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा, विज्ञान व प्रोद्योगिकी पर जोर देने वाली शिक्षा, समान शिक्षा आदि अवधारणाओं के प्रेरणा स्रोत अम्बेडकर जी ही माने जाते है। जिनके विचार शिक्षा के क्षेत्र का आधार स्तम्भ है। अम्बेडकर जी ने अनिवार्य शिक्षा के विचार को भारतीय संविधान के राज्य की नीति निदेशक तत्वो में सम्मिलित किया है। अम्बेडकर जी ने अपनी शिक्षा योजना में समानता एवं स्वतंत्रता पर बल दिया जो आज भी प्रशंसनीय है।

संकेताक्षर : *शिक्षा का महत्व, सर्वशिक्षा, स्त्रीशिक्षा, प्रांसगिकता, समान शिक्षा, डॉ. अम्बेडकर, शैक्षिक दृष्टिकोण।*

भारतीय संविधान के निर्माता डॉ. अम्बेडकरजी ने सामाजिक एवं लैंगिक समानता की प्राप्ति करने का आधार स्तम्भ शिक्षा को बताया। डॉ. अम्बेडकर जी की हार्दिक अभिलाषा थी कि शिक्षा के माध्यम से सामाजिक समस्याओं का समाधान निकाला जाये। इसके लिये शिक्षा में उन्हे सकारात्मक कार्यक्रम की झलक दिखी उन्होनें जन जन में शैक्षिक चेतना का होना जरुरी समझा। उनका विश्वास था कि शिक्षा ही एक ऐसा शक्तिशाली शस्त्र है जिसके द्वारा हिन्दू समाज में प्रचलित कुरीतियों को अधिक प्रभावशाली ढंग से समाप्त करना संभव है। अम्बेडकर जी शिक्षा के माध्यम से सत्य की खोज एवं मानवता का पालन करने के समर्थक थे। संविधान के जनक एवं दलितोद्धारक के रुप में अम्बेडकर जी का स्थान अति महत्वपूर्ण है।

डॉ. अम्बेडकर भारतीय संविधान के न केवल शिल्पकार अपितु आधुनिक भारत के निर्माता भी थे। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी डॉ. अम्बेडकर विचारक, पत्रकार, लेखक, अर्थशास्त्री, राजनीतिज्ञ, शिक्षक, विधिवेता एवं समाज सुधारक थे। वर्तमान प्रचलित अस्पृश्य जाति के रुप में असीमित पीडा, हताशा, निराशा तथा दर्द का अनुभव करने वाले डॉ. अम्बेडकर जी महान मानवतावादी सम्पूर्ण जाति की एकता तथा अखण्डता, समानता, कमजोर व निम्न वर्गो के प्रति निष्ठा, जातिगत भेदभावों का निषेध एवं सभी नागरिकों के लिये शिक्षा का अधिकार महत्वपूर्ण तत्व है। विडम्बना यह है कि डॉ. अम्बेडकर जी की आज भी एक वर्ग विशेष के हितैषी के रुप में प्रचलित किया और समझा जाता है किन्तु भारत को सफल संविधान देने वाले बाबासाहेब एक महान शिक्षाविद् भी थे। उन्होने केवल औपचारिक

शिक्षा पर ही नहीं अपितु व्यवहारिक एवं नैतिक शिक्षा पर भी बल दिया है।

प्रस्तुत शोध के आलेख में डॉ. अम्बेडकर जी के शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा की व्यवहारिक जीवन में प्रांसगिक एवं सार्थकता का सामयिक संदर्भ में विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

शिक्षा का अर्थ

अम्बेडकर जी का मत था कि दलित वर्गो में शिक्षा के लिये जागरुकता उत्पन्न करना ही पर्याप्त नहीं होगा । उनकी मान्यता थी कि केवल स्कूलों, महाविद्यालयों तथा तकनीकी शिक्षण संस्थानों में आरक्षण से भी इन वर्गो को शैक्षणिक उन्नति और इन्हें उपयुक्त और सम्मानजनक व्यवसायों में लगाना तभी संभव होगा जबकि इस दिशा में राज्य द्वारा सकारात्मक प्रयत्न किये जाये तथा ऐसा प्रावधान किया जाये कि वे अन्य वर्गो के समकक्ष आकर शिक्षा की सुविधाओं का लाभ उठा सके।

उनका विश्वास था कि शिक्षा मनुष्य के सर्वागींण विकास के लिये आवश्यक है। शिक्षा के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने कर्तव्यों एवं अधिकारों का निर्वहन एवं संरक्षण नहीं कर सकता है। डॉ. अम्बेडकर शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का आवश्यक उपकरण मानते थे। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार जो व्यक्ति पढ़ेगा, लिखेगा, शिक्षित होगा उसे गुलामी का अहसास होगा तो वह बगावत करेगा जिससे समाज का कल्याण होगा। डॉ. अम्बेडकर ने शिक्षा को प्रगति का मार्ग बताया है।

शिक्षा का लक्ष्य

विद्यार्थी की बौद्धिक क्षमता का विकास करना तथा उसमें जिज्ञासा पैदा करना जिससे आत्मदोषी अवः चरितार्थ हो ताकि विद्यार्थी के व्यक्तित्व का विकास हो सके जिससे नैतिकता और समाजीकरण की प्रवृति बढ़ेगी तथा लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास होगा। व्यक्ति में आत्मसम्मान और सम्मान की भावना पैदा करना शिक्षा का मुख्य ध्येय है जिससे चरित्र निर्माण को प्रोत्साहन मिले तथा व्यक्ति में सही योग्यता का विकास हो। जिससे वह दूसरों को शिक्षा प्राप्ति के लिये प्रेरित करे एवं समाज में चहुमुखी विकास हो। समाज कल्याण की भावना विकसित हो समाज में समानता की भावना बनी रहे एवं विकास की ओर अग्रसर हो।

पाठ्यचर्चा

डॉ. अम्बेडकर जी सजातीय भेदभाव का विरोध करते है। उपयोगिता के सिद्धान्त पर आधारित नैतिक शिक्षा और इस तरह की गतिविधियां नागरिकों के मुख्य विकास सुनिश्चित करती हे। सामान्य मानविकी विषयों के साथ–साथ विज्ञान प्रोद्योगिकी का अध्ययन भी अति महत्वपूर्ण है। मानसिक शिक्षा के साथ–साथ शारीरिक गतिविधि भी महत्वपूर्ण है ताकि व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास हो सके।

शिक्षक विधि

डॉ. अम्बेडकर ने मातृभाषा में शिक्षा पर बल दिया है। मातृभाषा के उपयोग से भारतीय संस्कृति का परिचय पढ़ने में सहजता का भाव होता है। सर्वागींण गुणो के विकास में बाधा उत्पन्न नहीं होती है। जो आत्मीयता मातृभाषा में आ सकती है वह किसी अन्य भाषा में संभव नहीं है।

त्रयी दर्शन

डॉ. अम्बेडकर ने अपने प्रारम्भिक सामाजिक जीवन से ही वह स्वतंत्रता, समता तथा भ्रातृत्व और शिक्षा, संगठन और आन्दोलन के दो त्रयी आदर्शों को अछूतों के बीच उनके सामाजिक उत्थान और मानवीय गौरव के लिये प्रभावित करते रहे।

छात्रावास

निचले तबके की शिक्षा देकर प्रोत्साहित करना उनका प्रमुख कार्य था जिसके लिये उन्होने संबंध पहले शिक्षा को प्रेरित किया और छात्रावास बनवाएं ताकि शिक्षा प्राप्ति के दौरान उन्हें रहने के लिये आश्रय मिल सके और अन्ततः उनके प्रयासों के कारण पीपुल्स एजुकेशन सोसायटी के तह कॉलेज के एक नेटवर्क का निर्माण हुआ जो आज भी विकास के पथ पर अग्रसर है ।

विद्यालय संकल्पना

विद्यालय में सभी विद्यार्थियो को एक जैसे वस्त्र, योजना, आसन प्रदान किये जाने चाहिये अर्थात सभी विद्यार्थियो से बिना किसी भेदभाव के समान व्यवहार किया जाना चाहिये चो वे राजा या दरिद्र की संतान हो।

छात्रावास में माता–पिता के साथ पत्राचार भी होना चाहिये। विद्यार्थी को आध्यात्मिक शिक्षा के साथ–साथ नैतिक चरित्र को उन्नत करने वाले कार्यो को भी करवाना चाहिये। शारीरिक कार्यो के लिये विद्यार्थियो को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये ताकि वे स्वस्थ हो।

शिक्षक संकल्पना

शिक्षक वक्ता, अनुभवी होना चाहिये। वह विद्यार्थी के

मार्गदर्शक के रुप में कार्य करे जिससे विद्यार्थी विकसित हो। शिक्षक समाज की वास्तविकता से विद्यार्थियो को अवगत करवाये । शिक्षक विद्यार्थियो में भेदभाव एवं पक्षपात न करे सभी विद्यार्थियो के साथ समान व्यवहार करे एवं सभी विद्यार्थियो को समान अवसर प्रदान करे।

विद्यार्थी संकल्पना

विद्यार्थी में सीखने की इच्छा होनी चाहिये। विद्यार्थी को अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरुक रहना चाहिये। स्वस्थ विद्यार्थी ही शिक्षा के सभी भाषाओं के अनुरुप स्वयं का विकास कर सकता है तथा शारीरिक व नैतिक शिक्षा को भी प्राप्त कर सकता है।

धार्मिक शिक्षा

अम्बेडकर जी ने मार्क्स की भांति धर्म को जनता के लिये अकीय माना है। व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक व्यवहार के लिये धर्म एक आवश्यक आधार है किन्तु इसकी प्रांसगिकता और श्रेष्ठता का निर्णय सामाजिक आचार परक नैतिकता के मानदण्ड से होना चाहिये । हिन्दू धर्म का एक प्रमाणिक ग्रन्थ हो इसकी वकालत अम्बेडकर जी करते है तथा इसके साथ ही पुरोहितीय पदो पर उत्तराधिकार की व्यवस्था समाप्त हो और इस पर नियुक्ति एक परीक्षा पद्धति के आधार पर हो जो सभी के लिये कुली हो, धार्मिक ग्रन्थो में समानता आधारित शिक्षा हो।

स्त्री शिक्षा

डॉ. अम्बेडकर जी स्त्री समानता के प्रबल समर्थक थे। भारत का संविधान स्त्रियों को समान मतदान का अधिकार देने वाला प्रथम संविधान था जिसके निर्माता डॉ. अम्बेडकर थे । उनके एक शिक्षित स्त्री अपने बच्चो को अच्छे व नैतिक विचारो की सीख देती है जिससे राष्ट्र का कल्याण समाज में समानता आदि का गुण विकसित होते है।

भारतीय संविधान में महिला को समकक्षता प्रदान करते हुये प्रावधान किया है राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, प्रजाति, लिंग जाति, जन्मस्थान या इनमें से किसी भी आधर पर कोई विभेद नहीं करेगा।

भारतीय सामाजिक एवं राष्ट्रीय विकास के लिये महिला शिक्षा अत्यनत आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। शिक्षा के संदर्भ में कहा गया है कि अगर पुरुष शिक्षित होता है वह केवल व्यक्तिगत जीवन के लिये शिक्षित होता है लेकिन महिला शिक्षित होती है तो पूरा परिवार शिक्षित माना जाता है। बालक की प्रथम पाठशाला उसकी मां होती है। स्त्री शिक्षित होगी तो वह एक संस्कारी युवा वर्ग का निर्माण कर देशहित का कार्य करेगी।

अनुशासन

डॉ. अम्बेडकर जी के अनुसार शिक्षक को विद्यार्थी के समक्ष उचित आचरण करना चाहिये। शिक्षा के क्षेत्र में डॉ. अम्बेडकर जी अनुशासन के महत्व को स्वीकार करते है। अम्बेडकर जी मानसिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षा एवं नैतिक शिक्षा के समर्थक थे।

योगदान

डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक स्वतंत्रता को महत्वपूर्ण माना है उन्होने शिक्षा के साव्रभौमिकत्व पर बल दिया है। अम्बेडकर जी महिला शिक्षा के समर्थक है। उनका मानना था कि सामाजिक मुक्ति में महिला की भूमिका महत्वपूर्ण है। नैतिक शिक्षा व चरित्र निर्माण के लिये शिक्षा अहम है। शिक्षा को नौकरी उन्मुख होना चाहिये। शिखा से महत्व के पद व सत्ता प्राप्ति के लक्ष्य गौरवान्वित होते है। अम्बेडकर जी ने शिक्षा और शील दोनो के समन्वित योग पर बल दिया जो समाज में न्याय दिलाने के लिये अतिमहत्वपूर्ण है। विद्यार्थी को अपने क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ जगह प्राप्त करनी चाहिये ।

प्रांसगिकता

डॉ. अम्बेडकर जी के शिक्षा संबंधी विचारो की प्रांसगिकता यह है कि वर्तमान समय में युवा पीढ़ी के नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है डॉ. अम्बेडकर शिक्षा की उपयोगिकता को मानव जीवन के विकास एवं समाज कल्याण के लिये आवश्यक मानते थे।

डॉ. अम्बेडकर जी तात्कालिक प्रचलित शिक्षा प्रणाली से संतुष्ट नहीं थे जिसमें समानता व स्वतंत्रता विद्यमान न हो। अम्बेडकर जी सर्वशिक्षा के समर्थक थे जिसमें महिला व वंचित वर्ग दोनों सम्मिलित है। अम्बेडकर जी ने शिक्षा को सामाजिक प्रगति की कुंजी कहा इसलिये मुक्त व अनिवार्य शिक्षा का समर्थन किया। इनका मानना था कि मनुष्य को अपने अधिकारो के साथ–साथ अपने साथी प्राणियों के प्रति दायित्वों के प्रति जागरुक करता है।

डॉ. अम्बेडकर – शिखा न केवल हर इंसान का जन्मसिद्ध अधिकार है बल्कि सामाजिक परिवर्तन का भी हथियार है ।

शिक्षा वह है जो किसी व्यक्ति को निडर बनाती है,

एकता का पाठ पढ़ाती है, उसे उसके अधिकारों के बारे में बताती है और उसे अपने अधिकारों के लिये संघर्ष करने के लिये प्रेरित करती है।

नारा – शिक्षित बनो, एकजुट रहो व उत्तेजित रहो।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार शिक्षा प्रभावशाली व्यक्तित्व का धनी, उच्च गुणों से युक्त सामाजिक समानता का पक्षधर, मानसिक विचारों से रहित एवं स्वस्थ होगा तो विद्यार्थी अनुशासित रहेगा एवं असमानता का ग्राफ स्वतः ही धट जायेगा। डॉ. अम्बेडकर स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे उनका कहना था कि मैं किसी भी समुदाय की प्रगति उस समुदाय की ये महिलाओं के द्वारा हासिल की गयी उपलब्धियों से मानता है।

वर्तमान में एक ओर ज्वलंत समस्या उभर कर सामने आ रही है वह है शिक्षण संस्थाओं में बढते अपराध जिसका उपाय शिक्षा में सामाजिक आर्थिक समानता को लागू करना है जिससे अपराध नियंत्रित होगी। इसके साथ ही स्त्री शिक्षा से बालक के नैतिक गुणों का विकास होगा।

शिक्षक के धनी गुणों से युक्त होने पर कक्षा में अनुशासन विद्यमान तो अपराध कम होगे। डॉ. अम्बेडकर शिक्षा के माध्यम से छात्रों को संगठित करना चाहते थे। वर्तमान समय में अंग्रेजी शिक्षा का अधिक महत्व दिया जा रहा है जबकि अम्बेडकर जी ने मातृभाषा में प्रारम्भिक शिक्षा को महत्व दिया जिससे बालक का सर्वांगीण विकास होता है जिसे नई शिक्षा नीति 2020 में भी शामिल किया गया है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 *श्रीमती पूजा शर्मा : महिलाएं एवं मानवाधिकार पृ.सं. 197–213*

2 *अशोक कुमारी : गौतम बुद्ध एवं डॉ. अम्बेडकर के शैक्षिक विचारो की वर्तमान प्रांसगिकता International Journal of Applied research 2015 # I (II) 822*

3 *डॉ. सुधांशु शेखर : डॉ. अम्बेडकर का शिक्षा दर्शन, ज्ञान गरिमा सिंधु, अंक 63 जुलाई , सितम्बर 2019*

4 *फणीश सिंह : राष्ट्रीय महत्व के 100 भाषण (शोषित के हित), 2010 पृ. 135–137*

5 *विद्युत चक्रवृर्ती, राजेन्द्र कुमार पाण्डेय, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक पृ.93–113*

6 *थॉमस प्रथम, केनेश एवं डॉयच : आधुनिक भारत में राजनीतिक विचार पृ.153–169*

7 *डॉ. सोहन राज तातेड, डॉ. विद्यासागर सिंह : आधुनिक भारत के चिन्तक पृ.23–69*

8 *डॉ. मधुमुकुल चतुर्वेदी,: प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक पृ. 295–334*

9 *शीला बसवाल : भारतीय राजनीतिक विचारक, 2019 पृ. 266–291*

10 *मो.जोहा सिद्दीकी : भारतीय राजनीतिक चिन्तक पृ. 186–197*

आई पंथ का मुख्य स्तम्भ – बडेर

तुलसीराम सीरवी
शोधार्थी, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

कोई धर्म अथवा पंथ व्यवस्थित रुप से लोगों में आस्था का केंद्र बने तथा जनता में लोकप्रिय हो इसके लिए आवश्यक है कि उससे सम्बंधित ऐसे नियम बनें जिनसे समाज में नैतिकता व मानवता बनी रहे। आईपंथ में श्री आईमाता जी ने एक नई धार्मिक व्यवस्था स्थापित की। जिससे यह पंथ आस्था का केंद्र भी बना एवं इसमें आचार – विचार की शिथिलता का प्रवेश न हो। यह व्यवस्था आईपंथ के महत्वपूर्ण स्तम्भ हैं जो आज भी इस पंथ की जड़ों को दृढ़ता से स्थापित किये हुए है। आई पंथ की व्यवस्था के अंतर्गत प्रमुख स्तम्भ निम्नलिखित है – बडेर, दीवान पद परम्परा, आईमाता जी की भैल, बाबा मण्डली, कोटवाल, जमादारी व खुटियां पंच।

संकेताक्षर : *आई माता, सीरवी समाज, आईपंथ, बडेर, बिलाड़ा, गादी, दीवान, केसर, अखंड ज्योत, बडेर।*

सीरवी जो पहले क्षत्रिय (खारड़िया राजपूत) थे। जिन्होंने अस्त्र–शस्त्र त्याग कर खारी–खाबड़ नदी के किनारे वहाँ के किसानों से सीर में खेती करना प्रारम्भ किया और खारड़िया सीरवी कहलाए। कृषि और पशुपालन का व्यवसाय करने वाले सीरवी समाज ने अलग–अलग क्षेत्रों में अलग अलग देवी–देवताओं को अपना आराध्य देव माना। इस जाति में श्री आईमाता के उपासक अत्यधिक मात्रा में है। श्री आई माता के अनुयायी आई पंथी कहलाते है। थूल पंथ के अनुयायी चार भुजा (विष्णु), भगवान शिव, ठाकुरजी, हनुमानजी व कृष्ण भगवान की उपासना के साथ श्री आई माताजी में भी अखंड आस्था रखते है। सैणचा भगत समूह के लोग द्वारकाधीश श्री कृष्ण के अवतार श्री जानराय जी भगवान के अनुयायी है।

15 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में गुजरात के अम्बापुर में जन्मी कन्या का नाम जीजी रखा गया जो बाद में सीरवी समाज की अधिष्ठात्री देवी आईमाता नाम से विख्यात हुई। आई पंथ की धार्मिक व्यवस्था में श्री आईमाता ने पहली और महत्वपूर्ण जो व्यवस्था बनाई थी वह थी बडेर। मारवाड़ क्षेत्र में बडेरा शब्द का अर्थ होता है पूर्वज और बडेर का शाब्दिक अर्थ है बड़ा घर अर्थात सबसे बुजुर्ग व्यक्ति का घर। ग्रामीण अंचल में जब सबसे पहले गाँव में कोई व्यक्ति जिस घर में बस जाता था तो परिवार के अन्य सदस्य और आने पीढियाँ उस घर को बडेर कहती थी। इस प्रकार बडेर को पूर्वजों का घर माना जाता है। आई पंथ में भी बडेर अर्थात आई पन्थ का वो स्थल जो उसकी उत्पत्ति से सम्बंधित है। जहाँ से इस पंथ का प्रारम्भ किसी न किसी रुप में जुड़ा हुआ है।

हिन्दू धर्म में धार्मिक स्थलों को मंदिर, देवालय, मठ अथवा आश्रम के नाम से जाना जाता है परन्तु आईपंथ के धार्मिक स्थल का नाम बडेर रखा गया। लालुराम मुलेवा के अनुसार आईपंथ की स्थापना के समय भारत में मुस्लिम शासकों का प्रभुत्व था और उनके द्वारा मंदिर, मठ, आश्रम और अन्य धार्मिक स्थल नष्ट कर दिए जाते थे। इस असुरक्षा के कारण इन स्थानों का नाम बडेर रखा गया ताकि मुस्लिम शासकों के दुराचार से सुरक्षा हो सके।[1] सामान्यतया मंदिर अथवा देवालय जिस शैली में निर्मित होते हैं बडेर की स्थापना उस शैली में नहीं की गयी। बडेर को साधारण गृहस्थी के घर के रुप में रखा गया। माता जी की गुजरात से बिलाड़ा तक यात्रा की अवधि में जिन स्थानों पर विश्राम किया और अपने चमत्कार दिखाए उन सभी स्थानों पर माता जी की बडेर बनी हुयी है तथा अखंड ज्योत प्रज्वलित है। अर्थात वो सभी स्थान जहाँ माताजी स्वयं प्रत्यक्ष रुप से उपस्थित थी उन स्थानों को बडेर रुप में

मान्यता प्राप्त है। माताजी ने अपने अंतर्धान होने तक बिलाड़ा में निवास किया। बिलाड़ा में ही आईमाता की मुख्य बडेर स्थित है।

श्री आईजी गुजरात से विभिन्न स्थानों की यात्रा करते हुए मारवाड़ पधारीं थे मारवाड़ में बिलपुर स्थान पर बीला हाम्बड़ द्वारा अपमानित होने के पश्चात् आईमाता जाणोजी के घर पहुँचे तथा वहाँ एक झोपडी बांधकर रहने लगे। वहीँ ज्योति प्रज्ज्वलित कर माताजी तपस्या करते हुए लोगों को उपदेश देते और साधारण जन का उद्धार करते। एक दिन माता जी ने सबको एकत्र करके कहा – मैं भगवान शिव के ध्यान में मग्न हो जाना चाहती हूँ। सब लोग नियम संयम से अपना जीवन बिताना। मर्यादा मत छोड़ना। दीवान की आज्ञा का पालन व पंथ के नियमों का अनुसरण करना। अहंकार मत करना। सभी लोग मेरे द्वारा निर्धारित ग्यारह नियमों का पालन करना। मैं सदा साक्षात् रहूंगी। जब भी पुकारोगे मैं आशीर्वाद देने आउंगी। इतना कहकर माताजी पश्चिम दिशा की ओर मुंह करके विराजित हुए। सामने घी का दीपक जलाया। कुटिया के किवाड़ पर अन्दर की ओर दाहिनी तरफ कलश स्थापित किया और दरवाजे पर धुप करवाया। गोयन्द जी और सभी सिद्ध संतों को आज्ञा दी कि मैं सात दिन तक अपनी कुटिया में रहकर समाधिस्थ रहूंगी। इस मध्य कोई भी कुटिया में न तो प्रवेश करे और न ही भीतर झांके। आप लोग सात दिन तक कुटिया का किवाड़ मत खोलना। बाहर बैठे धुप करना, कांसा नैवेद्य बरतना और मीठे वचन बोलना, भगवान का नाम जपना और ध्यान करना।[2]

माता की समाधी अवस्था को पाँच दिवस व्यतीत हो गए। भक्त लोग माता के दर्शनों के बिना व्याकुल हो उठे और माता की वर्जना–निर्देश विस्मृत कर गए। उन्होंने कुटिया का किवाड़ खोल कर भीतर प्रवेश कर माता का दर्शन करना चाहा। भीतर अजब दृश्य था। माता तो वहाँ थी ही नहीं। वहाँ एक अद्‌भुत प्रकाश पुंज था। पाट पर उनकी छड़ी, पुस्तक और माला रखी हुयी थी। माता की चुनर भी पाट पर रखी हुयी थी। धरती पर खड़ाऊ रखी हुई थी। खड़ाऊ पर गुलाब के पुष्प धरे थे। माता तो अंतर्धान हो गयी थीं। भक्तजनों ने पाट सजाया। खड़ाऊ भी पाट पर स्थापित की तथा माता की सभी वस्तुओं को भली प्रकार सुस्थापित किया।[3]

जिस दिन माता जी अंतर्धान हुए वो चैत्र माह की शुक्ल पक्ष की द्वितीय तिथि, बसंत ऋतु संवत् 1561 सर्वमान्य है। आई पंथ की सभी पुस्तकों में इस घटना का वर्णन मिलता है जिसके अनुसार आई माताजी वि. सं. 1561 में अंतर्धान होकर प्रकाश पुंज स्वरुप ज्योति में समाहित हो गए। तब से लेकर वर्तमान तक आई पंथी अखंड ज्योत को पवित्र और पूज्य मानते हैं। आईमाता के मंदिरों में अखंड ज्योत का विशिष्ट स्थान है। इसके दर्शन के बिना माता जी की पूजा अधूरी मानी जाती है। इस अखंड ज्योत की विशेषता यह है कि इसमें ज्योत के धुएं से काले काजल के स्थान पर केसर गिरता है। इससे प्रमाणित होता है कि यह ज्योत साधारण न होकर अलौकिक या दैवीय शक्ति द्वारा उत्पन्न ज्योत है। आईमाता साधारण जन के कल्याण के लिए अवतरित हुई थीं। जिस झोंपड़ी में माताजी तपस्या करते हुए अंतर्धान हुयी उसी स्थान पर आई माता जी का संगमरमर का भव्य मंदिर बना हुआ है और वह झोपड़ी प्रतीक रुप में मंदिर के ऊपर वर्तमान है। मंदिर का निर्माण सर्वप्रथम दीवान करमसिंह ने करवाया।[4]

बिलाड़ा की बडेर का निर्माण एक विशाल भू–भाग पर हुआ है। स्थापत्य की दृष्टि से यह भवन कला की अद्‌भुत कृति है। बडेर के मुख्य प्रवेश द्वार के सामने एक चौक बना हुआ है, जिसे बडेर चौक कहते है। इस चौक में विभिन्न प्रकार की दुकानें लगी हुई है जिनमें माताजी के लिए पूजन सामग्री आदि मिलती है। मुख्य द्वार किसी दुर्ग के मुख्य प्रवेश द्वार के समान प्रतीत होता है। मुख्य भवन विशाल परकोटे में विभिन्न प्रकार के महलों और प्राचीन भवनों के मध्य स्थित है। वह संगमरमर का बना हुआ है। मुख्य भवन के प्रवेश द्वार पर मुख्य कक्ष अर्थात मंदिर के गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर संगमरमर के दो सिंह स्थापित है। ये सिंह इस बात का प्रतीक है कि धर्म का पालन करने वाले व्यक्ति को निर्भय रहना चाहिए। मुख्य प्रवेश के सामने दर्पण लगा है। निज कक्ष के बाहर एक बड़े आकार का संगमरमर का कलश रखा हुआ है। जिसमे किसान अपनी फसल का कुछ भाग इसमें अर्पण करते हैं तथा धन – धान्य से भरपूर होने की प्रार्थना करते हैं। गर्भगृह में निर्मित चांदी के सिंहासन पर माँ आईजी की भव्य तस्वीर है। उस तस्वीर में श्री आईजी को यौवनावस्था रुप में ध्यानमग्न दिखाया गया है। चांदी का सिहांसन जिस स्थान पर है वहाँ लगभग 80–85 वर्ष पूर्व एक कपड़े का पर्दा लगा रहता था जिस पर त्रिशूल की आकृति बनी हुई थी।

सिंहासन तथा तस्वीर के स्थापित होने की कथा इस प्रकार है – दीवान हरिसिंह जी सन 1934 में मालवा मिमाड़ की यात्रा में उन्हें जो भेंट प्राप्त हुई, उससे उन्होंने चांदी क्रय की। कुछ समय पश्चात् गुजरात यात्रा के समय स्वामी नारायण मंदिर में चांदी का सिंहासन देखकर उनकी इच्छा हुई कि माता जी के लिए भी चांदी के सिंहासन की व्यवस्था की जाए। वहीँ पर स्थानीय कारीगरों को यह कार्य करने का आदेश दिया गया। जिस लकड़ी के सिंहासन पर चांदी का पत्र (पतरा) लगाया जाना था उसका निर्माण बिलाड़ा में प्रारम्भ हुआ। जब यह कार्य पूर्ण होने वाला था तब दीवान जी पुष्कर पशु मेले में घोड़े क्रय करने के लिए गए। यह सूचना मिलते ही स्थानीय लोग उनके दर्शनार्थ भेंट लेकर उनके समक्ष उपस्थित हुए। भेंट की सामग्री लेकर जब वापस बिलाड़ा पहुंचे तब तक सिहांसन बनकर माताजी के मंदिर में स्थापित हो चुका था। परन्तु सिंहासन रिक्त था। यह कमी सभी को महसूस हो रही थी। परन्तु सिंहासन पर किसे विराजित किया जाए इस बात का ख्याल सिंहासन निर्माण करते समय किसी को नहीं आया। उस स्थिति में किसी ने सुझाव दिया कि पुष्कर से प्राप्त भेंट में एक माताजी की तस्वीर भी है। तस्वीर सभी को पसंद आई और यह निश्चित हुआ कि तत्काल समाधान के रुप में अभी तो यह तस्वीर यहाँ रख दी जाए बाद में कुछ व्यवस्था करेंगे। उसी दिन शुभ मुहूर्त में उस तस्वीर को सिंहासन पर स्थापित कर दिया गया। इस तस्वीर में आठ भुजाओं वाली माता सिंह की सवारी किये हुए है तथा आगे–पीछे काले–गोरे भेरु दर्शाए गए हैं। इससे पूर्व आई पंथ में कहीं भी माता जी के शेर पर सवारी तथा भेरु के होने की कोई चर्चा किसी ग्रन्थ में नहीं मिलती। इस प्रकार इस तस्वीर के स्थापित होने के पश्चात् इसके स्थान पर दूसरी तस्वीर अथवा मूर्ति लगाने का विचार स्वतः ही समाप्त हो गया।[5] तस्वीर के बायीं ओर श्री आई जी द्वारा स्थापित अखंड ज्योत विगत पाँच सौ वर्षो से प्रज्ज्वलित है। उस अखंड ज्योत की लौ के धुंए से काजल के स्थान पर केसर पड़ता है। जो इस बात का प्रमाण है कि श्री आईमाता उस स्थान पर विद्यमान है। इस अखंड ज्योति के सामने ही बाहर कोने में लोहे की सांकल लटक रही है। इस सांकल के विषय में प्रचलित है कि यह वही सांकल है जिससे चोटी बाँध कर 12 वर्षो तक पूज्य दीवान रोहिताशजी ने श्री आईजी की कठोर तपस्या की थी। निज कक्ष में जहाँ अखंड ज्योत प्रज्वलित है वहाँ आईमाता की गादी है इस महान गादी के ऊपर से ही आईमाता जी का शरीर अलोप हो गया था। आईमाता का शरीर तो अलोप हो गया परन्तु उस समय उनके धारण किये हुए वस्त्र, पुस्तक व मोजड़ी गादी पर विद्यमान रही। गादी के नीचे 5 श्रीफल भी रखे हुए थे जो 550 वर्षो से से आज तक उतने ही ताजा है। माताजी के कक्ष में ये सभी चिन्ह इस बात का प्रमाण है कि माताजी आज भी वहाँ वर्तमान है। आईमाता जी के स्मृति चिन्ह यथा आईजी की लकड़ी की बनी हुई गाड़ी, अखंड ज्योति, 5 श्रीफल, छड़ी, चोला, मोजड़ी, खड़ाऊ, माला, ग्रन्थ व पुराने इतिहास की जानकारी आदि आज भी सुरक्षित है तथा मंदिर आने वाले भक्तगणों की श्रद्धा और आस्था के केंद्र हैं।[6]

बिलाड़ा स्थित आई पंथ की मुख्य बडेर के विषय में कहावत है कि यहाँ पत्थर की टाँकी चौबीसों घंटे बजती रहती है। यह कथन सत्य प्रतीत होता है गत 500 वर्षो से यहाँ निर्माण या मरम्मत का कार्य सतत् रुप से चलता आ रहा है। विभिन्न धर्म तथा जातियों के समुदायों में वैरभाव उत्पन्न न हो इसलिए यह मंदिर गत 500 वर्षो से सभी धर्मो के लिए खुला है। किसी भी जाति के व्यक्ति के बडेर पर प्रवेश करने में कोई पाबन्दी नहीं है। दर्शनार्थियों के लिए सदैव भोजन की व्यवस्था रहती है। रहने के लिए निःशुल्क व्यवस्था है।

उस काल में यातायात के साधनों का अभाव था। इस कारण भक्तों का समय–समय पर मुख्य बढेर बिलाड़ा आना सम्भव नहीं था। इसलिए जहां–जहां डोरा बंध भक्त निवास करते थे, वहां–वहां माताजी ने उन्हें धार्मिक संस्कार व मार्गदर्शन करने के लिए बिलाड़ा बडेर की ओर से हर गाँव में दो व्यक्तियों को कोटवाल व जमादारी के नाम से नियुक्त करवाये। इस प्रकार हर गांव में जमादारी के अपने घर में ही श्री आई माताजी की पाट–गादी रहती थी, जिसकी पूजा अर्चना जमादारी स्वयं करता था तथा अपने ही घर में बने भोजन का भोग माताजी को लगाया करता था। उस स्थान को बडेर कहा जाता था। तब से ही यह परम्परा शुरु हुई कि जहां भी आई पंथ का अनुयायी बसेगा वह पहले बडेर की स्थापना करेगा।[7]

दीवान श्री माधव सिंह जी के शब्दों में – मुझे जब गादी पर बिठाया गया अर्थात सन 1946 के समय अंग्रेजों का राज था तथा राजशाही कायम थी। उस समय राजस्थान में बिलाड़ा बडेर के अधीन पट्टा सुदा निम्न बडेरें थी –

अटबड़ा, माताजी का वारा, डायलाणा, नारलाई जैकल जी का स्थान, गाँव कोटड़ी तकिया, दलपुरा (राजगढ़), कुक्षी, बड़वानी, मालवा में अलहेड़ में स्वनिर्मित भवन में बडेर थी। इसके अतिरिक्त जहाँ-जहाँ बडेर थी वो व्यक्तिगत धरोहर थी। स्वतंत्रता के पश्चात् किसान भूमि का मालिक बना तब उन्होंने सबसे पहले भूमि खरीदकर पक्के भवनों का निर्माण माताजी के लिए किया स्वयं कच्चे घर में रहे।[8]

आई पंथ के अनुयायियों ने आई माताजी को अपना पूर्वज माना तथा अपने आप को उनकी संतान माना है। जहां भी बडेर है वह सिर्फ पूजा स्थल न होकर सब तरह के सामाजिक कार्य करने हेतु उपयोग में लाई जा रही हैं, तथा इसके रख-रखाव इत्यादि के लिये हर घर से एक निश्चित राशि स्वतः ही दी जाती है जिससे बडेर का विकास सतत् रुप से चलता रहे। वर्तमान में निर्मित होने वाली बडेरें इतनी बड़ी है कि सभी प्रकार के सामाजिक उत्सवों के कार्य व्यवस्थापूर्वक पूरे किये जा सकते है। पुरानी बडेरों का भी आस-पास की भूमि का अधिग्रहण कर विस्तार किया जा रहा है। पुरानी बडेरों का स्वरुप पूर्णतया परिवर्तित होकर अत्यंत भव्य हो गया है। वर्तमान में केवल राजस्थान में 300 से अधिक, गुजरात में 22, मध्यप्रदेश में 150, महाराष्ट्र में 50, कर्नाटक में 42, आन्ध्र प्रदेश में 10 तथा तमिलनाडु में 40 बडेरों का निर्माण हो चुका है जो सीरवी समाज की आस्था के केंद्र है। यहाँ नियमित पूजा, अर्चना और धार्मिक कार्यक्रमों का आयोजन होता है जहाँ सीरवी समाज के बंधु एकत्र होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *लालुराम मुलेवा - श्री आई पंथ, पृ. 82, वि.सं. 2067, जोधपुर।*
2. *व्यास भवानीदास लालावत - आई आणद विलास, अनुवादक सुरेश कुमार गर्ग, पृ. 128-129, वि.सं. 2065, जोधपुर।*
3. *डॉ. पूरन सहगल-आई माता का लोक इतिहास, पृ 187*
4. *दैनिक भास्कर, जोधपुर संस्करण, दिनांक 03 अगस्त 2021, पृ. 10*
5. *लालुराम मुलेवा - श्री आई पंथ, पृ. 94-96, वि.सं. 2067, जोधपुर*
6. *दैनिक भास्कर, जोधपुर संस्करण, दिनांक 03 अगस्त 2021, पृ. 10*
7. *लालुराम मुलेवा - श्री आई पंथ, पृ. 85, वि.सं. 2067, जोधपुर*
8. *वही, पृ. 86*

जितेन्द्र निर्मोही के साहित्य में चेतना के विविध स्वर

राजाराम धाकड़
सहायक आचार्य, कोटा विश्वविधालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

जितेन्द्र निर्मोही एक मात्र ऐसे साहित्यकार है जिनके साहित्य में हाड़ौती क्षेत्र का साहित्य, यहाँ की संस्कृति, यहाँ के साहित्यकार, यहाँ की पुरा सम्पदा, यहाँ का इतिहास, यहाँ के भूगोल, यहाँ की प्रकृति के बारे में प्रचुर सामग्री मिलती है। वो इस क्षेत्र की विविध साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, पर्यावरणीय समस्याओ से सीधे-सीधे जुड़े हुए है। ''हाड़ौती अंचल के आधुनिक राजस्थानी काव्य'' में उन्होने यहाँ के राजस्थानी कवियो के काव्य को आघोपात अध्ययन कर काव्य की विविध विधाओ में उनके काव्यांश उद्धरित किये है। इस समीक्षक कृति में आजादी के बाद का हाड़ौती काव्य जगत प्रस्तुत करने का प्रयास किया। कृति के प्रारम्भ में सूर्यमल्ल मिश्रण के काव्य जगत के बारे में बताया गया। इस प्रकार जितेन्द्र निर्मोही के साहित्य में विविध चेतना के स्वरो का समागम है। जिसमें प्रमुख है प्रकृति के प्रति प्यार, रिश्तो का तादात्म्य, सामाजिक सरोकार, बदलते मानवीय मूल्य, शोषण के विरुद्ध आवाज, सूफी दर्शन, जीजिविषा आदि। सच कहा जाए तो जितेन्द्र निर्मोही का साहित्य विविध चेतना के स्वरो का पुंज है। एक कवि गीतकार, कहानीकार, निबन्धकार, समीक्षक वर्तमान कविता में सृजनरत पीढ़ी के कवियो में जितेन्द्र निर्मोही को पढ़ने का अलग ही अनुभव है। वे अपने समय की विभिन्नताऐं प्रतिक्रियाऐं और उनके बीच बनती-बिगड़ती तमाम मानवीय सम्भावनाओ, आकांक्षाओ की सहज अभिव्यक्ति करते है। वर्तमान जीवन में व्याप्त त्रासदी के प्रति गहरे सृजनात्मक विरोध के साथ-साथ एक बड़े परिर्वतन की ओर इंगित करने की व्याकुलता का आवेश उनकी कविता बन गया है। यही कारण है कि देश की प्रतिनिधी पत्र-पत्रिकाओ मे वे प्रकाशित होते रहते है उनकी सृजनयात्रा गीतो से प्रारम्भ होती है। जो साहित्य की विविध विधाओ से गुजरती है। जितेन्द्र निर्मोही जी के साहित्य में सामाजिक परिवेश की विपुल सामग्री है, कही-कही तो राजस्थानी साहित्य के शब्द लड़ी-लूमा की तरह एक दूसरे पायजेब के घुंघरूओ की तरह जुड़े हुए और ध्वनित करते दिखाई देते है। इस प्रकार जितेन्द्र निर्मोही के काव्य दर्शन की बहुलताऐं है, उनका गीत गजल है रुबाई है, नई कविता काव्य सौन्दर्य के साथ-साथ दर्शन का गहन भाव लिए हुए है।

संकेताक्षर : *प्रकृति, मानवीय चेतना, पर्यावरण चेतना, प्रदूषण, पूरा सम्पदा।*

एक साहित्यकार कवि साहित्यकार निबन्धकार समीक्षक वर्तमान कविता में सृजनरत पीढ़ी के कवियों में जितेन्द्र निर्मोही को पढ़ने का अलग ही अनुभव है, वे अपने समय की विभिन्नताऐं प्रतिक्रियाऐं और उनके बीच बनती बिगड़ती तमाम मानवीय संभावनाओं, आकांक्षाओ की सहज अभिव्यक्ति करते है। जितेन्द्र निर्मोही का जन्म 7 अप्रेल 1953 को झालावाड़ में हुआ, उनके पिता का नाम रमेश चन्द्र शर्मा है, जो अध्यापक थे। निर्मोही जी ने बी.एस.सी. (गणित) कर बाद में एम.ए. (हिन्दी) में किया तथा विद्यावाचस्पति की उपाधि प्राप्त की। निर्मोही जी का जन्म एक साधारण परिवार में हुआ, आपके सभी परिजन साहित्य प्रेमी रहे है। हाड़ौती अंचल के लिए यह गौरव का विषय है कि आपकी प्रत्येक साहित्यिक कृति का मूल्यांकन भी हुआ है और चर्चा भी हुई है।

जितेन्द्र निर्मोही द्वारा पद्य हो या गद्य पर्यावरण चेतना पर व्यापक ध्यान दिया गया है। उनकी सम्पूर्ण देश में चर्चित प्रकृति काव्य संकलन ''जंगल से गुजरते हुए'' इसका उदाहरण है। इस रचना में चेतना एवं सरोकारों के बिंब उकेरे गये है। प्रकृति से तादात्यय स्थापित कर मनुष्य विराट रूप हो जाता है कवि का कहना सच है ''मेरी दृष्टि जब विस्तृत

हो जाती है तब अरावली पर्वत श्रंखलाऐं छोटी दिखने में आती है।

मैं एक वृक्ष हिमालय सा दिखाई देता हूं जो समष्टि को व्यष्टि में निहित करता है, और व्यष्टि को समष्टि में समाहित करता है। उस वक्त सचमुच मुझे वृक्ष होने का अहसास नही होता है। 'दृष्टि' शीर्षक से इस अंश में निर्मोही जी ने पर्यावरण चेतना को मानवीय चेतना के रूप में जीवन्त चित्रित किया है। कवि का कहना सच ही है ''न भागो मोटर के संग, वृक्ष के साथ खड़े होकर बात करो।''

इस संकलन की सम्पूर्ण कविताऐं पर्यावरण चेतना से ओत प्रोत है, जिन्हे गांव से लेकर राष्ट्रपति भवन तक पढ़ा गया है। पाठक को ये कविताऐं पर्यावरण संरक्षण के प्रति सचेत भी करती है। ''न दिखाई दिए महुआ खेड़ा में महुए, बाँसखेड़ी में बाँस, पीपल खूँट में पीपल नीमथूर में नीम बड़लावदा में बड़।'' इसका कारण और पर्यावरण के प्रति उदासीन मनुष्य समाज का वित्रण उनके द्वारा रचित कविता इक्कीसवीं सदी में दिखाई देता है– कटते गये पेड़, घटता गया जल स्तर, बढ़ता गया प्रदूषण, फिर न जाने क्यों खुश है, इक्कीसवीं सदी में जाने वाला आदमी।''

यह वाक्य सही सन्दर्भ में मनुष्य को दोहन प्रवृति प्रदूषण के प्रति चेतना जागृत करने का काव्य है। इस कृति पर स्वतंत्रता सेनानी नवनीत दास वैष्णव को सम्मान प्राप्त हुआ है। यह चेतना की अनूठी व अद्भुत कृति है। इस कृति में कवि ने अपने सचमुच जंगल का अस्तित्व खतरे में है जैसे– अभ्यारण्य शीर्षक इस अंश में कवि ने लिखा है– अभ्यारण्य अभय–अरण्य हुआ फिर भी दहशत में भरे है शेर, भालू, हिरण, खरगोशादि सभी प्राणी, प्रत्येक वन्य प्राणी बन्दूक की आवाज पहचानता है, अपना अस्तित्व खतरे में मानता है।''

'प्रकृति से प्यार' शीर्षक अंश में वे लिखते है कि तपती है जब धरती उमड़ पड़ता है आसमान, प्रकृति आसमान नही होती वह सम्पूरक है। कवि ने यहाँ पर्यावरण चेतना को मानवीय चेतना के रूप में दर्शाया है। आज विश्व पर्यावरण की गम्भीर समस्या से घिरा हुआ है, जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि बढ़ती हुई, निर्धनता एवं प्रदूषण की निरन्तर वृद्धि से समूचा विश्व चिंतित है। वातावरण में निरन्तर वृद्धि से समूचा विश्व चिंतित है, वातावरण में निरन्तर बढ़ता हुआ प्रदूषण पर्यावरण का खतरा बन गया है। विकास के बढ़ते हुए चरण, औद्योगिकरण विज्ञान की तकनीक की प्रगति, प्रकृति का असंतुलित दोहन, चरम उपभोक्तावाद आदि ऐसे घटक है जो पर्यावरण प्रदूषण के लिए उत्तरदायी है।

वृक्षारोपण शीर्षक इस अंश में कवि ने कहा भी है ''इस उम्मीद से रोजी कलम कि यहाँ यादगार वृक्ष उग आये।'' सचमुच पर्यावरण प्रदूषण व चरम उपभोक्तावाद आदि के परिणाम मनुष्य और शेष प्राणी के लिए भयंकर हो सकते है। रोग, भुखमरी, बाढ़, और सर्वनाश कुछ भी हो सकता है। निर्मोही जी ने 'वृक्ष अब डरने लगा है' शीर्षक अंश में यह लिखा है वृक्ष को अब अच्छा नही लगता शोर वाहनों का धुँआ पचपन से. ग्रे. वाली गर्मी! उसे नही सुहाती। प्रकृति तत्व नदी वनस्पतियां जीव–जन्तु प्राणी, यहाँ तक सम्पूर्ण ब्रह्माण, ब्रह्माण्ड पर्यावरण के अन्तर्गत अन्त में श्रद्धांजलि शीर्षक अंश में वे लिखते है कि जंगल की रक्षा हेतु सैकड़ो लोगो ने अपने प्राणो की बलि दी थी, और वे सदा के लिए अमर हो गए।

''वे जिन्होने सर कटाया पर वृक्ष न कटने दिया। जिनका बलिदान अपना अलग ही रखता है स्थान।'' कवि का मानना है कि प्राकृतिक संसाधनो का दोहन मनुष्य आरम्भ से ही अपनी आवश्यकताओं कर की पूर्ति के लिए करता आ रहा है, लेकिन तब और आज की स्थिति में बुनियादी अन्तर आ गया है। पुरानी दृष्टि आवश्यकता से प्रेरित उपयोग की दृष्टि भी वही आधुनिक दृष्टि लोभ और विलास भाव से प्रेरित उपयोग की दृष्टि है।

पुरासम्पदा के प्रति चेतना

जितेन्द्र निर्मोही के साहित्य में ''जंगल से गुजरते हुए'' (1994) काव्य से लेकर गद्य प्रकाशित कृतियो तक पुरा सम्पदा के प्रति चेतना दिखाई देती है। इसमें हाड़ौती संभाग के प्रति उनके विशिष्ट लगाव की ललक भी दिखाई देती है। ''जंगल से गुजरते हुए'' में गलता, महाबलेश्वर, ताज, यमुना, खजुराहो, रामबाग का प्रयोग इसके प्रमाण है। पुरा सम्पदा के प्रति चेतना उनके गद्य साहित्य में प्रचुर मात्रा में देखने को मिलती है। उनकी संस्मरण की कृति ''उजाले अपनी यादों के'' व ''ना जा रे जोगिया'' में इसे देखा जा सकता है। ''उजाले अपनी यादो के'' संस्मरण कृति तो वो झालावाड़ शहर की ईदगाह से प्रारम्भ करते है, उसके बाद कूकी का मकबरा, गढ़ पैलेस, नवनीत प्रियाजी का मन्दिर इसके प्रथम पृष्ठ पर ही आ जाता है। उनके

संस्मरण आगे बढ़ते जाते है – हरिशचन्द्र लाईब्रेरी, परमानन्द पुस्कालय, भवानी नाट्यशाला, पृथ्वीविलास, लक्ष्मीविलास आदि इसमें जुड़ते चले जाते है।

इसी प्रकार ''ना जा रे जोगिया'' में झालावाड़ के तालाब, शिकार, बुर्ज, महल, कसार, कोटा की कलादीर्घा, झालरापाटन के सहस्त्रलिंग, नासिक, अजमेर के स्थल, केदारनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री आदि दिखाई देते है। इस प्रकार जितेन्द्र निर्मोही का पद्य साहित्य हो या गद्य साहित्य, उसमें पुरासम्पदा के प्रति चेतना दिखाई देती है।

कला के प्रति चेतना

उनकी कला के प्रति चेतना उनकी गद्य कृतियों ''उजाले अपनी यादो के'' (संस्मरण) व 'ना जा रे जोगिया'' में स्पष्ट दिखाई देती है। समीक्षक विजय जोशी तो उपन्यास ''ना जा रे जोगिया'' को उनकी कला के प्रति चेतना का दस्तावेज बताते है। इस उपन्यास में पुराणकालीन ''चित्र सूक्तम्'' चित्रकला की संस्कृतनिष्ठ जानकारी को सहज हिन्दी में बताने का प्रयास किया गया है। उपन्यास में चित्रकला के विशिष्ट स्वरूपो को बताया गया है। इसमें मार्डन आर्ट व प्राचीन आर्ट के प्रति चेतना जागृत करने का प्रयास किया गया है।

साहित्य एवं सांस्कृतिक चेतना

जिनेन्द्र निर्मोही के काव्य एवं गद्य संकलनो में साहित्य एवं सांस्कृतिक चेतना की विपुल सामग्री है। साहित्य के प्रति समर्पण भावना उनकी गीत की एक पंक्ति में देखी जा सकती है :–

''शब्द के महाभिषेक में,
अपनी अंजुरी भी जोड़िये।''

साहित्यकार डॉ. भगवती व्यास उदयपुर व डॉ. तारा लक्ष्मण गहलोत जोधपुर उनकी कृति ''उजाले अपनी यादो के'' को हाड़ौती अंचल के साहित्य एवं संस्कृति से सराबोर कृति बताते है। अन्य विद्वानो का कथन है, यह कृति हाड़ौती अंचल के साहित्य एवं सांस्कृतिक दस्तावेजो की धरोहर कृति है।

जितेन्द्र निर्मोही प्राचीन साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में पले बड़े हुए है, अतः उनके साहित्य में ये प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है।

मानवीय चेतना

किसी भी साहित्यकार का मनुष्य के प्रति लगाव ही मानवीय चेतना का कारण होता है। एक कवि या साहित्यकार मानवीय चेतना का पक्षधर है, जितेन्द्र निर्मोही के संकलन ''जंगल से गुजरते हुए'' से :–

''कम रहेंगे जिंदगी के गम
नेक राह पर रखो कदम।''

इसी प्रकार ''धूप के साये में चाँदनी'' काव्य संकलन से:–

''जंगल खोज ही लेता है,
तुम्हारे सानिध्य में, आदमी शीतलता।''

इसी प्रकार जितेन्द्र निर्मोही के काव्य में मानवीय चेतना के दृश्य है जो इनके गद्य साहित्य में भी देखे जा सकते है।

आध्यात्मिक चेतना

आध्यात्मिक चेतना के संदर्भ में जितेन्द्र निर्मोही की कृति ''मुरली बाज उठी अणधाता'' आध्यात्मिक निबन्ध कृति व ''ना जा रे जोगिया'' आध्यात्मिक उपन्यास को देखा जा सकता है। संस्मरण कृति ''उजाले अपनी यादो के'' का लेख ''अपनी–सी कर दीनी'' इस सन्दर्भ में देखा जा सकता है। उनके काव्य संकलनो में भी अनहद, आचमन, अंजुरी, सन्यासी, गापाल, दिगम्बर सन्यासी जैसे शब्दो का प्रवाह है और उनके सार्थक उद्देश्य भी।

क्षेत्रीय चेतना

जितेन्द्र निर्मोही एक मात्र ऐसे साहित्यकार है जिनके साहित्य में हाड़ौती क्षेत्र का साहित्य, यहाँ की संस्कृति, यहाँ के साहित्यकार, यहाँ की पुरा सम्पदा, यहाँ का इतिहास, यहाँ की भूगोल, यहाँ की प्रकृति के बारे में प्रचुर सामग्री मिलती है।'' वो इस क्षेत्र की विविध साहित्यिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, पर्यावरणीय समस्याओ से सीधे–सीधे जुड़े हुए है तथा उनके इन संस्थाओ के पदाधिकारियो से भी सीधे सम्बन्ध है।

''हाड़ौती अंचल के आधुनिक राजस्थानी काव्य'' में उन्होने यहाँ के राजस्थानी कवियो के काव्य को आधोपात अध्ययन कर काव्य की विविध विधाओ में उनके काव्यांश उद्धरित किये है। इस समीक्षक कृति में आजादी के बाद का हाड़ौती काव्य जगत प्रस्तुत करने का प्रयास किया। कृति के प्रारम्भ में सूर्यमल्ल मिश्रण के काव्य जगत के बारे में बताया गया।

इस प्रकार जितेन्द्र निर्मोही के साहित्य में विविध चेतना के स्वरो का समागम है। जिसमें प्रमुख है प्रकृति के प्रति प्यार, रिश्तो का तादात्म्य, सामाजिक सरोकार,

बदलते मानवीय मूल्य, शोषण के विरूद्ध आवाज, सूफी दर्शन, जीजिविषा आदि। सच कहा जाए तो जितेन्द्र निर्मोही का साहित्य विविध चेतना के स्वरो का पुंज है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

रचना– जंगल से गुजरते हुए : जितेन्द्र निर्मोही

1. *मेरी दृष्टि जब विस्तृत हो जाती है। पेज न.–7*
2. *अभ्यारण्य अभय–अरण्य हुआ। पेज नं.– 13*
3. *तपती है जब धरती तपती है जब धरती उमड़ पड़ता है आसमान। पेज नं.– 14*
4. *इस उम्मीद से रोपी कलम। पेज नं.– 17*
5. *वृक्ष अब डरने लगा है। पेज नं.– 27*
6. *न दिखाई दिये । पेज नं.– 30*
7. *कटते गये पेड़/घटता गया जल स्तर (इक्कीसवीं सदी में)। पेज नं.– 32*
8. *न भागो मोटर के संग/वृक्ष के साथ/खड़े होकर बात करो। पेज नं.– 55*
9. *वे जिन्होन सर कटाया पर वृक्ष न कटने दिया। पेज नं.– 61*

ISSN 2277-5587

सामाजिक न्याय की अवधारणा

डॉ. आशा भार्गव
सहायक आचार्य, अ.रा.ब..जैन विश्व भारती स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बारां

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत में विभिन्न जनजातियाँ निवास करती है यहाँ कि सम्पूर्ण जनसंख्या का लगभग 8.08 प्रतिशत भाग जनजातियों/जातियों का है। ज्यादातर यह जनजातियाँ ऐसे भौगोलिक क्षेत्रो में निवास करती है, जहाँ सभ्यता का आधुनिकता का प्रकाश नही पहुंच पाया है। देश में स्वतंत्रता के पश्चात अभी भी अनुसूचित जाति/जनजाति के लोग अत्याचार एवं शोषण का शिकार होते जा रहे है। अभी भी इनका सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक विकास पिछड़ा हुआ है। जनजातियों की दृष्टि से राजस्थान का देश में छठा स्थान है। देश का समग्र विकास तभी सम्भव है जब अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के स्तर के सुधार करने का प्रयास किये जाये। इन समुदाय के लोगो को सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक न्याय मिलना चाहिए। सामाजिक जीवन में मनुष्य की गरिमा स्वीकार की जायें। स्त्री-पुरूष, काले-गोरे, छोटे-बड़े, ऊँचा-नीचा, जाति धर्म, क्षेत्र के आधार पर सबको समान रूप से समझा जाये सामाजिक न्याय की दृष्टि से इनको हेय नही समझा जाये। सब लोग मनुष्य-मनुष्य के नाते मिलजुल कर साहित्य, कला संस्कृति और तकनीकी साधनो का उपभोग व उपयोग कर सके।

संकेताक्षर : *सामाजिक न्याय, अधिकार, दलित, कर्त्तव्य, श्रमजीवी वर्ग, आर्थिक शोषण, अवसर।*

भारत के प्राचीन राजनीतिक चिन्तन में न्याय को अधिक महत्व दिया गया है और मनु. कौटिल्य, बृहस्पति, शुक्र, भारद्वाज तथा सोमदेव आदि सभी के द्वारा राज्य की व्यवस्था में न्याय को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मनु ने न्याय की निष्पक्षता और सत्यता पर अधिक बल दिया है। एक स्थान पर वे लिखते है, ''जिस सभा (न्यायालय) में सत्य असत्य से पीड़ित होता है उनके सदस्य ही पाप से नष्ट हो जाते है।'' उनके अनुसार न्याय का उद्देश्य प्रजा के जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करना तथा समाज कंटको एवं अव्यवस्थाकारी व्यक्तियों को दंडित करना है।

आधुनिक न्यायशास्त्र में न्याय का अर्थ सामाजिक जीवन की वह अवस्था है, जिसमें व्यक्ति के आचरण का समाज के व्यापक कल्याण की सिद्धि है, उस व्यापक कल्याण की सिद्धि, जो व्यक्तियों के अलग-अलग कल्याण से भिन्न हों। न्याय की धारणा के प्रमुखतया दो आधार है, स्वतंत्रता और समानता। आज कानूनी या राजनीतिक न्याय की अपेक्षा सामाजिक और आर्थिक न्याय अधिक महत्वपूर्ण हो गए है।

भारतीय संविधान में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय की व्यवस्था है। भारतीय संविधान में न्याय के आदर्श की वही भूमिका है, जो मंदिर में मंगल कलश की। सच्चे लोकतंत्र के लिए स्वतंत्रता और समानता की ही नही, वरन् न्याय की भी आवश्यकता है क्योंकि न्याय के बिना स्वतंत्रता और समानता के आदर्श व्यर्थ हो जाते है। संविधान की प्रस्तावना में सभी नागरिकों को राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय प्रदान करना संविधान का लक्ष्य घोषित किया गया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक कदम उठाए गए है। राजनीतिक न्याय की प्राप्ति के लिए लोकतांत्रिक व गणतन्त्रीय व्यवस्था को अपनाया गया है और संविधान के अनुच्छेद 19 द्वारा नागरिकों को स्वतंत्रताऐं प्रदान की गई है। संविधान में सामाजिक न्याय के आदर्श को अनेक रूपो में स्वीकार किया गया है। संविधान के तीसरे भाग (मौलिक अधिकार) और चौथे भाग (राज्य की नीति के निदेशक तत्व) में सामाजिक न्याय की

प्राप्ति के लिये विविध उपायों का उल्लेख किया है। संविधान में अनुसूचित जातियों और जनजातियों को विशेष सुविधाऐं प्रदान की गई है, उन्हे किसी भी प्रकार से सामाजिक न्याय के प्रतिकूल नही कहा जा सकता है। वास्तव में, भारत के इन दलित वर्गों की स्थिति बहुत अधिक गिरी हुई थी और जब तक इन्हे विशेष स्थिति प्रदान न कर दी जाए तब तक उनके द्वारा समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ समानता प्राप्त करने के लिए भी संविधान के नीति-निर्देशक तत्वों में विविध कार्य करने का निर्देश किया गया है।

न्याय के प्रयोग-क्षेत्र पर विचार करते समय हम समाज की सम्पूर्ण व्यवस्था को इस दृष्टि से परखने लगते है कि वे न्याय के अनुरूप है या नही ? सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय वास्तव में एक ही सिद्धांत के प्रयोग क्षेत्र (Spheres of Application) है। ये तीनों एक-दूसरे के बिना अधूरे है।''

प्लेटों के अनुसार- ''न्याय मानव आत्मा की उचित अवस्था और मानवीय स्वभाव की प्राकृतिक माँग है।'' बार्कर के अनुसार- ''न्याय का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उस कर्त्तव्य का पालन, जो उसके प्राकृतिक गुणों और सामाजिक स्थिति के अनूकूल है। नागरिक की अपने धर्म की चेतना तथा सार्वजनिक जीवन में उसकी अभिव्यंजना ही राज्य का न्याय है।'' प्लेटों ने न्याय के बारे में कहा हैः ''अपने निश्चित स्थान में अपने कर्त्तव्यों का पालन और दूसरे के कर्त्तव्यों में हस्तक्षेप और इसका निवास अपना निश्चित कर्त्तव्य पूरा करने वाले प्रत्येक नागरिक के मन में है।''

समाजिक न्याय का अर्थ

समाजिक न्याय का अभिप्राय है कि ''मनुष्य-मनुष्य के बीच सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेद न हो, किसी भी व्यक्ति का किसी भी रूप में शोषण न हो और उसके व्यक्तित्व को एक पवित्र सामाजिक विभूति माना जायें, किसी परोक्ष लक्ष्य की सिद्धि का साधन मात्र नही।''

व्यापक अर्थ में 'सामाजिक न्याय' शब्दावली से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तीनों तरह के न्याय का बोध हो जाता है। सीमित अर्थ में सामाजिक न्याय से तात्पर्य है कि हर मनुष्य की गरिमा स्वीकार की जाये। स्त्री-पुरूष, काला-गोरा, जाति-धर्म, क्षेत्र इत्यादि के आधार पर किसी व्यक्ति को बड़ा-छोटा, ऊँचा-नीचा न माना जाए, शिक्षा और उन्नति के अवसर सबको समान हो और सब मिल-जुलकर, साहित्य, कला, संस्कृति और तकनीकि साधनों का उपभोग कर सकें।''

संक्षेप में- राजनीतिक न्याय 'स्वतंत्रता' के आदर्श को प्रमुखता देता है, आर्थिक न्याय 'समानता' को और सामाजिक न्याय 'बन्धुता' के आदर्श को साकार करना चाहता है। इन तीनो को मिलाकर ही सामाजिक जीवन में न्याय के व्यापक आदर्श की सिद्धि की जा सकती है।''

सामाजिक न्याय का मूल मंत्र यह है कि संगठित सामाजिक जीवन से जो भी लाभ प्राप्त हो, वे इने-गिने लोगो के हाथो में न सिमटे बल्कि सर्व साधारण को विशेषतः श्रमजीवी वर्ग को उनमें समुचित हिस्सा मिले ताकि वह सामान्यतः सुखी सम्मानित और निश्चित जीवन जी सके।

सामाजिक न्याय की अवधारणा

सामाजिक न्याय

''एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था जिसमें धर्म, जाति, लिंग, जन्म, स्थान, गरीबी, वंश इत्यादि के आधार पर किसी को समाज में नीचा देखना पड़े और न ही व्यक्तित्व के विकास में रूकावटें आए। सामाजिक न्याय केवल ऐसी सामाजिक व्यवस्था से मिल सकता है, जहाँ आर्थिक शोषण न हो, जो वर्ग विभाजित न हो जहाँ अधिकतर निर्धनजन अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने को बेचने को मजबूर न हों। वर्तमान में सामाजिक न्याय का विचार बहुत लोकप्रिय हो चुका है, विश्व के करोड़ो लोगों द्वारा समाजवादी व्यवस्था एवं लोक कल्याणकारी राज्य में आस्था व्यक्त की गयी है।''

आज सामाजिक न्याय की धारणा सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो चुकी है और इसी कारण कोई सरकार उसकी अनदेखी नही कर पा रही है। आज व्यक्ति अपने व्यक्तिगत कार्यो के लिये स्वतंत्र है, लेकिन यदि यह सामाजिक वातावरण को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है तो उसे सीमित किया जा सकता है। संक्षेप में सामाजिक न्याय की अवधारणा को अत्यंत महत्वपूर्ण मानने के परिणाम स्वरूप व्यक्तिगत स्वतंत्रता का लोप सा हो गया है क्योंकि आज यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि सामाजिक न्याय का सीधा परिणाम व्यक्तिगत हित है।

सामाजिक न्याय का विचार अत्यंत ही महत्वपूर्ण है और लोकप्रिय है, क्योंकि यह समाज में मानव के गौरव व सम्मान से सम्बन्ध रखता है। अत्यन्त साधारण शब्दों में ''यह समाज व्यवस्था का वह सिद्वान्त है, जिसके अनुसार संगठित सामाजिक जीवन, सामाजिक नियोजन और विकास के लाभ इने-गिने व्यक्ति में सिमट कर न रह जायें, बल्कि जन-जन तक पहुँच सके, विशेषतया कमजोर वर्गो तक जिन्हे ये लाभ अधिकार के रूप में मिलने चाहिए, किसी भी कृपा या दया के रूप में नही।''

सामाजिक न्याय की यह माँग है कि समाज में जन्म, परम्परा या उत्तराधिकार के आधार पर सामाजिक, आर्थिक विषमता नही रहनी चाहिए, बल्कि सबको अपनी प्रतिभा और परिश्रम के बल पर उन्नति करने का अवसर मिलना चाहिए।

सामाजिक न्याय का सरोकार व्यक्ति, समाज, राज्य और विभिन्न सांस्कृतिक सम्प्रदायों से है। यह सम्बन्ध इस तरह से हो कि किसी भी रूप में व्यक्ति का शोषण न हों और हर व्यक्ति किसी भी संगठन के अनावश्यक हस्तक्षेप से सुरक्षित रहें और व्यक्ति के गौरव के प्रति स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व के मूल्यों की प्राथमिकता के आधार पर सामाजिक व्यवस्था का गठन हो, ताकि हर नागरिक को सामाजिक सुरक्षा प्राप्त हो सके। यही सामाजिक न्याय का केन्द्रीय विचार है।

सामाजिक न्याय में नागरिक-नागरिक के बीच में सामाजिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव न माना जाये और प्रत्येक व्यक्ति को आत्मविकास के पूर्ण अवसर प्राप्त हों। सामाजिक न्याय की धारणा में निहित है कि अच्छे जीवन के लिये आवश्यक परिस्थितियां व्यक्ति को प्राप्त होनी चाहिए और समाज की राज-सत्ता से यह आशा की जाती है कि वह अपने विधायी तथा प्रशासनिक कार्यक्रमों द्वारा ऐसे समाज की स्थापना करेगा, जो समानता के आधार पर हो।''

वर्तमान में सामाजिक न्याय का विचार बहुत अधिक लोकप्रिय है और सामाजिक न्याय पर बल देने के कारण ही विश्व के करोड़ो लोगो के द्वारा मार्क्सवाद व समाजवाद के अन्य किसी रूप का अपना लिया गया है। इस सम्बन्ध में पण्डित नेहरू ने ठीक ही कहा था कि- ''लाखों-करोडों लोगों के मार्क्सवाद के प्रति आकर्षण का स्रोत उसका वैज्ञानिक सिद्धांत नही है, वरन सामाजिक न्याय के प्रति उसकी तत्परता है।'' गेहरालेख, सोम्बार्ट, टायनबी, बर्जाइम आदि ने इसी आधार पर मार्क्सवाद को नवीन युग का एक नया धर्म बताया है।

सामाजिक न्याय की धारणा बड़ी व्यापक है इसे सीमाओ में नही बाँधा जा सकता है। वह एक गत्यात्मक स्थिति का द्योतक है, जो समाज की परिस्थितियों एवं मनुष्य की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।

सामाजिक न्याय वह न्याय है जो मानव समाज से सम्बन्धित ऐसे आदेशों को निर्धारित करता है जिनके अनुपालना के व्यक्ति, कुटुम्ब, समाज एवं राज्य का अस्तित्व बना रहता है और उसके द्वारा अभावग्रस्त लोगो के हितों की समुचित संरक्षा करके मानव जीवन से सम्बन्धित समस्त गम्भीर अन्यायपूर्ण असंतुलन को दूर किया जाता है ताकि नागरिकों का जीवन खुशहाल बने और हर आदमी अपनी-अपनी क्षमता एवं योग्यता के आधार पर राष्ट्र की सत्ता एवं सम्पत्ति में भागीदार बनकर सामाजिक प्रतिष्ठा ग्रहण करने के अवसर प्राप्त करें।

सामाजिक न्याय की अवधारणा एवं क्षेत्र

सामाजिक न्याय एक बड़ी व्यापक धारणा है इसमें सभी प्रकार के न्याय समाहित हो जाते है, वह सम्पूर्ण मानव समाज का चित्रण है।

प्रथम- सामाजिक न्याय का सम्बन्ध सम्पूर्ण मानव समाज से है, पर उसमें कुछ विशेष विषय सामग्री का अध्ययन ही श्रेयष्कर है। इस क्षेत्र में समाज के विकलांग वर्ग का अध्ययन आता है। इस वर्ग में वे अन्धे-लूले, लंगड़े, अपाहिज, कोढी आदि बच्चे, स्त्री-पुरुष आते है जिन्हे सामाजिक न्याय की सबसे अधिक आवश्यकता है। समाज का प्रत्येक दसवाँ हिस्सा अपंग है। इनकी सहायता किये बिना किसी भी प्रकार के न्याय की कल्पना नही की जा सकती है। लोग किसी भी धर्म, प्रजाति और समुदाय के हो, उन्हे सामाजिक न्याय में प्राथमिकता मिलनी चाहिए।

द्वितिय- सामाजिक न्याय के क्षेत्र में वे लोग आते है जो अनपढ़, असहाय, घुमक्कड़, बेघरबार, उजड़े, भिखारी, निर्धन तथा बेरोजगार है ये लोग अभाव ग्रस्त है, उनके अभावों का मूल्यांकन करके सामाजिक न्याय सुलभ कराया जा सकता है। सामाजिक न्याय का अध्ययन एवं लक्ष्य तभी पूरा होगा जब आर्थिक अभाव ग्रस्त होने के कारण कोई भूखा-नंगा न रहे।

तृतीय– सामाजिक न्याय के क्षेत्र में वे लोग आते है जो सामाजिक दृष्टि से पिछड़े, कमजोर तथा पददलित है। इन्हे अपमान जनक जीवन जीना पड़ता है। इन्हे नीच, अछूत समझा जाता है और इनको शोषण तथा बेरोजगार का शिकार बनाया जाता है। अतः सामाजिक न्याय की इन्हे आवश्यकता है।

चतुर्थ– सामाजिक न्याय क्षेत्र के उन कानूनों, परम्पराओं, रूढ़ियों, प्रथाओं, रीति-रिवाजों को सम्मिलित किया जाता है जो वर्तमान स्थिति में हानिकारक सिद्ध हो रहे है जिनमें सुधार तथा संशोधन आवश्यक है। इनसे उन मूल्यों की वृद्धि नही होती जिन्हें विद्यमान संविधान एवं विधि ने न्याय संगत माना है।

पंचम– सामाजिक न्याय के क्षेत्र, समस्त समाज-व्यवस्था, राज सत्ता और मानव सम्बन्धों को सम्मिलित करता है। इसका सम्बन्ध मानव जीवन के सभी पक्षों से है और सभी स्तरो पर सामाजिक न्याय की आवश्यकता होती है, लेकिन प्राथमिकताओं के आधार पर उसके अध्ययन क्षेत्र का निर्धारण कही अधिक लाभकारी सिद्ध होगा। उसके अन्तर्गत हर स्थिति को प्राथमिकता के अनुसार मूल्यांकन किया जाता है। सामाजिक न्याय के क्षेत्र में उन आदर्शों एवं विधियों की स्थापना सम्मिलित है जिनके आधार पर उसे प्रभावी बनाया जा सकता है, और जिनके द्वारा हम विद्यमान स्थितियों का मूल्यांकन मानव हितों की दृष्टि से करते है। इस प्रकार सामाजिक न्याय के क्षेत्र में सैद्धांतिक विचार ही नही, अपितु व्यावहारिक पक्ष कही अधिक जुड़ा हुआ है। उसके अन्तर्गत उन सभी विषयों की विधियों और आदर्शों का अध्ययन आता है जिनका सम्बन्ध मानव समाज की जीवन-पद्धति से है।

डॉ. अम्बेड़कर जानते थे कि सामाजिक न्याय का अर्थ और मूल्य क्या है? जो निर्बल, निर्धन, अछूत और पद्दलित है उन्हे ही न्याय की आवश्यकता है, विशेषकर सामाजिक न्याय की। इन्ही लोगो को ध्यान में रखते हुये, डॉ. अम्बेड़कर, डॉ. लोहिया, पं. नेहरू आदि ने समानता तथा बंधुत्व पर आधारित समाज की स्थापना का विचार प्रबल किया। कमजोर लोगो विशेषकर अनुसूचित जाति, जनजातियों और अन्य पिछड़ी जातियों को सामाजिक न्याय सुलभ होना चाहिए वे चाहते थे कि ऐसा लोकतंत्र स्थापित हो जो शुद्ध मानववादी, समाजवादी और धर्म-निरपेक्षवादी हो जहाँ सभी नागरिक संकीर्णता, धर्मान्धता, साम्प्रदायिकता, जातिगत भेदभाव, आर्थिक विषमता, आर्थिक विपन्नता, धार्मिक उन्माद के शिकंजो से मुक्त रह सकें। इन सब बुराईयों को निष्प्रभावी बनाने के लिये डॉ. अम्बेड़कर ने स्वतंत्रता, समता, बन्धुत्व पर अधिक बल दिया। उनकी मान्यता थी कि यदि बन्धुत्व को प्रभावशाली बनाया जाये तो भारतीय नागरिकों में राष्ट्रवाद और देशभक्ति की भावनाएँ सुसंचारित होंगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. ओ.पी. गाबा, राजनीति विज्ञान विश्वकोश, नेशनल पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 2003 पृ.सं. – 265*
2. *डॉ. बी.एल. फड़िया, डॉ. कुलदीप फड़िया, प्रमुख पश्चिमी राजनीतिक विचारक प्रकाशक-कॉलेज बुक हाउस, जयपुर-3, सन् 2008 पृ.सं.- 23*
3. *वही, पृ.सं.- 25*
4. *वही पृ.सं.-25*
5. *डॉ. बी.एल. फड़िया, 'प्रशासनिक संस्थायें' साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, पृ.सं.-5*
6. *डॉ. ओ.पी. गाबा, 'राजनीति विज्ञान विश्वकोश' नेशनल पब्लिकेशिंग हाउस, नई दिल्ली-2003, पृ. सं.-265-266*
7. *वही पृ.सं.-266*
8. *वही पृ.सं.-266*
9. *सुरेन्द्र कौशिक, 'राजनितिक सिद्धांत' उपकार प्रकाशन, आगरा, पृ.सं.-632*
10. *डॉ. ओ.पी. गाबा, समकालीन राजनीति सिद्धांत, मयूर पेपर बैंक्स, नोएडा-2001, पृ.सं.-238*
11. *डॉ. पुखराज जैन, 'राजनीतिक सिद्धांत' साहित्य भवन पब्लिशन्स, आगरा-2006, पृ.सं.-234*
12. *डॉ. वही पृ.-234*
13. *डॉ. डी.आर.जाटव, सामाजिक न्याय का सिद्धांत, समता साहित्य सदन-जयपुर, पृ.सं.- 7,8*
14. *उपरोक्त, पृ.सं.- 10,11*
15. *उपरोक्त, पृ.सं.- 3,4*

शिव लिंग एवं ज्योतिर्लिंग

डॉ. अतुल कुमार श्रीवास्तव
सहायक आचार्य, अ.रा.ब..जैन विश्व भारती स्नातकोत्तर महाविद्यालय, छबड़ा

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

भारत में लिंग पूजा परम्परा अति प्राचीन काल से है। स्वामी विवेकानंद, आदि विद्वान अथर्ववेद संहिता में आदि एवं अंत रहित यूप–स्तम्भ को ज्योतिर्लिंग का प्रथम उत्स मानते है। शास्त्रों में अन्य अनेक वस्तुओं से बने लिंगो का भी उल्लेख है। शिव पुराण में भूतल के प्रमुख बारह ज्योतिर्लिंगों का वर्णन दिया है जिनमें कुछ के स्थल विवादास्पद हैं। श्रीमद्भागवत में समस्त देव–गण शिव की स्तुति करते समय उनके लिंग रुप की ओर संकेत करते हैं और उसे पृथ्वी तथा आकाश तक व्याप्त बतलाते हैं। शिव पुराण में वर्णित द्वादश ज्योतिर्लिंग सर्वाधिक मान्य रूप में महाराष्ट्र में तीन (यिंम्बकेश्वर–नासिक, भीमशंकर–पूना, घ्रणेश्वर– ऐलोरा), मध्यप्रदेश में दो (महाकालेश्वर –उज्जैन एवं ओंकारेश्वर), गुजरात में दो (सोमनाथ, एवं नागेश्वर जो द्वारका व भेंट द्वारका के मध्य है), उत्तराखण्ड में एक (केदारनाथ), उत्तरप्रदेश में एक (काशी–विश्वनाथ), झारखण्ड में एक (वैद्यनाथ), आन्ध्रप्रदेश में एक (मल्लिकार्जुन) एवं तमिलनाडु में एक (रामेश्वरम्) स्थान पर शोभायमान हैं।

संकेताक्षर : *ज्योतिर्लिंग, शिव, लिंग, पुराण, वेद, सभ्यता, श्रीमद्भगवत।*

भारत में लिंग पूजा परम्परा अति प्राचीन काल से है। हिमालय के शिखरों से लेकर कन्याकुमारी तक तथा अटक से लेकर कटक तक हमारे यहाँ बहुतायत में शिवलिंग प्राप्य हैं। हड़प्पा सभ्यता में शिवलिंग मिले है। ऋग्वेद में लिंग पूजकों की निंदा की गई है। शिव पुराण, लिंग पुराण, स्कन्दपुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, ब्रह्मांड पुराण में लिंग पूजा की महिमा प्रकट की गई है। वाल्मीकि रामायण में लिंग पूजा का उल्लेख है। रावण जहाँ भी जाता था, अपने साथ स्वर्णलिंग भी ले जाता था, और बालू की वेदी बनाकर स्वर्णलिंग स्थापित कर पूजन करता था। वह स्वर्णलिंग के समक्ष नृत्य करता था। महाभारत के अनुशासन पर्व मे लिंग पूजा एवं शिव कथाओं का उल्लेख है। स्वामी विवेकानंद, आदि विद्वान अथर्ववेद संहिता में आदि एवं अंत रहित यूप–स्तम्भ को ज्योतिर्लिंग का प्रथम उत्स मानते है। इसी का विकास लिंग पुराण में प्रथम ज्योतिर्लिंग के रूप में हुआ माना गया है। मत्स्य पुराण में लिंग पूजा का प्रथम स्पष्ट वर्णन मिलता है।

वस्तुतः कोई भी देव ऐसा नहीं जिसका स्वरूप ज्योतिरूप न हो। स्वयं ब्रह्म को सूर्य के समान कहा गया है। (ब्रह्म सूर्य समं ज्योतिः, यजुर्वेद 23/48)। सूर्य ज्योतिर्लिंग का प्रकट रूप है। कोटि–कोटि सूर्य एक अक्ष–परम्परा में पिरोए हुए हैं। इन्ही सहस्रों दिव्य सूर्यों से बना महान ज्योतिर्लिंग है जिसे शिव का ''अग्नि स्कन्ध'' रूप कहते हैं। ज्योतिर्लिंग हेतु पाशुपत आचार्यो के अनुसार आख्यान है कि ज्योतिर्लिंग की इयत्ता जानने हेतु ब्रह्मा हंस पर ऊपर की और गए पर उन्हें उसकी अनन्तता का पता नहीं लगा। तब उन्होंने मिथ्या भाषण से प्रतिज्ञा की कि उन्होंने पता लगा लिया है। अतः वे शाप वश पूजा से बहिष्कृत हुए। विष्णु अपने गरूड़ पर ज्योतिर्लिंग की थाह पाने पाताल की और जाना चाहते थे कि उन्हें लगा कि यह ज्योति स्कम्भ अनन्त है। अतः उन्होने वहीं उसकी प्रदक्षिणा की और प्रणाम किया।[1]

लिंग पुराण में नानाविधि शिवलिंगो का वर्णन है–

1. इन्द्र नीलमय शिवलिंगः–सदैव विष्णु ने पूजा की।

2. पद्मराग मणिमयः–सदैव इन्द्र ने पूजा की।
3. स्वर्णमयः–विश्रवा के पुत्र ने पूजा की।
4. रजतः–विश्वे देवताओं ने पूजा की।
5. कान्तिक मयः–वसुओं ने पूजा की।
6. पीतल मयः–वायु ने पूजा की।
7. पार्थिव (मिट्टी):–अश्विनी कुमारों ने पूजा की।
8. स्फटिक मणिः–वरूण ने पूजा की।
9. ताम्रमयः–आदित्यों ने पूजा की।
10. मौक्तिकः–सोमराज ने पूजा की।
11. प्रबालमयः–अनन्त आदि नागों ने पूजा की।
12. लोहमयः–दैत्यों ने पूजा की।
13. त्रैलोहिकः–गुह्यकों ने पूजा की।
14. बालूमयः–चामुण्डा ने पूजा की।
15. लकड़ी केः–नैऋति ने पूजा की।
16. मरकत मणिः–यम ने पूजा की।
17. शुद्ध भस्म मयः–रूद्रों ने पूजा की।
18. विल्ब वृक्ष केः–लक्ष्मी ने पूजा की।
19. गोमयः–गुह (स्वामी कार्तिक) ने पूजा की।
20. कुशाग्र मयः–मुनियों ने पूजा की।
21. दधिमयः–सब वेदों ने पूजा की।
22. सीस निर्मितः–पिशाचों ने पूजा की।[2]

इसी प्रकार लिंग पुराण में द्रव्यों के भेदानुसार निम्न छः प्रकार के शिवलिंग बताये हैः–

1. शैलज शिवलिंग :– यह चार प्रकार के हैं, और सर्वसिध्दि प्रद हैं।
2. रत्नज शिवलिंग :– यह सात प्रकार के हैं, और लक्ष्मी प्रद हैं।
3. धातुज शिवलिंग :– यह आठ प्रकार के हैं, और धनप्रद है।
4. दारूज शिवलिंग :– यह सोलह प्रकार के हैं, और भोगसिध्दि प्रदाता है।
5. मृण्मय शिवलिंग :– यह दो प्रकार के हैं, और सर्वसिध्दि दाता है।
6. क्षणिक शिवलिंग :– यह सात प्रकार के है। क्षणिक लिंग, पूजा के समय बनाये जाते हैं और पूजा समाप्त होने पर विसर्जित कर दिये जाते हैं। ये शिवलिंग बालू ,चावल, भात, मक्खन, रूद्राक्ष, चन्दन, पुष्प, आटे आदि से बनते हैं।

इस प्रकार कुल 44 भेद हैं।[3]

शास्त्रों में अन्य अनेक वस्तुओं से बने लिंगो का भी उल्लेख है :–

1. पुष्पों से बने शिवलिंग का पूजन करने से भूमि लाभ प्राप्त होता है।
2. रजोमय लिंग विद्या देने वाला होता है।
3. अनाज से निर्मित लिंग परिवार को सुख देता है।
4. मिश्री से बने लिंग का पूजन करने से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है।
5. लवण लिंग सौभाग्य देता है।
6. गुड़ लिंग प्रीति में वृद्धि करता है।
7. नवनीत निर्मित लिंग, कीर्ति तथा सौभाग्य देने वाला होता है।
8. स्वर्णलिंग महामुक्ति देता है।
9. रजत लिंग विभूति देने वाला होता है।
10. कांस्य तथा पित्तलमय लिंग से सामान्य मोक्ष मिलता है।
11. सीसकादि से शत्रु नाश होता है, और
12. अष्टधातु से निर्मित लिंग सर्वसिध्दि देने वाला होता है।[4]

शिव पुराण में भूतल के प्रमुख बारह ज्योतिर्लिंगों का वर्णन दिया है जिनमें कुछ के स्थल विवादास्पद हैं :––

द्वादश ज्योतिर्लिंगानि

सौराष्ट्रेसोमनाथंचश्रीशैलेमल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यांमहाकाल मोंकार ममलेश्वरम्।
परल्यां वैद्यनाथंचडाकिन्यां भीमशंकरम्।
सेतुबंधे तु रामेशं नागेशं दारूकावने ।।
वाराणश्यांतुविश्वेशं यिंम्बकं गौतमीतटे।
हिमालये तु केदारंघुश्मेशंचशिवाालये ।
एतानिज्योतिर्लिंगानिसायंप्रातःपठेन्नर :।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेनविनश्यति ।।

1. सौराष्ट्र में सोमनाथ
2. श्री शैल पर मल्लिकार्जुन
3. उज्जैन में महाकाल
4. ओंकार तीर्थ में परमेश्वर
5. हिमालय के शिखर पर केदार
6. डाकिनी में भीमशंकर
7. वाराणसी में विश्वनाथ

8. गोदावरी के तट पर यिंम्बक

9. चिताभूमि में वैद्यनाथ

10. दारूकावन में नागेश

11. सेतुबन्ध में रामेश्वर, तथा

12. शिवालय में घुश्मेश्वर नामक ज्योतिर्लिंग है।[5]

1. **सोमनाथ ज्योतिर्लिंग :–** यह छः बार नष्ट हुआ एवं पुनः निर्मित हुआ है। यह गुजरात राज्य के सौराष्ट्र में प्रभास पाटन में स्थित है।

2. **मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिंग :–** मल्लिकार्जुन को श्री शैल भी कहा जाता है यह आन्ध्रप्रदेश के कुरनूल जिले में पाताल गंगा कृष्णा नदी के किनारे एक पहाड़ पर स्थित है, यहाँ आदि शंकर ने अपनी शिवानंद–लहरी की रचना की थी। श्री शैल पर्वत को भक्ति भाव में दक्षिण का कैलाश कहा जाता है।

3. **महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग :–** महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग मन्दिर मध्यप्रदेश के महाकाल, उज्जैन (अवन्ति) में स्थित है। बारह ज्योतिर्लिंगों में यह एक मात्र स्वयंभू लिंगम है। यह एक मात्र दक्षिण मुखी ज्योतिर्लिंग है। जहां गर्भगृह में शिवलिंग के ऊपर छत पर श्रीयंत्र बना है।

4. **ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिंग :–** यह ज्योतिर्लिंग मध्यप्रदेश राज्य में नर्मदा नदी के एकदम किनारे ओंकारेश्वर नामक स्थान पर है। यहाँ मामलेश्वर नामक शिव मन्दिर भी प्रमुख है। यह मंदिर एक द्वीप समान है जो नर्मदा नदी से घिरा है।

5. **केदारनाथ ज्योतिर्लिंग :–** उत्तरतम् ज्योतिर्लिंग उत्तराखण्ड राज्य के केदारनाथ में स्थित है। यह हिमालय में बर्फ से ढँके हुए बसे हैं। यहाँ केवल वर्ष के छः माह में पैदल ही पहुँचा जा सकता है। यह स्थल मंदाकिनी नदी के किनारे स्थित है।

6. **डाकिनी में भीमशंकर ज्योतिर्लिंग :–** शिव पुराण में वर्णित डाकिनी स्थल की स्थिति पर्याप्त विवादग्रस्त है।

(I) महाराष्ट्र में पूना के पास एक भीमशंकर मंदिर है जो वर्तमान में संरक्षित जगंल में स्थित है, इसे कभी डाकिनी देश के नाम से जाना जाता था।

(II) महाराष्ट्र की सह्याद्री श्रृंखला में एक अन्य भीमशंकर मंदिर भी ज्ञात है।

(III) उत्तराखण्ड में काशीपुर भी प्राचीन समय में डाकिनी देश के नाम से ज्ञात था जहाँ श्री मोटेश्वर महादेव के नाम से शिव मंदिर उपस्थित है।

(IV) असम में गुहाटी के नजदीक एक भीमशकंर मंदिर है, जिसे भी ज्योतिर्लिंग अध्यारोप किया गया है।

(V) दक्षिण उड़ीसा में रायगढ़ जिले के छनदनचनत के नजदीक महेन्द्रगिरि पर्वत के पश्चिमी भाग में महेन्द्र तनय नदी के किनारे भीमपुर में भीमशंकर मंदिर है। अनेक इतिहासविदों द्वारा इस क्षेत्र को डाकिनी क्षेत्र माना जाता है। यह क्षेत्र 1974 में उत्खनित किया गया था। शिवलिंग के चारो और चतुष्कोणीय शक्ति है।

7. **काशी विश्वनाथ ज्योतिर्लिंग :–** उत्तरप्रदेश में वाराणसी (बनारस या काशी) में विश्वनाथ ज्योतिर्लिंग है।

8. **यिंम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग :–** महाराष्ट्र राज्य में नासिक के नजदीक यिंम्बकेश्वर मंदिर है। यह गोदावरी नदी के उद्गम से सम्बन्धित है।

9. **चिताभूमि में वैज्यनाथ या वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग :–** वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग हेतु भी अनेक स्थल अध्यारोप किये गये है।

(I) झारखण्ड राज्य के संथाल परगना में वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग है जिसे बैद्यनाथ मंदिर भी कहा जाता है। यह भारत वर्ष का एकमात्र स्थल है जहाँ ज्योतिर्लिंग एवं शक्तिपीठ दोनों एक साथ है।

(II) हिमाचल प्रदेश के कांगरा जिले में स्थित बैजनाथ नामक शिवधाम भी ज्योतिर्लिंग कहा जाता है।

(III) महाराष्ट्र राज्य के बीद (Beed) जिले में स्थित पर्ली (Parli) वैज्यनाथ ज्योतिर्लिंग होने का दावा करता है।

10. **दारूकावन में नागेश या नागेश्वर ज्योतिर्लिंग :–** दारूकावन की स्थिति में भी विवाद है, यथा

(I) उत्तराखण्ड में अल्मोड़ा के नजदीक नागेश्वर ज्योतिर्लिंग है।

(II) गुजरात में द्वारका से भेंट द्वारका के मार्ग में एक इस नाम से ही ज्यातिर्लिंग है।

(III) महाराष्ट्र के हिंगोली (Hingoli) जिले में Aundhanagnath नामक मंदिर है।ये सभी मन्दिर दारूकावन में नागेश्वर ज्योतिर्लिंग होने का अध्यारोप करते हैं।

11. **रामेश्वर ज्योतिर्लिंग :–** समस्त ज्योतिर्लिंगो में यह दक्षिणतम ज्योतिर्लिंग है। यह तमिलनाडु प्रान्त के रामेश्वरम् में स्थित है। इस शिवलिंग का अभिषेक स्वयं भगवान राम द्वारा किया गया था, अतः मंदिर का नाम रामेश्वरम् हुआ।

12. **घ्रिश्नेश्वर ज्योतिर्लिंग :–** यह ज्योतिर्लिंग मंदिर महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में ऐलोरा के रॉक–कट मंदिर के पास स्थित है। इस मंदिर को घुश्मेश्वर या घ्राणेश्वर नाम से भी जाना जाता है।[6]

इस प्रकार, शिव पुराण में वर्णित द्वादश ज्योतिर्लिंग सर्वाधिक मान्य[7] रूप में महाराष्ट्र में तीन (यिंम्बकेश्वर–नासिक, भीमशंकर–पूना, घ्रणेश्वर–ऐलोरा), मध्यप्रदेश में दो (महाकालेश्वर –उज्जैन एवं ओंकारेश्वर), गुजरात में दो (सोमनाथ, एवं नागेश्वर जो द्वारका व भेंट द्वारका के मध्य है), उत्तराखण्ड में एक (केदारनाथ), उत्तरप्रदेश में एक (काशी–विश्वनाथ), झारखण्ड में एक (वैद्यनाथ), आन्ध्रप्रदेश में एक (मल्लिकार्जुन) एवं तमिलनाडु में एक (रामेश्वरम्) स्थान पर शोभायमान हैं।

शिवलिंग मूलतः निम्न स्वरूपों में प्राप्त हैं :–

लिंग विग्रह :– यह बिल्कुल सादा है।

एक मुखी शिवलिंग :– इनमें मूर्ति के एक और मानव मुख है।

पंचमुखी शिवलिंग :– इनमें चार मुख चार दिशाओं में, एवं पाँचवा सबसे ऊपर होता है।[8]

शिव के पांच मुखों का विवरण निम्न प्रकार ज्ञात है :–

1. सद्योजात :– इसका सम्बन्ध पृथ्वी तत्व से था।

2. वामदेव :– इसका सम्बन्ध जल तत्व से था, कालान्तर में इसका अंकन सुन्दर स्त्री मुख रूप में किया जाने लगा, जैसा ऐलिफेण्टा की पंचब्रह्म या महेश मूर्ति में है।

3. अघोर :– इसका सम्बन्ध अग्नि तत्व से है। कालान्तर में इसका अंकन भयानक मुख या शीर्ष रूप में किया जाने लगा, जैसा कि ऐलिफेण्टा की मूर्ति के दाहिने मुख में है।

4. तत्वपुरूष :– इसका सम्बन्ध वायु तत्व से है। वायु साक्षात् प्राण का रूप है और उपनिषदों में इसे प्रत्यक्ष ब्रह्म कहा गया है।

5. ईशान :– इसका सम्बन्ध आकाश तत्व से है, जो सर्व व्यापक और सबसे सूक्ष्म है और जिसे वेदान्त ब्रह्मसूत्रों में ब्रह्म का ही स्वरूप माना है।

शिव के इन पंचमुखो का इस प्रकार का प्रतिपादन लिंग पुराण में पंचब्रह्म सिध्दान्त के रूप में किया गया है। स्वयं शिव सृष्टि का प्रतीक हैं और उनके पंचमुख व्यक्त पंचभौतिक विश्व के प्रतीक हैं।[9]

लिंग का विवरण अन्य अनेक ग्रंथों में भी है।

अपाराजित पृच्छ ग्रन्थ में शिव तथा शक्ति दोनों को लिंग का प्रतीक माना है। यह सृष्टि उन्हीं दोनों के संयोग से उत्पन्न हुई है।[10] विष्णुधर्मोत्तर में शिवलिंग के तीन भाग कहे गये है– 1. भोगपीठ, 2. भद्रपीठ तथा 3. ब्रहपीठ ।[11]

श्रीमद्भागवत में समस्त देव–गण शिव की स्तुति करते समय उनके लिंग रुप की ओर संकेत करते हैं और उसे पृथ्वी तथा आकाश तक व्याप्त बतलाते हैं।[12]

शिल्प ग्रन्थों में तीन प्रकार के लिंगों का वर्णन हुआ है जो क्रमशः 1. निष्कल 2. सकल तथा 3. मिश्र है। केवल लिंग रूप में बना हुआ आकार निष्कल , प्रतिमा का रूप सकल तथा मुखलिंग रूप मिश्र होता है।[13] इन तीनों प्रकार के लिंगों के दृष्टान्त वैष्णव पुराणों में प्राप्त होते हैं। विष्णुधर्मोत्तर में जिस लिंग के निर्माण का आदेश दिया है वह निष्कल लिंग है। श्रीमद्भागवत तथा विष्णु पुराण आदि में शिव के सकल रूप लिंगों का वर्णन है। सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरूष तथा ईशान इन पांच मुखों वाला लिंग रूप मिश्र का उदाहरण है।[14]

राव महोदय ने लिंग के दो प्रकार बताये हैं :–1. चल तथा 2. अचल।

चल लिंग हल्के होते हैं और सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाये जा सकते हैं।[15]

आगम ग्रंथों में अनेक प्रकार के लिंगो का वर्णन हुआ है। सुप्रभेदागम में दस प्रकार के लिंग बताये गये हैं :–

1. स्वायम्भुव 2. पूर्ण 3. दैवत 4. गाणपत्य 5. आसुर 6. सुर 7. आर्श 8. राक्षस 9. मानुष तथा 10. बाण।[16]

मनुष्यों द्वारा बनाये जाने वाले लिंग मानुष कहलाते हैं। इसके तीन भाग होते हैं – ब्रह्म भाग, विष्णु भाग, तथा

रूद्र भाग। रूद्र भाग ही पूजा भाग अथवा भोग भाग कहलाता है। इसी पर जल चढ़ाया जाता है। और पुष्प फल तथा अन्य पूजा की वस्तुएँ चढ़ाई जाती हैं। रूद्र भाग पर कुछ रेखांएँ बनती हैं जिन्हे ब्रह्म सूत्र कहते हैं। (मयमत अ. 33/21–27)[17]

मुखलिंग के अन्तर्गत एक मुख से लेकर पाँच मुख तक बनते हैं। एक मुख लिंग की एक प्रतिमा लखनऊ संग्रहालय में है, जिसमें लिंग के एक ओर मुख बना है। सिर पर जटा–जूट बने हैं। बैनर्जी महोदय ने एक एकमुखी तथा एक पंचमुखी लिंग का उल्लेख किया है जिसमें लिंग के चारों ओर चार मुख हैं और पाँचवा मुख लिंग के शिरो भाग पर चारों सिरों के ऊपर बना है।[18] मुख लिंग का एक उदाहरण दक्षिण भारत में प्राप्त गुडीमल्लम लिंग है।[19] यह लिंग परशुरामेश्वर मंदिर में है, जो आन्ध्रप्रदेश के चित्तूर जिले में गुडीमल्लम नामक गाँव में मद्रास के निकट रेनीगुंटा के पास है। मंदिर में स्थित शिवलिंग लगभग पाँच फुट ऊँचा एवं एक फुट मोटा है। इस पर द्विबाहु शिव की मूर्ति उत्कीर्ण है। इनके दाएं हाथ में मेढ़ा और बाएं हाथ में एक जलपात्र और युध्द का फरसा है, वे एक कुबड़े बोने के कंधों पर खड़े हैं। पुरूषेन्द्रिय धोती के नीचे प्रमुख रूप से दर्शाई गई है। शिव मूर्ति स्थानक मुद्रा में जटाओं युक्त है। वे कानों में कुण्डल एवं शरीर पर आभूषण धारण किये हुए हैं। वे एक अद्वितीय करधनी पहने हैं। उनके कंधे पर त्रिशूल रखा है। इस मंदिर की तिथि द्वितीय या प्रथम शताब्दी ई.पू. है। यह प्राचीनतम शिवलिंग है जिसकी पूजा आज भी की जाती है।[20] उज्जैन से प्राप्त कुछ ताम्र सिक्के जो तीसरी शताब्दी ई.पू. के हैं, उन पर प्राप्त चित्र गुडीमल्लम शिवलिंग से समरूपता रखते हैं। इसी प्रकार मथुरा संग्रहालय की एक प्रथम शताब्दी ई. की मूर्ति भी गुडीमल्लम शिवलिंग से समानता रखती है।[21] भीटा से प्राप्त शिव लिंग का उल्लेख राव महोदय ने किया है। यह लिंग लखनऊ संग्रहालय में रखा है। लिंग के सबसे ऊपर एक पुरूष मुख है। वह बाएँ हाथ में त्रिशूल लिये हैं, दाहिना हाथ अभय–मुद्रा में है। उसके नीचे लिंग में चार मुख चार कोनों पर बने हैं। कानों में कुण्डल तथा केश विन्यास के आधार पर आर. डी. बैनर्जी महोदय ने उन्हे इस्त्री का मुख माना है, किन्तु जे.एन. बैनर्जी महोदय पुरूष मुख ही मानते हैं और इसे शिव का पंचमुखी लिंग मानते हैं।[21]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, (प्रारम्भिक युग से तीसरी शताब्दी ई.), पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी – 221005 , पृष्ठ 60*
2. *लिंग पुराण, पृष्ठ 242–243 (http:/depak.esmartguy.com//books. htm)*
3. *लिंग पुराण, पृष्ठ 243–244 (http:/Deepak.esmartguy.com//books.htm)-*
4. *योगेश चन्द्र शर्मा, दैनिक नवज्योति (राज.) परिवेश 10 फर., 2010, पृष्ठ 5.*
5. *संक्षिप्त शिव पुराण, पृष्ठ–478 (http: :/Deepak.esmartguy.com//books.htm)*
6. *शिव पुराण (शतरूद्रीय संहिता,42/2–4)*
7. *आर. ए. शर्मा, प्रो. प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व, जी.वि.वि, ग्वालियर.*
8. *वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, (प्रारम्भिक युग से तीसरी शताब्दी ई.), पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी– 221005, पृष्ठ 267.*
9. *वही।*
10. *इन्दुमती मिश्र, प्रतिमाविज्ञान, म.प्र.हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल ,1987, पृष्ठ–262.*
11. *वही, पृष्ठ–263*
12. *वही।*
13. *वही।*
14. *वही, पृष्ठ–264.*
15. *वही।*
16. *वही।*
17. *वही, पृष्ठ–265.*
18. *वही, पृष्ठ–265–66.*
19. *वही, पृष्ठ–266.*
20. *http://en.wikipeia.org/wiki/fudimallam.-*
21. *वही।*
22. *इन्दुमती मिश्र, प्रतिमाविज्ञान, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 1987, पृष्ठ–266.*

सिरोही राज्य में ठिकाणो की संरचना

विक्रमसिंह देवड़ा
शोधार्थी, मोहनलाल सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

shodhshree@gmail.com

शोध सारांश

रियासती काल में राज्य की शासन व्यवस्था को सूचारू बनाए रखने के लिए ठिकाणा व्यवस्था स्थापित की गई थी। इन ठिकाणो के सरदारो का प्रमुख कार्य अपने भाई बंधुओ को सैनिक के दायित्व के तहत् इकट्ठा कर अपने शासक की जमीयत सेना के अंग के रूप में राज्य के बाहरी शत्रुओं से सुरक्षा करना एवं पुलिस के दायित्व का निर्वहन करते हुए आतंरिक शान्ति व्यवस्था बनाए रखना था। साथ ही अपने ठिकाणे से भू-राजस्व एवं अन्य करो का संग्रहण कर अपना हिस्सा निकाल कर राज्य कर को राजकोष में जमा करवाते थे। ये ठिकाणे महल संस्कृति के प्रतिरूप होने के साथ ही अपने क्षेत्र में शासक के प्रतिनिधि अधिकारी की हैसियत से राज कार्य संचालन करते थे। अतः सिरोही राज्य में इनकी संरचना के तहत् इनके गठन, वंश आदि के बारे में जानकर इनकी अहमियत का पता चलता है।

संकेताक्षर : *सिरोही राज्य, देवड़ा चौहान राजवंश, ठिकाणे, राजवी, ताजीम, डुंगरावत, लखावत, श्रेणीवार ठिकाणे, गीनायत जागीर, अरठ जागीर, पाटवी, बैठक।*

रायबहादूर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपनी पुस्तक सिरोही राज्य का इतिहास में लिखा है कि सिरोही राज्य की समस्त प्रकार की जमीन का मालिक (स्वामी) राज्य ही समझा जाता था अर्थात् राज्य की भूमि का स्वामी शासक ही था और किसी भी प्रकार की भूमि का उपभोग शासक की इच्छा प्रयत्न ही किया जा सकता था। राज्य की भूमि तीन भागों में विभक्त थी, जो जागीर, शासन और खालसा कहलाती थी।[1]

सिरोही राज्य की आम बोलचाल की भाषा में जागीर को ठिकाणा एवं जागीरदार को ठिकाणेदार, गांव धणी आदि भी कहते थे। इन ठिकाणो के स्वामीयों को सामान्यतः ठाकुर कहा जाता था। सिरोही राज्य में जागीर तीन प्रकार की थी।[2]

(1) राजवी जागीर :– महाराव शिवसिंह के छोटे राज कुमारो की जागीरे, जो उनके निर्वाह हेतू इस शर्त पर प्रदान की गई थी कि जब तक उनका वंश कायम (जारी) रहेगा तब तक ही वह उनके स्वामित्व में रहेगी। पाटवी के अपुत्रवान होने की स्थिति में उन्हें गोद लेने का अधिकार नहीं होगा।[3] अर्थात् ऐसी स्थिति में वह जागीर रियासत द्वारा जब्त कर खालसा भूमि में रूपान्तरित कर दी जायेगी।

(2) वंशानुगत जागीर :– महाराव शिवसिंह से पूर्व के शासको के छोटे राजकुमारो तथा सरदार व ठाकुरो की जागीरे, जो वंश परम्परागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही थी। इन जागीरो एवं उप जागीरो के पाटवी के अपुत्रवाद होने की स्थिति में (राजवी जागीरो के विपरीत) राज्य की अनुमति से गोद लेने की सुविधा थी। ऐसी जागीर या उप जागीर को बनाए रखना या गोद लेने की स्वीकृति देना महाराव की इच्छा पर निर्भर करता था।[4] ये जागीरे देवड़ा चौहान राजवंशियों के पास थी।

(3) वेतन (इनाम) जागीर :– सिरोही राज्य में किसी खास नौकरी, सेवा, राजभक्ति एवं वफादारी के कारण मिली हुई जागीर। जैसे – गिनायत जागीर, अरठ जागीर आदि।

इस श्रेणी की जागीर के अपुत्रवान पाटवी को गोद लेने का अधिकार नहीं था। परन्तु गिनायत जागीर जैसे मामलो में

असाधारण रूप से इन्हें वंशानुगत बना दिया गया। अतः महाराव की इच्छा उपरान्त इन्हें भी गोद लेने की स्वीकृति प्रदान की जाती थी।[5]

सिरोही राज्य में ठिकाणों की श्रेणीयां

जगदीशसिंह गहलोत ने राजपूताने का इतिहास में सिरोही के सरदारो को टाईटल के अनुरूप तीन वर्गो में बांटा है[6]

(1) प्रथम – शासक के कुटुम्ब के सदस्य जिन्हें 'महाराज' कहा जाता है।

(2) द्वितीय – दूसरे वर्ग के सरदार, जिन्हें 'ठाकुर राजश्री' कहा जाता है।

(3) तृतीय – जिन्हें सिर्फ ठाकुर कहा जाता है।

जो सही नहीं है क्योंकि गहलोत के अनुसार ये सब सरदार देवड़ा चौहान राजपूत है, जबकि सिरोही में देवड़ो के अतिरिक्त राणावत, बीकानेरीया राठौड़, दहिया, काबा परमार आदि कई सरदार भी विद्यमान रहे है।

मेवाड़ राज्य की ठिकाना व्यवस्था के अन्तर्गत ठिकानो को तीन श्रेणीयों सोलह, बत्तीस और गोल में बांटा गया था जहां श्रेणीवार ठिकाणों की संख्या परिवर्तित होती रही। जबकि सिरोही राज्य में किसी भी शासक द्वारा इस प्रकार से ठिकानों की श्रेणी व्यवस्था स्थापित नहीं की गई। यहां पर दो प्रकार के ठिकाने थे – ताजीमी और गैर ताजीमी। इसलिए हम इन्हें श्रेणीवार दो भागों में विभाजित कर सकते है। प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत ताजीमी और द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत गैर ताजीमी[7]

प्रथम श्रेणी के (ताजीमी) ठिकाणे

सिरोही राज्य के प्रथम श्रेणी के ठिकानेदार, जिन्हें ताजीम प्राप्त थी इसलिए इनकी जागीर ताजीमी ठिकाणे कहलाती थी, अन्य राज्यों की भांति ये ताजीमी सरदार सिरोही के उमराव थे, जिन्हें सरायत कहा जाता था। इन्हें पदानुसार हैजीयत अनुसार अकेवडी (इकहरी) एवं बेवडी (दोहरी) ताजीम (सम्मान/इज्जत) प्राप्त थी। इन ठिकानो को हम तीन भागो में विभाजित कर सकते है।

(1) राजवी ठिकाने

शासक के छोटे भाई, पारिवारिक सदस्यों अर्थात् महाराव के निकट रक्त संबंधियों को राजवी कहा जाता था। अतः इनके निर्वाह हेतु प्रदत जागीर राजवी ठिकाणा कहलाता था। चूंकि सिरोही के शासक देवड़ा चौहान राजवंश की लखावत शाखा के थे, अतः ये राजवी भी लखावत शाखा के थे, इनमें सिरोही के महाराव मानसिंह द्वितीय उर्फ उम्मेदसिंह के तीसरे पुत्र जोरावरसिंह के वंशज जोरावरसिंहोत लखावत एवं महाराव शिवसिंह के वंशज शिवसिंहोत लखावत उप शाखा के राजवी है।

सिरोही के महाराव शिवसिंह के पूर्व के राजवियो को 'रायजी या राजश्री' की उपाधि (पदवी) प्राप्त थी। महाराव शिवसिंह के राजकुमारो को 'राज साहेबा' का टाइटल दिया गया। तदुपरान्त विक्रम सम्वत 1981 (1924 ईस्वी) के दशहरा दरबार में महाराव स्वरूप रामसिंह ने 'शिवसिंहोत' राजवियों को 'राजंसाहेबा' की जगह 'महाराज' की पदवी इनायत की एवं मण्ड़ार की दोनो पांति के 'जोरावरसिंहोत' राजवियों को 'राज साहेबां' की उपाधि प्रदान की।[8]

सिरोही की हल्दीघाटी के रूप में प्रसिद्ध दत्ताणी रणखेत के समर 1583 ई. के विजेता महाराव सुरताण के द्वितीय पुत्र सुरसिंह को काछोली की जागीर दी गई थी, जो राजवी ठिकाणा था परन्तु बाद में वैवाहिक संबंधो में उतार आने से इसे सामान्य श्रेणी के ठिकाने में बदल दिया गया[9] एवं इसके पाटवी की उपाधि भी 'ठाकुर' ही रही। तदुपरान्त जनापुर की आधि पांति के राणावतों की शारणेश्वरजी महादेव के नाम की जनापुर की आधि पांति के रावलों से चल रही अनबन एवं विवाद से बचने हेतू अन्य जगह स्थानान्तरित करने की प्रार्थना पर महाराव द्वारा काछोली की दूसरी पांती राणावतो को दी गई।

(2) डूंगरावतो के ताजीमी ठिकाने

सिरोही के महाराव शिवभाण उर्फ शोभा ने अपने भतीजे डूंगरसिंह गजेसिंहोत को चन्द्रावती पाटस्थान से राड़बर की जागीर इनायत की। इसी डूंगरसिंह के वंशज डूंगरावत देवड़ा कहे जाते है। इनका प्रथम ठिकाणा राड़बर था, जबकि पाटवी ठिकाणा–पाडीव है।[10]

डूंगरावतो के चार ताजीमी ठिकाणे सिरोही के सरायत थे। जिनमें से पहला दर्जा (स्थान) पाडीव को द्वितीय दर्जा कालन्द्री को तीसरा दर्जा जावाल को एवं चौथा दर्जा मोहब्बतनगर (मोटागाम/बुआड़ा) को प्राप्त था।[11]

मेर मण्ड़वाड़ा भी डूंगरावतो का एक ताजीमी ठिकाणा है, जिसे अन्य ताजीमी सरदारो की भांति 'ठाकुंरा राज' के टाइटल के साथ पैर में सोना पहनने का सम्मान राज्य की तरफ से दिया गया है। यह ठिकाणा सरायत

नहीं है, फिर भी राज्य द्वारा कई बार उसे सरायत के तौर पर बुलाकर काम लिया जाता है।[12]

(3) लखावतो के ताजीमी ठिकाणे

सिरोही के महाराव लाखा (वि.स. 1508–1540) के वंशज लखावत देवड़ा कहलाते है। वि.स. 1528 (1471 ई.) में महाराव लाखा ने अपने पुत्रो हमीरसिंह, शंकरसिंह, उदयसिंह व मांडण को जागीरे दी।[13]

लखावतो के चार ताजीमी ठिकाणे थे, जो सिरोही के सरायत (मुख्य सामन्त/ उमराव) माने जाते थे। इनमें निम्बज के ठाकुर को दोहरी ताजीम प्राप्त थी जबकि भटाणा, रोहूआ व डबाणी को एक ही ताजीम प्राप्त थी।

महाराव सुरताण के समय वि.स. 1658 (1601 ई.) में पृथ्वीराज को निम्बज की जागीर दी गई। इसने अपने नाम पर पीथापुरा गांव बसाया।[14]

जिस प्रकार पाडीव डूंगरावतो का (पाटवी/मुखीया ठिकाणा) था, उसी भांति निम्बज लखावतो का (पाटवी/मुखीया ठिकाणा) था[15] जबकि सिरोही महाराव सम्पूर्ण राज्य के मुखीया/स्वामी थे।

सिरोही राज्य के भारत गणराज्य में अधिमिलन के समय सिरोही के इन प्रथम श्रेणी के ताजीमी ठिकाणो की अवस्थिति निम्नानुसार थी।[16]

क्रं.सं.	ठिकाणा	उपाधि	उपशाखा	शाखा
1	नांदिया	महाराज	शिवसिंहोत	लखावत देवड़ा
2	अजारी	महाराज	शिवसिंहोत	लखावत देवड़ा
3	मनादर	महाराज	शिवसिंहोत	लखावत देवड़ा
4	मण्ड़ार (बडी पांती)	राज साहेबां	जोरावरसिंहोत	लखावत देवड़ा
5	मण्ड़ार (छोटी पांती)	राज साहेबां	जोरावरसिंहोत	लखावत देवड़ा
6	पाडीव	ठाकुरा राजश्री	रामावत	डूंगरावत देवड़ा
7	कालन्द्री	ठाकुरा राजश्री	सुरावत	डूंगरावत देवड़ा
8	जावाल	ठाकुरा राजश्री	रामावत	डूंगरावत देवड़ा
9	मोहब्बत नगर	ठाकुरा राजश्री	सुरावत	डूंगरावत देवड़ा
10	मेर माण्ड़वाडा	ठाकुरा राजश्री	कुम्भावत	डूंगरावत देवड़ा
11	निम्बज	राज साहेबां	पृथ्वी राजोत	लखावत देवड़ा
12	भटाणा	ठाकुरा राजश्री	तेजावत	लखावत देवड़ा
13	रोहूआ	ठाकुरा राजश्री	सांगावत	लखावत देवड़ा
14	डबाणी	ठाकुरा राजश्री	सामीदासोत	लखावत देवड़ा

वि.स. 1982 (1925 ई.) में सिरोही महाराव स्वरूप रामसिंह ने दशहरा के दरबार में निम्बज ठाकुर साहब मोहब्बतसिंह को उसकी जात के वास्ते 'राज साहेबां' व पाडीव ठाकुर साहब अभयसिंह को निज के वास्ते 'सभाभूषण' का खिताब दिया गया।[17] जबकि चौहान कुल कल्पद्रुम (भाग दो) में देसाई लिखते है कि वि.स. 1982 के दशहरा दरबार में निम्बज ठाकुर मोहब्बतसिंह को नीज के लिए 'राज साहेबां' का खिताब दिया गया।[18]

सिरोही राज्य में प्रथम श्रेणी के ये सभी सरदार देवड़ा चौहान राजवंश की डूंगरावत एवं लखावत शाखा की विभिन्न उपशाखाओं से संबंधित थे। इनमें से राजवी ठिकाणे – नांदिया, अजारी, मनादर व मण्ड़ार के सरदार राज दरबार में महाराव के सम्मुख बांयी तरफ बैठते थे। इन्हें दोहरी ताजीम प्राप्त थी अर्थात् राज दरबार में इनके आगमन एवं प्रस्थान के समय महाराव अपने सिंहासन से उठकर उनका अभिवादन स्वीकार कर उन्हें दोहरा (दो बार) सम्मान देते थे।

डूंगरावत सरायत राज दरबार में महाराव के सम्मुख दांयी तरफ बैठते थे, जहां अव्वल दर्जे (पहले नम्बर) की बैठक पाडीव ठाकुर के लिए नियत की हुई थी। डूंगरावतो में पाडीव, कालन्द्री, जावाल एवं मोहब्बतनगर (मोटा गाम/बुआड़ा) के सरदारो को बेवडी (दोहरी) ताजीम प्राप्त थी एवं मेर माण्ड़वाड़ा को अकेवडी (इकहरी/एक) ताजीम प्राप्त थी। एक ताजीम प्राप्त सरदारो के राज दरबार में आगमन पर ही

महाराव द्वारा सिंहासन से उठकर उनका अभिवादन स्वीकार किया जाता था, उनके प्रस्थान के समय महाराव द्वारा सिंहासन पर बैठे हुए ही उनका अभिवादन स्वीकार किया जाता था।

राजवियों के अतिरिक्त अन्य लखावत सरदारो (निम्बज के अलावा अन्य) को एक ही ताजीम प्राप्त थी और वे राज दरबार में महाराव के सम्मुख बाई तरफ राजवियों के उपरान्त बैठक लेते थे।

भटाणा एवं रोहुआ के ठाकुर यदि निम्बज ठाकुर के साथ ही राज दरबार में आते तो उन्हे भी दोहरी ताजीम मिलती थी अन्यथा डबाणी व मेर मण्ड़वाड़ा के ठाकुर की भांति उन्हें भी एक ही ताजीम मिलती थी।[19]

निम्बज ठिकाणे ने अपनी स्थापना के समय से ही सिरोही महाराव से बगावती रूख अख्तियार कर रखा था। इसी क्रम में रायसिंह द्वारा राज हुकम नहीं माना जाने पर सिरोही राज्य की सेना ने निम्बज पर चढ़ाई कर दी फलस्वरूप ठाकुर रायसिंह को अपने पुत्र प्रेमसिंह सहित निम्बज छोड़कर पहाड़ की पनाह लेनी पडी। बाद में रामसीन के ठाकुर काबा परमार जगतसिंह द्वारा समाधान करवाये जाने पर वि.स. 1881 (1824 ई.) में वह सिरोही में हाजीर हुआ। तब महाराव ने उसे राज दरबार में अव्वल दर्जे (पहले नम्बर) की दाहिनी बैठक की इज्जत बक्शी। इससे सिरोही राज दरबार में पाडीव व निम्बज दोनो ठिकाणे के ठाकुरो की एक ही बैठक (कुर्सी) हो गई फलतः दरबारी जुलुस में ये दोनो एक ही समय उपस्थित नहीं होते थे यदि एक बैठा होता तो दूसरे के आगमन से पहले वह राज दरबार छोड़ देता था। लेकिन पाडीव ठाकुर अभयसिंह के समय दोनो में मेलजोल हो गया और तब से दोनो सरदार दशहरा आदि त्यौहार पर आयोजित आम दरबार में एक साथ बैठक लेते है।[20]

द्वितीय श्रेणी के (गैर ताजीमी) ठिकाणे

सिरोही राज्य में वे सभी ठिकाणे प्रथम श्रेणी के ठिकानो में सम्मिलित थे, जिन्हें ताजीम प्राप्त थी। इनके अतिरिक्त अन्य सभी ठिकानो को एक ही दर्जा प्राप्त था चाहे वो किसी उपशाखा का मुख्य ठिकाणा हो या उप ठिकाणा हो, उन सभी को सिरोही राज दरबार में एक समान मान्यता हासिल थी। इसलिए ये सभी ठिकाणे सिरोही राज्य के द्वितीय श्रेणी के ठिकाणो में गिने जाते है।[21]

सिरोही राज्य में द्वितीय श्रेणी के ठिकाणो में देवड़ा–चौहान राजवंशियों सहित गिनायत जागीर प्राप्त अन्य राजपूत राजवंशियो जैसे राणावत (सिसोदिया) बीकानेरीया (राठौड़), दहिया के ठिकाणे भी शामिल थे।

शाखानुसार इन ठिकाणो की संरचना निम्नानुसार थी।

(1) डूंगरावत देवड़ा की उपशाखानुसार ठिकाणे

देवड़ा चौहान राजवंश के पाट स्थान चन्द्रावती से महाराव शिवभाण उर्फ शोभा ने अपने छोटे भाई गजेसिंह के पुत्र डूंगरसिंह को राड़बर की जागीर इनायत की तब डूंगरसिंह ने राड़बर के तत्कालीन सोलंकी सरदार को मारकर वि.स. 1446 (1388 ईस्वी) में 24 गांवो सहित राडबर की जागीर को अधिकृत किया।[22]

डूंगरसिंह की माता देव कुंवर सोलंकी जगमाल बीदावत की पुत्री थी और राड़बर का सरदार उसका मामा था, जिसके वंशज राड़बरा सोलंकी कहलाते है। यहीं डूंगरसिंह डूंगरावत शाखा का मूल पुरूष है। जिनके निम्नलिखित ठिकाणे थे।[23]

क्रं.सं.	उपशाखा	ठिकाणो के नाम
1	भेदावत	चुली (पाटवी), गोड़ाना, चोट्ला, तेलपुर, छोटी पुनक, गडरा, गणेशीवाला (अरठ जागीर, पिण्ड़वाड़ा)
2	मालणवा	विरोली (पाटवी) वीरवाड़ा, चवरली, वेरा जेतपुरा (सिवेरा), सूरजपुरा/बलवस (सिवेरा) डिंगार, सिलवणी, डाबा (अरठ जागीर)
3	मांडणोत	कैलाशनगर/लाय (पाटवी), तलेटा, छिबागांव, मांडाणी, बग
4	कुम्भावत	सिलदर, मेर मण्ड़वाड़ा (ताजीमी), पोइदरा, तंवरी, रायपुरिया, कोटरा, रोड़ा–खेड़ा
5	वजावत/हरराजोत	झाडोली (पाटवी), अणदौर, बड़ा लोटीवाड़ा, सतापुरा, मनोरा, मोरली, वेरापुरा, देलदर, छोटा लोटीवाड़ा, नोसरा, वागुंदा, बावडी, वारणी, भरूडी

6	गांगावत	जेला (पाटवी), सनपुर, फलवदी, करजाल, टोकरा, बडी पुनक (भोम जागीर)
7	सवरावत	मडिया (पाटवी), फूंगणी, जामोतरा, बारेवड़ा, मण्ड़वाड़ा (उड) सवराटा, सवली, सिरोडकी
8	रामावत	पाडीव (डूंगरावतो का पाटवी/ताजीमी), पालडी एम ., वागसीन, जावाल (ताजीमी), नून (पांती नं. 1), सिन्दरथ, नारादरा, ओडा, सरण का खेड़ा
9	सुरावत/सामंतसिंहोत/प्रतापसिंहोत	कालन्द्री (पाटवी/ताजीमी), वाण, सगालीया, डोडुआ, वेलांगरी, धान्ता, नवारा, अणगौर, कुआड़ा, चडुआल, मोहब्बतनगर (ताजीमी), बरलुट, काकेन्द्रा, मण्डवारिया, सिलोईया, निबोडा
10	भीमावत	भूतगांव, मानगढ (पाटवी), सुमेरगढ (अरठ जागीर), कलदरी/पालडी एम. (अरठ जागीर)
11	अर्जुणोत	नून (पाटवी), सुमेरगढ (अरठ जागीर), भूतवास (अरठ जागीर)
12	मेरावत	अरठवाड़ा (पाटवी), राडबर, वाड़का, भेव, उथमण, पोसालिया, वेरा रामपुरा, खणदरा, रूखाड़ा, मोसाल, फतापुरा
13	अमरावत	बुडेरी (पाटवी), गोला, जोयला, जोगापुरा, पोईणा, धनापुरा, मोटा लखमावा
14	देदावत	नोवी, रूपनगर (मण्डवारिया)
15	आंबावत	कैलाशनगर (अरठ जागीर)

(2) लखावत देवड़ा की उपशाखानुसार ठिकाणे

1425 ई. में सिरोही नगर की स्थापना करने वाले महाराव सहसमल उर्फ सेसमल के उत्तराधिकारी पुत्र महाराव लाखा (1451–1483 ई.) के वंशज लखावत देवड़ा कहलाते है। राजवी ठिकाणो के अतिरिक्त उपशाखानुसार लखावत देवडो के निम्नलिखित ठिकाणे थे[24]

क्रं.सं.	उपशाखा	ठिकाणो के नाम
1	सामीदासोत	डबाणी (पाटवी/ताजीमी), मालगांव, थल, सिरोडी
2	पृथ्वीराजोत	निम्बज (पाटवी/ताजीमी), निबोडा, पोसीतरा, सेलवाड़ा, धवली, पीथापुरा (एस), डांगराली, लुणोल
3	तेजावत	भटाना (पाटवी/ताजीमी), भेरूगढ, पादर, मकावल, मारोल
4	प्रतापसिंहोत	डाक/दत्ताणी (पाटवी), छापोल
5	सांगावत	हरणी (पाटवी), रोहुआ (ताजीमी), वरमाण, मगरीवाड़ा (वागदा), इदरला, जोलपुर, वड़वज, केसुआ, रायपुर, हडमतिया, सेरूआ, पिथापुरा (आर)
6	सामन्तसिंहोत	सनवाड़ा (एस), रेवदर (अरठ जागीर)
7	लोटाणचा	सादलवा, नाणा (भोम जागीर), धनारी/लोटाणा (अरठ जागी)
8	लखमणोत	बालदा (छः पांती)
9	कलावत	(अ) बिशलपुर (पाटवी/ताजीमी), सोनपुरा, भागली, गलथनी, बिरोलियां, कोलीवाड़ा, बलवना, पेरवा खुर्द (भाटवाड़ा), पेरवा कलां (ब) बांकली, मोरडू, तलानी (तीन पांती, खिवांदी से संलग्न) सलोदरीया, बलुपरा, कोरटा, खिवान्दी (पांच पांती), धुरबाणा
10	मेहाजलोत	वेडिया, सगालिया, कोरोना, सोकड़ा
11	सुरताणसिंहोत	देवतरा

(3) देवड़ा राजवंश की अन्य शाखाओं के ठिकाणे

सिरोही के देवड़ा राजवंश में मुख्यतया डूंगरावत एवं लखावत शाखा ही विभिन्न उपशाखाओं में बंटी थी, जिनके पास जागीरे थी। देवड़ा राजवंश की अन्य शाखाओं के निम्नलिखित ठिकाणे थे।[25]

क्रं.सं.	उपशाखा	ठिकाणो के नाम
1	कितावत	पामेरा, सणदरा (भोम जागीर), बडी पुनक (भोम जागीर)
2	गोसलावत	मामावली (दो पांती)
3	अबावत	देलदर (पांती नं. 1 पाटवी) ओर, तरूंगी, किवरली, मोरथला, आमथला, तरतोली
4	चीबावत	जामठा, नागाणी, टुआ, पांथावाड़ा (पाटवी), पहुवाड़, आरकी, सातसण, आकोली

(4) अन्य राजवंश के गिनायत ठिकाणे

सिरोही राज्य में देवड़ा चौहान राजवंश के अतिरिक्त अन्य राजवंशीय राजपूतो के ठिकाणे भी थे। इन राजवंशीयो द्वारा सिरोही राज्य की श्यामधर्मी चाकरी करने से प्रसन्न होकर महाराव द्वारा समय-समय पर इनको जागीरे बख्शी गई। वंशानुसार इनके ठिकाणे निम्नानुसार थे।[26]

क्रं.सं.	शाखा	उपशाखा	ठिकाणो के नाम
1	सिसोदिया	रुद्रसिंहोत राणावत	लोदरी/नया सानवाड़ा (पाटवी), उन्दरा, सांगवाड़ा, जियापुरा, काछोली (जनापुर)
2	सोसोदिया	रामसिंहोत	सनवाड़ा (आर), सोनानी, धनारी (अरठ जागीर) कांटल (अरठ जागीर)
3	दहिया		केर (पाटवी), जूना सानवाड़ (वीरवाडा अरठ जागीर), गोलीया (वीरवाडा अरठ जागीर)
4	राठौड़	बीकानेरीया	थल (गुलाबगंज), जेतावाडा, धनीयावाड़ा

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ओझा गौरीशंकर : सिरोही राज्य का इतिहास पृ. 24*
2. *ओझा, पूर्वोक्त पृ. 24 त्रिवेदी वी.के. हिस्ट्री ऑफ सिरोही स्टेट पृ. 101*
3. *ओझा, पूर्वोक्त पृ. 24 त्रिवेदी, पूर्वोक्त पेज 101*
4. *ओझा, पूर्वोक्त पृ. 24; त्रिवेदी, पूर्वोक्त पृ. 101; kay and malleson, history of the Indian mutiny (1906) vol. II, PP 274-275*
5. *ओझा, पूर्वोक्त पृ. 24; त्रिवेदी, पूर्वोक्त पृ. 101; Letter from lord canning to queen Victoria, dated 25 sep. 1858, Arthur C, Benson, Ed. the letters of queen Victoria, Vol. III P. 319; Singh z, East India company and marwar 1973, P.P. 135 – 136*
6. *गहलोत जगदीशसिंह : राजपुताने का इतिहास (सिरोही), पृ. 95*
7. *सिरोही महाराव रघुवीरसिंहजी से वार्ता*
8. *देसाई लल्लुभाई भीमभाई : चौहान कुल कल्पद्रुम (1927), (भाग एक) पृ. 343 (भाग दो) पृ. 8-14 य ओझा, पूर्वोक्त पृ. 162*
9. *देसाई, पूर्वोक्त (भाग दो) पृष्ठ 9*
10. *देसाई, पूर्वोक्त (एक) पृष्ठ 216*
11. *देसाई, पूर्वोक्त (भाग दो) पृष्ठ 86, 97, 102, 117, 124*
12. *देसाई, पूर्वोक्त (भाग दो) पृष्ठ 164*
13. *देसाई, पूर्वोक्त (भाग दो) पृष्ठ 222*
14. *देसाई, पूर्वोक्त (भाग दो) पृष्ठ 38*
15. *सिरोही महाराव रघुवीरसिंह जी से वार्ता*
16. *देसाई, पूर्वोक्त (भाग दो) पृष्ठ 8-9; गहलोत, पूर्वोक्त पृ. 65-66; त्रिवेदी, पूर्वोक्त पृ. 101-102; Letter from Lawrence to Edmonstone, dated 25 Feb. 1858, Nos. 617 – 629 F. & P.*
17. *देसाई, पूर्वोक्त (भाग-एक) पृ. 344ए (भाग-दो) पृ. 98-99*
18. *देसाई, पूर्वोक्त (भाग दो) पृ. 49*
19. *गहलोत, पूर्वोक्त पृ. 95; त्रिवेदी, पूर्वोक्त पृ. 102; Letter from Lawrence to Edmonstone, dated 31 Dec. 1858, Nos. 1190 – 1196, F. & P; Foreign Department Seeret Proceeding, No. 424, Dated 29 Jan. 1858.*

20. देसाई, पूर्वोक्त (भाग–दो) पृ. 44, 98; गहलोत, पूर्वोक्त पृ. 95
21. पाडीव ठाकुरा राज श्री राजेन्द्रसिंहजी से वार्ता
22. देसाई, पूर्वोक्त (भाग–दो) पृ. 87
23. देसाई, पूर्वोक्त (भाग–दो) पृ. 2–3
24. देसाई, पूर्वोक्त (भाग–दो) पृ. 1–2
25. देसाई, पूर्वोक्त (भाग–दो) पृ. 3–4
26. गहलोत, पूर्वोक्त पृ. 45; डॉ. विक्रमसिंह भाटी : दहिया वंश का इतिहास, पृ. 121, 123–124; देसाई, पूर्वोक्त (भाग–दो) पृ. 93, (भाग–एक) पृ. 265, 307; ओझा, पूर्वोक्त पृ. 179; राणिमग्गा शिवनाथसिंह से वार्ता य दहिया ईश्वरसिंह जूना सानवाड़ा से वार्ता

Women Empowerment and Decision Making: A Survey

Prof. A. P. Singh
HOD, Sri Dev Suman University, Rishikesh (Uttarakhand)

shodhshree@gmail.com

Dr. Ram Singh Samant
Assistant Professor, Mahayogi Gurugorakhnath Govt. Degree College, Bithyani, Yamkeshwar, Pauri

Abstract

Decision making plays an important role amongst the women and it is a tool to get the women empowered. In a male-dominated country like India, women has always been given a secondary position when the question of taking decision comes. In the earlier times, women had no say even in small decisions even at their household level also. But today time is changing, women are educated, they are employed, they have will power to do beyond their capacities. In this research paper, we will analyze the decision making power of the women of the hill regions of Uttarakhand.

Keywords: *Empowerment, Women Empowerment, Decision Making, Hill women, Development.*

"There is no tool for development more effective than the empowerment of women."

– Kofi Annan

Woman is the nucleus of all the activities around whom moves everything, right from their home to the outer world. It is high time that the importance of women should be recognized as she is the one without whom no society can develop in a true sense. Today, we can see that women have gathered the strength to come out of the four walls of her house and are working and contributing in every field and that too with immense success. She has shown the courage and the potential of overcoming all hurdles if she is provided a due chance to do so. Women constitute almost half of India's population but as far as their social status is concerned, they are not given due importance and are not treated equal to men at all places. This condition worsens even more for the women living in the rural areas. They are seen down merely as slaves and child bearing and rearing machines by the male dominated society. Women in the rural areas are compelled to perform all sort of work right from cooking food at home to helping the family members in agriculture fields and daily wage workers. But as a matter of fact, their active participation in all spheres of society is not given due importance. They are always thought to be secondary to their male members in the society, and as a result they are not involved in taking decision even for very simple things within their own families. They don't seem to have any say over the economic activities in their own house or in society.

During the last few decades the role of rural women and their responsibilities in household chores, bearing and rearing of their children, nutrition, health and wellness, agriculture, animal husbandry etc., have been recognized to a greater extent. Today, the rural women have also become an equal partner of the household in both managing as well as earning partner for the household.

Geeta Luthra, (2016)1 feels that although every charter of Human Rights states that men and women are born equal and the same has been quoted in Article 14 and 15 of the Indian Constitution, the same is far from true. The deep-rooted belief that women deserve to be treated less than their male counterparts

largely contributes to the rampant, continuous and unyielding violence against women ultimately resulting in extension of unfair or lack of access to education, health, employment, property and influence for the women.

The Government of India has been working towards bringing equity and equality at workplace and opportunities for all. Some of the such steps undertaken by the government may be summarized as: The Immoral Traffic (Prevention) Act, 1956; The Dowry Prohibition Act, 1961; The Maternity Benefit Act, 1961; The Medical Termination of Pregnancy Act, 1971; The Remuneration Act, 1976; The Commission of Sati (Prevention) Act, 1987; The Pre-Conception and Pre-Natal Diagnostic, Techniques (Regulation and Prevention of Misuse) Act, 1994; The Prohibition of Child Marriage Act, 2006; The Sexual Harassment of Women at Workplace (Prevention, Protection and Redressal) Act, 2013; are the few examples that have been enforced by the government to empower the women. The Government of India have also implemented many social welfare schemes such as Development of Women and Children in Rural Areas (DWCRA), 1982; Rashtriya Mahila Kosh, 1993; Training for Rural Youth and Self Employment (TRYSEM); Mother and Child Tracking System, 2009; Rajiv Gandhi Scheme for Empowerment of Adolescent Girls (RGSEAG-SABLA), 2012; Swarnajayanti Gram Swarojgar Yojana, 1999; etc for the betterment of the rural women and adolescent girls. Apart from these governmental initiatives, many NGOs like Indian Red Cross Society, Young Women's Christian Association, The All India Women's Conference; Bharatiya Grameen Mahila Sangh, Kasturba Gandhi National Memorial Trust, The National Council of Women in India, etc have been working for the upliftment of the rural women.

Need of Women Empowerment

Women represent almost half of the world's population, produce half the world's food supply, account for 60 per cent of the working force, contribute up to 33.3 per cent of the official labour force, perform nearly 66.6 per cent of all working hours, receive 10 per cent of world economy but, surprisingly own less than one per cent of world's real estate. Thus, we can say that women's contribution to the society is not recognized in the right sense throughout the world. This situation is even worse when we talk about the gender discrimination found in India.

The data mentioned above apparently justify that there is a need for Women Empowerment which shall be achieved only by providing women the opportunities and rights to basic civic amenities, education, equal wages; right to question, fight against violence, stand up against injustice, make decision and express themselves. Hence, there is a dire need to substantially improve the status of women through well-thought and well-conceived planned programmes of development which would certainly result in women's enhanced and active participation in their family as well as the society at large. When a woman is empowered, she develops a positive self-image and starts taking active part in all sphere of her life starting from taking decisions related to herself and her family. In the process of being empowered, she gathers knowledge about herself and the society as a whole and becomes conscious about her own existence. If the woman of the home is empowered, she helps in empowering of the children at home regardless of the sex. Empowerment helps a woman to have greater access to knowledge and information and its resources. An empowered woman is able to enjoy a greater autonomy in decision-making, a better ability to plan her own life and life of her family members, exercise a greater control over the circumstances that influences one's life and empowerment also helps her to overcome the traditional and modern restrictions and constraints imposed by customs, beliefs and practices.

Goal 5 of the Sustainable development Goals is gender equality and the aim being to "Achieve Gender Equality and Empower all Women and Girls." According to the UN, 'gender equality is not only a fundamental human right, but a necessary foundation for a peaceful prosperous and sustainable world. Providing women and girls with equal access to education, health care, decent work, and representation in political and economic decision-making processes will fuel sustainable economies and benefit societies and humanity at large.'

Women of Hills of Uttarakhand

Women who reside in the hill areas of Uttarakhand mainly are engaged in agriculture and animal husbandry. They are responsible for collection of potable water, fodder for their animals and collection of firewood. They may also be engaged in small household businesses like making pickles, candles, shawls, toys, carpets and so on. Hill women are generally less educated, economically backward and are not given fair chance to involve them in any decision making powers within their households or in the community. Hill women are very hardworking and have to perform a lot of physical work to meet their day-to-day needs of the family. Studies confirm that hill women have to work for around 14 to 15 hours daily which is much higher span of time as compared to the males of the hill areas which comes around 9 to 10 hours on a daily basis. Hill women play a very significant role in the domestic as well as socio-economic sphere of the society and therefore, holistic national development is not possible without developing the standard of women in the society. For this study, hill women refers to the women residing in hill areas of Haldwani Block of Nainital District of Uttarakhand.

What is Women Empowerment

An empowered woman has a positive thought, and takes an active part in decision-making process related to herself and her family. She knows her duties and responsibilities towards herself, her family and towards the wider world. She helps in providing equal opportunity towards the empowerment of children regardless of the sex. An empowered woman has a greater access to knowledge and the resources. She has a greater autonomy in decision-making, a greater ability to plan the life of her family, a greater control over factors influencing life and the ability to utilize her rational mind to overcome the restrictions and constraints imposed by customs, beliefs and practices.

Women empowerment can be stated as, the helping in bringing out the innate qualities and capacity of the women and finally enabling them to participate in the decision-making process.

"Women Empowerment" may be defined as a process through which, women is able to gain control over her life and is finally able to make decisions for themselves. Women empowerment has several dimensions such as sociological, psychological, economic, political, health and other dimensions. It is a process, which is primarily social in nature because it can be measured in relationships to others.

According to Vimala Ramachandran, 'autonomy of women is determined by the following:

a) Women's position within the family and in the society, which determines her own sense of self-confidence and self-esteem;

b) Access to resources - economic (income, employment); material (productive assets like land, credit, finance); intellectual (education, knowledge, information);

c) Control over her labour - her ability to determine how she uses her time, demand payment, have control over her income and make her contribution visible;

d) Control over her body - ability to decide when she gets married, with whom, how many children and the desired spacing;

e) Availability of reliable health care facilities and safe contraceptives;

f) Mobility and ability to move beyond her

immediate environment for accessing income, knowledge and self-confidence;

g) Personal laws, which determine her rights within the family – especially those relating to marriage, divorce, maintenance, inheritance, share of family assets, and so on;

h) Opportunity to come together as a collective to realize and assert power to fight for their rights and demand entitlement; question dominant ideologies that justify subordination in the name of religion, culture and status reproduction; transform existing institutions and gendered spaces in society; and deal with daily loss of dignity through domestic and societal violence - including violence of women's human rights in the name of family planning - lack of real choice in contraceptives, unethical trails of new technologies and systematic effort to reduce women to reproductive machines.

Review of Literature

Constitutionally and legally, men and women are equal but in real practice, however, women still finds a secondary place. We can confront a whole lot of such examples like, inequalities between men and women birth rate, education, and participation of matters whether financial or political. Various forms of atrocities are suffered by women. She is not looked upon as a human being but as a servant. She is not given any choice to take decision in her home as well as outside the home. Women cannot be empowered until and unless she is given the power to make decisions for herself, her family and her society. Let us view a few related literature which suggest that decision making bears utmost importance in order to empower a women.

According to R. Kelsall (1978)2 the empowerment of women involves four interrelated and mutually reinforcing components: collective awareness and capacity building and skill-development; participation and greater control; decision-making power; and action to bring about gender-equality. Thus, it implies control over decision-making process, both at personal and co-operative, control over income and expenditure, and acquisition and exercise of knowledge. It has four dimensions: economic, social, political, and psychological. Empowerment of people requires action.

Analyzing the indicators of decision-making, Kabeer (1999)3 is of the view that, both men and women are assigned control over spaces. However, this power varies across different families and also community. Generally, it is a man who heads the patriarchal household and has power to take major decisions like possession or disposal of assets, access to education and marital alliance of children. On the other hand, in South Asian countries, women exercise their autonomy in regard purchase of food or consumption items. Apart from this, they also have a say over the health and well-being of children. Women as mothers, wives and daughter-in-laws have prescribed responsibilities according to the societal norms. Having developed an understanding about these indicators, it is difficult to talk about empowerment of women by mere exercise of power over some. These indicators do not provide an accurate measurement of women's decision over making choices. Empowerment of women has to be perceived as right to choice than just exhibiting the gender roles prescribed by the society. Though in certain circumstances, when women exercise their decision-making challenging the power relations, it may lead to more devaluation of their status and hamper relationships with others.

Pitt et al. (2006)4, in a comprehensive study, used Item Response Theory (IRT), where the element of analysis is the whole pattern of a set of binary indicators that proxy for woman's autonomy, decision-making power, and participation in household and societal decision

making. They found that credit programs lead to women taking a greater role in household decision-making, having greater access to financial and economic resources, having greater social networks, more bargaining power vis-a-vis their husbands and having greater freedom of mobility.

Singh and Nayak (2011)5 feel that women's role in agri-operations, animal husbandry, and other economical productive activities is very significant. They contribute about 60% - 70% of labour required for these activities are very significant. The decision-making process is an important segment of every household because it makes implementation of a plan or program quite easy. Women's suggestions are not given due consideration in the decisions pertaining to agricultural sector and other important family matters. It is because the majorities of women are illiterate, have little time to know about the latest technology of farming and restricted mobility due to several cultural taboos.

S. Rosita (2014)6 in her study tried to study the relation between factors like education, caste, age, occupation, marital status, experience, nature of family, etc with decision-making empowerment and opined that empowerment of women, in the true sense of the word, is the only solution to this pathetic and desperate condition, particularly in the rural sector.

Indira Awasthy(1988)7 found that women have a say in spending the family income but their decision-making is limited to purchase of articles of food consumption, clothing, repair of homestead and such others need of very basic of their existence. In nuclear family, the involvement of women in all family decision was found to be more intensive. As regards control of movement of females, it was observed that a women need to take the permission of her husband and her mother-in-law.

Methodology

A descriptive research design was employed for this particular study. A detailed review of literature was undertaken so as to know the process and results of studies undertaken earlier similar to this research study. A total of 290 women from the hill areas of Haldwani of Nainital district were selected as the respondents and a structured questionnaire was administered to them. Tools like structured questionnaire, interview schedule and personal observation were used to get the responses from the respondents. The respondents selected for the study were drawn through stratified random sampling method. The data was collected and analyzed scientifically to receive the results of the study. Apart from the primary sources, the data for this study was also supplemented by taking the help of secondary materials from various sources. The secondary sources primarily included the documents available regarding decision making and women empowerment, other secondary sources from Government, media, internet, and individual published and unpublished researches and journals were also collected, discussed and analyzed.

Analysis of the Study

In a patriarchal society like India, decision-making autonomy has always been utilized by males of the families for centuries. In the present study, an attempt is being made to study the change of women's role in taking decisions in various daily matters of the family like decision regarding her way of life, her own choices, how to spend money for household needs, to choose school for their children, how much to spend on their child's education, which new assets are to be purchased for herself and home and deciding how to earn and save the money, etc,.

Decision making is the core part of empowerment. Empowerment can only happen in real sense when women get the chance of taking decision about each and every aspect of herself, her children, her family, and the society at large.

Table 1
Distribution of Respondents Regarding Decision Making - I

S. No	Choices	No. of Respondents	Percentage(%)
1	Decision on Choice of School for Children.		
	Self	30	10.34
	Husband	0	0
	Both	250	86.20
	Others	10	3.46
2	Decision on Health Issues of the Family.		
	Self	31	10.68
	Husband	10	3.44
	Both	231	79.65
	Others	18	6.23
3	Decision on Purchase of Items for the Household.		
	Self	30	10.34
	Husband	9	3.10
	Both	235	81.03
	Others	16	5.53
4	Decision in Matters of Family Property.		
	Self	37	12.76
	Husband	23	7.93
	Both	107	71.38
	Others	23	7.93

Source: Survey Data in Haldwani Block of Uttarakhand

From the above data shown in table 1 the following conclusions can be made.

Regarding the decision of choice of school for children, maximum of the respondents 86.20 percent stated that this decision was taken both by themselves and their husband together, 10.34 percent of the respondents took this decision on their own and only 3.46 percent stated that others took the decision of choosing school for their children.

As far as the decision on health issues of the family is concerned, 79.65 percent of the respondents stated that both herself and her husband decided together about the health issues of the family. About 10.68 percent stated that respondents themselves took decision regarding health issues, 6.23 percent stated that others took the decision and only 3.44 percent of the respondents stated that their husband took the decision regarding the health issues of the family.

As regards to the decision on purchasing various items for the household, maximum of the respondents 81.03 percent stated that it was decided by both herself and her husband together, 10.34 percent of them stated that they themselves took the decision, 5.53 percent of the respondents stated that purchasing household items was decided by others and only 3.10 percent of the them stated that it was decided by their husbands solely.

A total of 71.38 percent of the respondents stated that both the respondent as well as their husbands together decided on matters in regards to family property, 12.76 percent of the respondents stated that they themselves decided on this matter, 7.93 percent of respondents stated that this decision was made

by husband and same number of members stated that it was decided by others.

From the above analysis, it can be drawn that women today are taking active part in making decision regarding their household and they are actively taking these decision either by themselves or along with their husband. It is very good indicator indeed that women today are being given due respect in taking various decisions in their family.

Table 2
Distribution of Respondents Regarding Decision Making - II

S. No	Choices	No. of Respondents	Percentage (%)
1	Performing Social and Religious Activities in the Family.		
	Self	35	12.07
	Husband	10	3.44
	Both	235	81.05
	Others	10	3.44
2	Participating in Developmental Programmes.		
	Self	45	15.51
	Husband	9	3.10
	Both	229	78.97
	Others	7	2.42
3	Freedom of Physical Movement Outside the Family.		
	Self	229	78.97
	Husband	9	3.10
	Both	52	17.93
	Others	0	0
4	Decision on Savings in the Family.		
	Self	105	36.20
	Husband	9	3.10
	Both	166	57.25
	Others	10	3.45

Source: Survey Data in Haldwani Block of Uttarakhand

From the above table, it is evident that women have been taking good amount of decision in their household and are given much importance by their counterparts.

Regarding the decision on performing social and religious activities in the family, 71.38 percent of the respondents stated that it was decided by both themselves and their husband, 12.07 percent stated that it was solely decided by themselves, and only 3.44 percent stated that it was decided by husband and the same percent of respondents stated that it was decided by others in their family.

A maximum of 78.97 percent of respondents stated that participating in developmental programs was decided by both themselves and their husband, 15.51 percent of the respondents stated that they themselves decided on this matter, 3.10 percent and 2.41 percent of the respondents stated that it was decided by husband and others respectively.

A huge amount of respondents 78.97 percent stated that they themselves decided regarding their physical movement outside the family,

17.93 percent stated that it was decided by both themselves and their husband together and only 3.10 percent of the respondents stated that their freedom of movement was decided by their husband.

As far as the decision on savings in the family is concerned, 57.25 percent of the respondents stated that it was decided by both themselves and their husbands together, 36.20 percent stated that it was decided by respondents themselves, 3.45 percent by others and only 3.10 percent of the respondents stated that savings were decided by their husbands.

Conclusion

To conclude, women needs to be given more opportunity in all spheres of their lives. The above survey covers merely a small portion of the society. But to some extent, it reveals a harsh reality of the patriarchal concept existing even in the present scenario. It is also very clear and loud as to how decision making strength of women is playing a vital role in the advancement of the society. Collective unconsciousness in women regarding decision making at their own has a tremendous improvement from the past in order to live freely with their male counterparts. Though vast majority of the people are still shackled in the chains of being in conservative pattern of thoughts. As an equal partners with men, women needs to be emphasized and to become aware in making their dominant role in the family.

References

1. *Luthra, Geeta. 2016, From Sati to Mary Kom: A Fight for Right in Progress, Yojana, September 2016, p., 40*
2. *Kelsall, R, 1978, Population: The Social Structure of Modern Britain, Longman, London*
3. *Kabeer, N. 2001, Resources, Agency, Achievements: Reflections on the Measurement of Women's Empowerment, in B. Sevefjord, et al. Discussing Women's Empowerment – Theory and Practice, SIDA Study No.3, 2001*
4. *Pitt, M., S. R. Khandker, and J. Cartwright, 2006, Empowering Women with Micro-Finance: Evidence from Bangladesh, Economic Development and Cultural Change, p., 791- 831*
5. *Singh, Y.V, Nayak, Jyoti, 2011, Status of Rural Women in Agriculture, Kurukshetra, 2011, p., 9*
6. *Rosita. S., 2014, Decision Making Empowerment of Women Through SHGs, International Journal of Research and Development- A Management Review, Volume 2, Issue-4, 2014, pp., 15-19*
7. *Awasthy, Indira, 1988: Rural Women in India, Daya Publishing House, Delhi*
8. *www.un.org*

Water Management of Historic Mandore Fort: A Geographical Survey

Moola Ram
Senior Research Fellow,
Sardar Patel University of Police, Security and Criminal Justice, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

The ruins of Mandore fort are located in a suburb called Mandore, about 9 km north of Jodhpur city. The ancient name of this city is 'Mandavyapur' which is famous as the place of penance of the sage Mandavya. It is believed that once upon a time there was the ashram of the sage Mandavya, after whom this area was first called Mandavyapur and later Mandore. For this reason, the fort already built by the serpents at this place must have been called Mandovar or Mandor fort.The fort of Mandore was situated on the banks of the Nagadri river flowing between the inaccessible hills of the Aravalli in the pre-Gupta period. At that time the name of this fort must have been something else. The first requirement of any fort or human settlement is the availability of water. Human civilization cannot be imagined without water. Mandore Fort and this area have been a major center of power and attraction from ancient times to medieval times. The major powers that ruled Mandore were the Nagas, the Guptas, the Pratiharas, the representatives of the Delhi Sultanate and the Rathor dynasty. Natural and artificial water sources have been instrumental in meeting the water requirement during the rule of these powers.

Keywords : *Mandore Fort, Water Management, Nagadri River, Nagadri Lake, Panchkunda, Mandore Stepwell.*

Since ancient times, we get evidence in abundance from almost all over the world that sea routes, rivers and lakes etc. were used abundantly for trade. Water has been considered as life since ancient times. At the same time, it has got special importance due to its power to purify. The use of water is very important in the daily worship of Hindus. The Ganges, Yamuna, Godavari, Saraswati, Narmada, Indus and Kaveri rivers have been considered sacred since ancient times. Ganga is said to be Mokshadayini, in which bathing once destroys all the sins of a human being. For this reason, these rivers are probably considered to be revered.

In Islam also, water has been described as the medium of origin of all beings on this earth. The importance of water is also mentioned in the Quran at various places. We find natural water structures of ancient times in abundance all over the world. India has been described as a very important place in almost all religions. The importance of water is also mentioned in the Quran at various places. We find natural water structures of ancient times in abundance all over the world. Water has been given a very important place in almost all religions.

Since time immemorial, man has been living his life with the help of this water. During the time of human life, humans camped on the banks of rivers and natural lakes. Fearing floods on the banks of rivers, he took shelter of other natural sources of water, especially lakes, existing around him and understood their importance. This importance of water was understood by the ancient Indian emperors, rulers and kings as well as the general public. Along with proper management of rainwater harvesting, wells, stepwells,

ponds, canals and lakes were also constructed and renovated.

Water was felicitated with respected words indicating the quantity of water resources, water amount and reservoir etc. Vedic sages not only composed mantras on water but also wrote hymns on them. He wished to keep the rivers like Ganga, Yamuna, Saraswati, Saryu, Indus Kaveri, Narmada, Kshipra and Vetravati always filled with water.

Rain water was the main source of irrigation in the Vedic period, but there is also a mention of water obtained by artificial means. In a mantra of Rigveda, two types of water are mentioned. First Khanitrima means water obtained by digging and second Swayamja means natural water of rivers etc. In Vedic literature, descriptions of wells, tadag and stepwell digging tools, spade etc. have also come. According to the Puranas and Smritis, water is present in all three forms - Adhidaivik, Spiritual and Adhibhautik. The policies have considered water as one of the three gems (Jal, Ann, Subhashit). The types of water sources and their nature have been mentioned in Vishwa Vallabh. There are six types of ponds, Nand, Trikuta, Ekmukhi, Jaya, four-faced, Shatkut etc., and four types of ponds are mentioned in this text.

History of Mandore Fort

The ruins of Mandore fort are located in a suburb named Mandore, about 9 km from Jodhpur city in the north direction. The ancient name of this city is 'Mandavyapur' which is famous as the place of penance of the sage Mandavya. It is believed that once upon a time there was the ashram of the sage Mandavya, after whom this area was first called Mandavyapur and later Mandore. For this reason, the fort already built by the serpents at this place must have been called Mandovar or Mandore fort. According to the legends prevalent in the folk, the king of Mandore (ancient name Mandovar) was Mandodar (Maya demon) who built this city and married his daughter Mandodari to Ravana, the king of demons in this city. That place is now called Chanvari of Ravana. There are still some families living in Jodhpur who claim to be the descendants of Ravana.

Fortification by Naaga Dyansty

The fort of Mandore was situated on the banks of the Nagadri river flowing between the inaccessible hills of the Aravalli in the pre-Gupta period. At that time the name of this fort must have been something else. It is estimated from the name of the river that the Nagas must have started the construction of this fort and they must have been the initial rulers here. The arrival of serpents in this area is supposed to happen after the burning of Khandava forest by Lord Krishna and Arjuna.

Under the Guptas

Samudragupta and his son Chandragupta (II) had defeated and subjugated the Nagas of western India. Probably at the same time this fort went under the Guptas. Under the Huns, the Huns snatched this entire area from the Guptas in the 6th century AD. Hun coins have been found in large numbers in this area. Therefore, it can be estimated that the fort of Mandor would also have gone under the control of the Huns.

Pratihara Period

It is known from the inscription received from Ghatiala that the Mandore fort was built before the 6th century. According to the inscriptions, the sons of Vipra Harichandra Pratihara occupied the temple and in 626 AD they built a wall around it. The remains of Mandore fort still exist today. This fort was situated on the top of a hill, whose height was 300 to 350 feet. Today this fort is in ruins. Some are lying under the ruins and some are in a disintegrated state. Looking at the existing fort in its disintegrated state, although its actual construction method cannot be fully estimated, some guesses can be made in this regard.

Situated on a hill, this fort was surrounded by a stone-built wall. There was a main road to enter the fort. There was a huge door made of wood on the pole of the fort. For the residence of the rulers of the fort, palaces, stores, buildings of feudal and

officers were built etc. The route by which the fort was reached from the bottom up the hill was rough. There were square holes in the fort's ramparts. Mandore was considered very strong and important in the contemporary times from the point of view of fort strategic security. Due to this, the enemy's army had to face a lot of difficulties in making a sudden climb on the hill. The entrances to the fort were constructed in such a way that it was impossible for the enemy to break them.

Mandore fort was the capital of Marwar before the establishment of Jodhpur. The name of the temple was Mandavyapur in ancient times, which was named after the sage Mandavya. It is known from the inscription received from Ghatiala that the Mandore fort was built before the 6th century. According to the inscriptions, the sons of Vipra Harichandra Pratihara occupied the temple and in 626 AD they built a wall around it. The remains of Mandore fort still exist today. This fort was situated on the top of a hill, whose height was 300 to 350 feet. Today this fort is in ruins. Some are lying under the ruins and some are in a disintegrated state. Looking at the existing fort in its disintegrated state, although its actual construction method cannot be fully estimated, some guesses can be made in this regard.

The walls of the fort were raised above the top of the hill. There were huge palaces on the elevated part of the middle, which were overshadowed by the plains below. The bastions of Mandore fort were mostly square rather than circular, as in other ancient forts, Mandore remained under the control of Pratihara Kshatriya rulers till the 13th century.

Water Management of Mandore Fort

There is a water tank in the palace courtyard which is known as Nag Ganga. In this pool, a small stream of water flows continuously from the middle of the mountains. Nearby there is a canal equipped with fountains, which starts from Nagaddi and comes to the main gate of the park. The construction of the Nagadri lake was done by the Nagavanshis of Mandore, on which the dam was built during the reign of Maharaja Ajit Singh and Maharaja Abhay Singh.

Next to the Nagadi lake of Mandore park is the dargah of Sufi saint Tanapir, which is the center of faith of the devotees. Here travelers from far and wide come for Ziyarat. Beautiful carvings are done on the doors and windows of this dargah. Every year on the occasion of Urs, the Meta is held at the dargah. Near the dargah is the mosque of Firoz Khan. The ancient and scenic Jain temple and Dadabari of Mandore are also world famous. The presence of Dargah, Masjid and Hindu and Jain temples at the same place is a unique example of national unity. And a little ahead of the dargah of Tanapir, there is a holy pilgrimage site called Panch Kund, where five ponds have been made. Along with this, the dewals (monuments) of the kings of Mandore have been built, in which the architecture of Rao Chuda, Rao Ranmal and Rao Ganga's Deval is visible. There are 46 umbrellas of the queens of Marwar nearby. These umbrellas are also a beautiful example of craftsmanship.

Nagadri River

We get an inscription of 8th century AD from Mandore in which it is written – 'Mandavasyashrame Punya Nadi Nirjhar Shobhate' It is clear from this that at that time this area was full of rivers and springs. The name of the river on which the fort of Mandore is situated is Nagadri River. The first dynasty to rule Mandore is the Nagavansh, due to which this river was probably named as Nagadri. The Nagadri river originates from the Mandore hills. These hills are part of the Aravalli range. Once upon a time these hills were green and there was sufficient water available here. For this reason, Mandore remained the center of attraction for various domestic and foreign powers from ancient times to medieval times.

The Nagadri river was presently a tributary of the Jojri river and the water of the Jojri river meets the Luni river. Even today, when there is a good amount of rain, then this rainy drain takes

the form of a river and its water goes outside the city to the village of Khokharia and beyond.

Nagaddi Lake and Nagadari Dam

The Nagadri lake on the Nagadri river was probably built by the rulers of the Nag dynasty. This lake is situated in the north of Mandore fort, near the dargah of Tanhapir. In the rainy season, a sufficient amount of water comes in this lake, when this lake is completely filled, then the water of the river comes into the Nagadi dam. The most important source of water for the Mandore fort was the Nagadadi lake. The water of this lake was sufficient throughout the year for Mandor fort. When the Nagadi lake is filled with water, then the water of the river comes into the Nagadi dam. This dam was built during the time of Ajit Singh and Abhay Singh, the Rathor rulers of Jodhpur. After this dam is filled with water, the water of the river flows from Mandor Bagh to the Jojri river in the form of a river.

Nagganga Waterfall

A waterfall named Nagganga is located in the Janana Bagh of Mandore Park. Earlier it was called Gaumukhi. These days this garden is known as Mandore Museum. The waterfall here is old, but this waterfall was developed only a few years ago and named it 'Nag Ganga'. There is a Hauz near it, which was built by Maharaja Ajit Singh. After that Maharaja Takht Singh made it big, whose water is used to feed the garden.

On the second day of Holi (Ramashama) in the evening, people of almost all the ber and settlements of Mandore come singing and singing on this pond of Mandore. After all, Rao of Khokharia Here comes singing and playing with his gare in a colorful outfit. Rao (Isar) is the first to jump into this cistern. Due to the gulal and pink color on the clothes of Rao and other garrisons, the water of the tank turns red. Rao does not play with water with all the garris and other garris also pour colored water on Rao and others. At the end of the evening, everyone comes out of the tank, changes clothes and leaves after singing again.

Panchkund

This place is one kilometer from Mandore. It is situated between the hills in the north. Even today the rain water in Nagadi comes from this place. It is said that Nagganga also emerges from this place in the garden of Mandore. These five ponds were built by sage Baldev, whose names are Vishnupaduka, Gangasagar, Sideshwari, Brahmamandali, Bawdi Jatashankari respectively. Due to being in the reservoir, the rain water from all the three sides of the hill comes from the head and the rain water also flows from the ground. The water of these kunds is considered holy. Temples etc. have been built around it, due to which the place has become like a pilgrimage, nowadays, due to not taking water from these ponds, their water has started to remain dirty. If the water from these kunds was used, then there was no need to install hand pumps and taps near these kunds. Still, hand pumps and taps have been installed here. If a small filtration plant is installed by connecting these kunds with taps, then the water of Panchkund will be sufficient at least for the residents of this place and water will not have to be brought from the land and from other places. In such a situation, that water will be saved and that water can be used for the use of colonies elsewhere.

Chanvari's stepwell of Ravana

This stepwell has come to the west of the old Mandore railway station near Ravana's Chanwari. This stepwell is in a nadi. From the structure of that nadi, it appears that at one time a lot of water used to come in this nadi, because a big oasis of this nadi has been made by digging a mountain and the pal of the nadi is also made of big red stones. There is still clean water in the stepwell. Its water is used by the people when needed. Due to lack of maintenance, the future of this stepwell is in the dark. From the large red stones of the picket of the lease, it appears that this stepwell / Nadi is one of the old stepwells of the Mandore state.

Jhalra Bera / Jhalra / Jhalaji Ki Baori

There were steps in this well for some distance, which descended from both the directions (north-south) and went inside towards the east. Later a deep well comes, so people call it both Bera and Bawdi. Arhat was planted on it in the past, from which the garden was fed. Only one bull plowed on this Arhat, which proves that the water level of this well was very high. Even today a pump is installed on this well / stepwell and water is being given to the garden through a 4-inch pipe.

Kala / Gora Bhairuji's Stepwell

This well is very old. It was repaired by Maharaja Ajit Singh in Samvat 1776. The stepwell is still in good condition and its water is potable. The water of this stepwell is used by the Irrigation Department. The water of this stepwell is clean and sweet.

Jhalra (near Mandore)

This Jhalra is very old and is now in ruins. And its four walls have collapsed. Now only one big crater is visible. In this, the bushes and trees of English Acacia are very much involved, due to which nothing is clearly visible, only the inner wall is visible in one or two places. It has been shown on page number 576 of Marwar Ra Pargana Ri Past that this Jhalra was earlier, near him Umedji Dhikhi had made Kamtha beyond the Mandore. Umedji Dhichi had built the building of Dhana, it may have been the same described Jhalra.

Conclusion

The first requirement of any fort or human settlement is the availability of water. Human civilization cannot be imagined without water. Mandore Fort and this area have been a major center of power and attraction from ancient times to medieval times. The major powers that ruled Mandore were the Nagas, the Guptas, the Pratiharas, the representatives of the Delhi Sultanate and the Rathor dynasty. Natural and artificial water sources have been instrumental in meeting the water requirement during the rule of these powers. The Nagadri river, the Nagadri lake, the Nagadri dam and various stepwells have contributed significantly to these sources, due to which this fort remained the main center of power and power in the desert for about 1500 years.

Bibliography

1. *Bhatt, Kullook, editor. Manusmriti. Banaras, Vidya Vilas Press, 1935.*
2. *Bhuvandevacharya. Aprajitaprichha. Edited by Shrikrishana Jugnu and Bhanwar Sharma, Delhi, 2011.*
3. *Gehlot, Jagdishsingh. Marwar Rajya Ka Itihas. Jodhpur, Maharaja Mansingh Pustak Prakash, 1991.*
4. *Gupta, Mohanlal. Suryanagari Jodhpur. Jodhpur, Shubhada Prakashan, 2000.*
5. *Mishra, Anupam. Aaj Bhi Khare Hain Talab. 5 ed., New Delhi, Gandhi Peace Foundation, 2004.*
6. *Nagar, Mahendrasingh. Water Culture Of Marwar. Jodhpur, Rajasthani Granthagar, 2011.*
7. *Nainsi, Muhnot. Marwar Ra Pargana Ri Vigat. Edited by Hukumsingh Bhati, vol. 1-3, Jodhpur, Rajasthan Rajya Vidya Pratishthan, 1974. 3 vols.*
8. *Ojha, Gourishankar Heerachand. Jodhpur Rajya Ka Itihas. 6 ed., Jodhpur, Rajasthani Granthagar, 2018.*
9. *Reu, Vishveshawarnath. Marwar Ka Itihas. Jodhpur, Archeological Department, 1940.*
10. *Sarahadī, Sāṅgīdāna Bhāṭiyā. Jala-saṃrakshaṇa: nīti aura saṃskr̥ti : Marudharā ke sandarbha meṃ. Sāhityāgāra, 2016.*
11. *Shastri, Gangaprasad, editor. Arthshastra. Shamli, Vaidik Press, 1940.*
12. *Singh, Y. D. Rajasthan ke Kuen Evm Bavdiyan, Jodhpur, Rajasthani Granthagar, 2002.*
13. *Roy, B., Kanga, S., & Singh, S. K. (2017). Assessment of land use/land cover changes using geospatial technique at Osian-Mandore, Jodhpur (Rajasthan). International Journal of Scientific Research in Computer Science, Engineering and Information Technology, 2(5), 73-81.*
14. *Tyler, J. (1981). The Mandore in the 16th and 17th Centuries. Early Music, 9(1), 22-31.*
15. *Dynasty, G. P. Nagabhata II Gurjar Pratihar Nagabhata II (reign 805–833) was an Indian*

Emperor of Pratihara Dynasty. He ascended the throne of Pratihara Empire after his father Vatsraja.[His mother was queen Sundari-Devi. He was designated with imperial titles–Paramabhattaraka, Maharajadhiraja, and Parameswara after conquest of Kannauj.[2][3].

16. *Bagchi, K. S., & Bagchi, S. S. (1991). History of Irrigation in India I. Irrigation in Ancient India (From 2295 Bc upto the 11th Century). Irrigation and Power Journal, 48(3), 69-76.*
17. *Verma, O. P. (1964, January). RECONSTRUCTION OF LATER PRATIHARA GENEALOGY. In Proceedings of the Indian History Congress (Vol. 26, pp. 79-85). Indian History Congress.*
18. *Pal, S. (2016). Gurjara-Pratihara (Pratihara) Empire. The Encyclopedia of Empire, 1-3.*
19. *Srivastava, S. (2007, January). INDUSTRIAL ACTIVITIES IN NORTH CENTRAL INDIA FROM C 8 TH-C12 TH AD AS GLEANED FROM THE CONTEMPORARY EPIGRAPHS. In Proceedings of the Indian History Congress (Vol. 68, pp. 207-217). Indian History Congress.*
20. *Srivastava, S. (2007, January). INDUSTRIAL ACTIVITIES IN NORTH CENTRAL INDIA FROM C 8 TH-C12 TH AD AS GLEANED FROM THE CONTEMPORARY EPIGRAPHS. In Proceedings of the Indian History Congress (Vol. 68, pp. 207-217). Indian History Congress.*
21. *Smith, V. A. (1909). III The Gurjaras of Rajputana and Kanauj. Journal of the Royal Asiatic Society, 41(1), 53-75.*
22. *Ram, C., Sharma, G., & Rajpurohit, L. S. (2015). Mortality and threats to Hanuman langurs (Semnopithecus entellus entellus) in and around Jodhpur (Rajasthan). Indian Forester, 141(10), 1042-1045.*
23. *Makandar, B. M., & Bhatnagar, A. (2010). Biodiversity of Microalgae and Cyanobacteria from freshwater bodies of Jodhpur, Rajasthan (India). Journal of Algal Biomass Utilization, 1(3), 54-69.*
24. *Bhadra, B. K., Gupta, A. K., Sharma, J. R., & Choudhary, B. R. (2007). Mining activity and its impact on the environment: Study from Makrana marble and Jodhpur sandstone mining areas of Rajasthan. Journal-Geological Society of India, 70(4), 557.*
25. *Sharma, D. (1947). MAHĀMAHOPĀDHYĀYĀ Dr. GAURISHANKAR HIRACHAND OJHA. Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, 161-163.*
26. *Dewhurst, R. P. (1926). 8. The History of Rajputana (Fasciculus I). By Rai Bahadur Gaurishankar Hirachand Ojha. 9¾× 6½, 400 pp. Ajmer: Vaidik Press, 1925. Journal of the Royal Asiatic Society, 58(3), 534-535.*
27. *Ojha, G. H. (1927). Rajputane ka itihas. History of Rajputana). Ajmer: Vaidika Yantralaya.*

References

1. *Unique Water Resource Systems of Ancient India, Archeological Servey of India, 2011, pg. 2*
2. *Ibid*
3. *Ibid*
4. *Ibid, Pg. 3*
5. *Gupta, Mohanlal. Mandore Durg Ka Itihas, Shubhada Prakashan, Jodhpur, 2016*
6. *Ibid.*
7. *Ghantiyala Enscription, Epi. Ind. Vol. 9, Pg. 210..*
8. *Bauk Jodhpur Enscription, Ibid., Vol. 18, Pg. 87..*
9. *Geographical Sarvey on 20 feb 2022*
10. *Geographical Sarvey on 20 feb 2022*
11. *Geographical Sarvey on 22 feb 2022*
12. *Gupta, Mohanlal, Above mentioned*
13. *Geographical Servey on 24 Feb. 2022*
14. *Singh, YD., Rajasthan ke Kuen Evm Baoriyan, Rajasthani Granthagar, Jodhpur, 2002, Pg. 300*
15. *Singh, YD., Rajasthan ke Kuen Evm Baoriyan, Rajasthani Granthagar, Jodhpur, 2002, Pg.300*
16. *Ibid, Pg.156*
17. *Ibid, Pg. 210*
18. *Ibid. Pg. 151*
19. *Ibid*

Women Entrepreneur and Innovation

Dr. Anuja Jain
Assistant Professor, University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Radhakrishnan writes, "When the sky is overcast with clouds, the path of the future likes through a thick forest, and when we are utterly alone in darkness without a single ray of light, when all round are difficulties, we place ourselves in the hands of women". How true words seems when we try to understand deep-rooted socio - cultural systems. After so many years of Independence if we try to evaluate the position of Indian Women it's been clearly found upward change in their socio-economic status. Women of today is found majorly contributing to economic progress .With passing time women too has been found to be endowed at par with men when it comes to managerial abilities in an successful entrepreneurship. Entrepreneurship and Innovations are interconnected, they are two sides of coin which are always seen travelled parallely. This paper provides brief discussion about Role of Women Entrepreneurs and Innovations for lucrative businesses and their contribution to society. This paper also tries to partly touch upon challenges faced by women after entering entrepreneurship and ways to combat these challenges. It is mainly based on secondary sources, general observations and perceptions to retrospect managerial abilities of women entrepreneurs.

Keywords : *Future, Socio - Cultural, Economic, Entrepreneur, Innovations.*

Traditionally the Indian Women was only a homemaker and had to face many difficulties as the society have been male dominated society but the Modern Indian Women is now found to be flaunting many facets of her personality, she has turned out to be sparkling power house fighting for her own rights and making her lasting impressive mark in every sphere may it be politics, business, science, sports, arts and in society on the whole. Despite of Marshaling arguments related to emancipation or ensuring of social equality, the immense potential of women is not recognized in the men's world. Empowering women folk as entrepreneur indeed requires composite collaborative approach including creativity, composite vision, congruent efforts, adaptation of modern technologies, new ways of expansion of market tactics etc. The paper intends to examine women as entrepreneurs in Indian Society and challenges faced by them in establishing and starting a business.

The Concept of Entrepreneurship: "An Entrepreneur is someone who mixes his /her passion with innovation, one who introduces novelty in the market or industry the one who has new ideas and is willing to turn vision into working business. The idea can be in any form may it be developing a product, book or consultancy which motivates to work ridiculous hours and keep brain buzzing. It is something beyond imagination, the one who perceives life differently and has mindset to change the world by filling a need in the market place.

In this era of Globalization, Digitalization, Privatization and Start up booms, India is clearly witnessing a revolution in Women Entrepreneurs. The **Government of India** has defined a women entrepreneurship

as “an enterprise owned and controlled by a women having a minimum financial interest of 51% of the capital and giving at least 51% of the employment generated in the enterprise to women”.

Today Women Entrepreneurs are coming from all walks of life and from all parts of country. Few of the examples of top most leading women entrepreneurs are cited below:

Kiran Mazumdar Shaw - Chairperson and Managing Director of Bicon Ltd. She transformed industrial enzyme company into India's Pioneering Biotech Enterprise. She has been awarded with the Padma Shri (1989) and Padmabhushan (2005).

Shahnaz Hussain - Founder, Chairperson and Managing Director of The Shahnaz Husain Group In India .She has received international acclaim for pioneering the Herbal beauty care movement and taking the India Herbal Heritage of Ayurveda Worldwide .In 2006, she was awarded the Padma Shri, the fourth highest civilian award, by the Government of India for her contribution to the fields of trade and industry. The Shehnaz Husain Group has over 400 franchise ventures across the world covering over 138 countries.

Kalpana Saroj - Chairperson of Kamini Tubes Company, Mumbai. Her life exhibits story of a poor dalit girl who turned into multi-millionaire. Having tough childhood, despite of frightful obstacles she is now the owner of six companies with a combined turnover of Rs 2,000 crore.

Falguni Nayar - Indian Businesswomen and billionaire who is the founder and CEO of the beauty and life style retail company Nykaa.

Inspite of so many hurdles these women emerged as successful entrepreneur and set a milestone in the history of Indian Society that one can reach unparalleled success with perseverance, permanence, persistence in all walks of life.

Great things never come easy as it requires lot of congruent efforts, resilience, dedication and hard work which are the key ingredients in attaining success. Becoming Women Entrepreneurs and retaining the status is never easy as it comes with lot of challenges. Below given are some challenges which a women faces after entering Entrepreneurship:

1. Difficulty in acquiring funds for Start Ups: Those Start ups who look for investors to help them start their business seems more challenging and difficult in case of women owned firms. Investors sometimes feel reluctant and doubt that women entrepreneurs won't lead company reach heights of success and might incur losses. This may lead investors to hesitate in financially supporting women entrepreneurs.

2. Restricted Mobility: Gender gaps are still seen to be observed when it comes to Mobility. While traveling one of the major concern with women is of safety. Often she is been asked to be accompanied by male family member or male companion. Thus moving in and around market place all alone is again a tough job for women as primarily it is one of the major concerns as far as it's related with safety of women. Before heading ahead in market she has to think twice about time, mode of travel and the commuting route. This again becomes challenging for women as she has to face issues of travel.

3. Lack of Education: Women of today are still facing multiple barriers, are generally denied higher education, especially in rural areas and under developed countries. Women are not even allowed to enrich their knowledge in technical and research areas to introduce new products and meet consumer needs. Day to Day life business chores such as Maintaining financial balance sheets, maintaining accounts becomes hard to understand if women have not mastered formal education. Thus lack of information, resources, and development skills becomes hurdle for them in turning their business into success.

4. Safety Issues: Safety of a woman seems to be huge pertinent global issue and we all are still grappling with it. Increase in social crimes and the need for safety pushes down women's

priority list of business when there is a demand of spending hours at getting work going. Women still have to be answerable to their families if they move out at odd hours.

A single woman cannot travel anytime and anywhere to procure raw material, be part of crucial meetings or take a flight to another country or city without seeking approval from parents or spouse. Above all we are still living in the world where permission culture being part of patriarchy has occupied headspace of Indian society immensely.

5. Male Dominated Societal Culture : Male Chauvinism still seems to be ubiquitous in India may it be rural areas or urban areas. Male Dominated Indian Society still feels that women are downtrodden, weak, submissive and meant only for cooking, mending, sewing and she is not fit for making waves in the market. This leds man overpowers women and creates hurdle in their entrepreneurship

6. Lack of Information : A subsidy or government incentive is a form of financial aid or support extended to an economic sector (business, or individual) generally with the aim of promoting economic and social policy. But sometimes due to lack of information and awareness about incentives and subsidies of government schemes women often miss opportunity to avail benefits of such schemes.

7. Balance between family and office is challenging: It is a general lament that the main domain of women is home and stepping out of that domain disturbs the balance between personal and professional life. Family responsibilities and social life sometimes becomes barrier in successful business. Women had to shoulder so many responsibilities in and out home. Sometimes maintaining work home balance gets tough when it comes to handle both efficiently. Thus managing and maintaining household chores and dealing family members of different age, gender, status, temperament and personality and carrying out business with same efficiency is a big challenge for women entrepreneurs.

From Market dealings to financial woes, women encounters impediments at various levels, however women has overcome these challenges and have made remarkable strides in the business worldwide. She can combat these challenges with her skills, intelligence and empathy in the following ways:

1. Achieving work - life balance, maintaining schedule and apt time management is the key to successful Entrepreneurship. She can also fulfill all her business commitments by having efficient team who accomplish work on time delegated to them.

2. By overcoming the problem of lack of finance which is one of the deterring factors, women can achieve desired success and progress for their venture. Government aided schemes for females like Mudra Yojana Scheme, Annapurna Scheme, Udyogini Scheme, Mahila Udhyam Nidhi Scheme, Dena Shakti Scheme and many more such schemes are encouraging women by lucrative offers so that they can excel and reach high heights in their businesses. These schemes are booster for women who wants to grow and establish themselves as entrepreneurs.

3. Although lack of Education is one of the bottlenecks in the growth of Women Entrepreneurs, but imparting education, training programmes, conducting workshops can benefit women entrepreneurs in their enhancement of skills and knowledge.

4. Nothing is impossible if one wishes for, can turn things by breaking the walls of stereotyped society ,crossing threshold and make a smart move and carve a niche in male dominated society. Thus by having clear vision, determation, dedication to work hard one can pass every hurdle and road blocks that comes their way.

Suggestions and Recommendations:

Embarking into new venture surely comes with lots of hurdles. Journey of Success comes with lot of Challenges. However the best possible way to address problems which are being faced by

women is by empowering women to the fullest at best possible ways. Every possible step should be taken to elevate status of women in society. It's often been observed that strong networking is part of successful entrepreneurship. But sometimes either women has no interest in getting out of box of their comfort level for clientele meetings or are not found that proactive in business dealings. The best suggestion is that probably they should figure out the right conversational ice breakers and start interacting and developing business relationship. Secondly, learning time management skills can be boon in entrepreneurship and helps in work home balance. Besides this if women are being guided by trained coaches and mentors the situation can sufficiently be improved for the budding women entrepreneurs. Lastly collaborative endeavors, safe and secured environment can build and create nurturing entrepreneurship system and help women to mark strong footprints and grab eyeballs of people in market despite of myriad shackles.

These are the suggestions based on day to day observations which can help kick start business at initial level and grow with time.

Conclusion

Hillary Clinton Says- "Women are the largest untapped reservoir of talent in the world". Indeed women of today's era have globally created successful brands and have added glitters to their stars. The success lies when a deliberate endeavor is made on the part of family, friends and society at large by breaking the gender walls and with this changing scenario women enterprise can shine in this corporate world. Thus positive efforts towards women can open new avenues and help her to emerge as a very successful entrepreneurship.

Reference

1. *M. Immanuel (1998) Women and Development. Ahmadabad: Karnavati Publication*
2. *https://www.businessworld.in/article/Women-Entrepreneurs-In-India-Emerging-Issues-Challenges/03-03-2019-167632/*
3. *https://www.geektonight.com/women-entrepreneurship/#:~:text=The%20Government%20of%20India%20has%20defined%20a%20women,the%20employment%20generated%20in%20the%20enterprise%20to%20women%E2%80%9D.*
4. *https://en.wikipedia.org/wiki/Kiran_Mazumdar-Shaw*
5. *https://thedigitalyug.com/stories/shahnaz-hussain-the-businesswoman-who-revolutionized-the-ayurveda-industry*
6. *https://yourstory.com/weekender/shahnaz-husain-ayurvedic-beauty-artificial-intelligence/amp*
7. *https://en.wikipedia.org/wiki/Kalpana_Saroj#Entrepreneurial_ventures*
8. *https://www.theweekendleader.com/Success/2725/anything-is-possible.html*
9. *https://en.wikipedia.org/wiki/Falguni_Nayar*
10. *https://savvywomen.tomorrowmakers.com/wise/6-challenges-faced-women-entrepreneurs-listicle*
11. *https://digest.myhq.in/problems-of-women-entrepreneurs-india/*
12. *https://www.indifi.com/blog/9-schemes-for-women-entrepreneurs-in-india/*
13. *https://www.theofficepass.com/toppings/top-problems-faced-by-women-entrepreneurs-in-india.html*
14. *https://www.awakenthegreatnesswithin.com/36-highly-successful-women-share-their-most-powerful-quotes-on-success/*

Public Grievance Redressal: With Special Reference to the Rajasthan Sampark Portal

Raj Kamal Soni
Research Scholar, Jai Narayan Vyas University, Jodhpur

shodhshree@gmail.com

Abstract

Grievance Redressal Mechanism is one of the important tools for ensuring public services in any governance system. So that the grievances and problems of the general public can be resolved in a transparent and sensitive environment according to the sentiments of the public.The main objective of the present research paper is to analyze the utility of Rajasthan Sampark Portal for redressal of grievances of the general public.Along with this, the implementation of the recommendation made by Second Administrative Reforms Commissionin this regard is also discussed.The main method for the theoretical basis of the paper is to screen and evaluate secondary data sources.

Keywords: *Grievance Redressal, Sampark Portal, Welfare State, Good Governance, Rajasthan Sampark.*

The society is becoming more and more dependent on the political system, which in turn is becoming more and more dependent on the administrative system."

Gerald Caiden1

In a public welfare state, the administrative system has been given the responsibility of providing quality civic services to the general public.In a developing country like India where resources are available in limited quantities, achieving the goals of a welfare state is no less than a challenge for the administration.Explaining the importance of administration, W. B. Donham said, "If our civilization fails, it will be mainly because of a breakdown of administration."2

Despite the imperatives of Indian administration, the reality is that administration suffers from many shortcomings, due to which the general public has to face many problems for getting public services, delays and harassment in providing services create problems and make people dissatisfied.A well-organized grievance redressal mechanism would undoubtedly help in improving the image of the government.

Grievance is a type of dissatisfaction, which needs to be redressed. 'Grievance' as an expression of dissatisfaction made to an organization related to its products, services and process, where a response or resolution is explicitly or implicitly expected.3Grievance Redressal Mechanism is a measure of efficiency and effectiveness of any organization as through it feedback on the functioning of the administration is obtained.

Public relations has always been given importance in the ancient Indian administrative system. The lack of communication gap between the government and the common people is an Obstructs in the proper and effective implementation of public service delivery and consequently made the reforms less effective and less efficient when implemented. Lack of awareness among the citizens about their rights and duties of public administrator also creates problems. In ancient times, kings used to go among the

public and try to understand their problems. The king and officers acting against the public interest were dismissed. Community participation had a special place in public policy making. In present time, Bureaucrats are unaware of the ground reality due to their detachment from the public.

The Department of Administrative Reforms and Public Grievances is the nodal agency of the Government of India for administrative reforms and redressal of public grievances.The Government of India set up the Second Administrative Reforms Commission (ARC) on August 31, 2005 under the chairmanship of Shri Veerappa Moily to prepare a detailed blueprint for revamping the Public Administration System. Second ARC suggests measures to achieve a proactive, responsive, accountable, sustainable and efficient administration for the country at all levels of the government.4

The Second Administrative Reforms Commission in its 12th report has emphasized on the development of an effective public grievance redressal system. The major recommendations made in the report for this are as follows5:

S. No.	Recommendations	Government's Decision	Government's Action	Status of implementation
1.	**Evolving an Effective Public Grievances Redressal System** There is need for a strong and effective internal grievance redressal mechanism in each organization.	Accepted the recommendation	Adequate steps have been taken.	Being implemented
2.	The Union and State Governments should issue directions asking all public authorities to designate public grievance officers on the lines of the Public Information Officers under the RTI Act. These officers should be of adequate seniority and should be delegated commensurate authority.	Recommendation was not accepted.	No action called for.	Not implemented
3.	All grievance petitions received should be satisfactorily disposed of by these officers within thirty days. Non-adherence to the time limit should invite financial penalties.	Recommendation was not accepted.	No action called for.	Not implemented

4.	Each organization should designate an appellate authority and devolve adequate powers upon them including the power to impose fines on the defaulting officers.	Recommendation was not accepted.	No action called for.	Not implemented
5.	Analysis and Identification of Grievance Prone Areas **Government organizations should analyse the complaints received and identify the areas wherein interventions would be required so as to eliminate the underlying causes that lead to public grievances. This exercise should be carried out at regular intervals.**	Accepted the recommendation	Adequate steps have been taken.	Being implemented

An analysis of the implementation of the recommendations of the Commission reveals that the Government of India has not paid any special attention to the recommendations of the Commission on Public Grievance Redressal. But at the same time it cannot be denied that significant efforts have been made by the government to address the grievances of the general public and they are being fulfilled on the ground reality.

Major Efforts Made by the Government of Rajasthan to Address the Grievances of the General Public

The capacity building of administration to enhance public service performance and service delivery is a crucial issue for all government. Remarkable efforts are being made by the Rajasthan government to resolve the grievances of the general public.Removal of Public GrievancesDepartment was established by the State Government in the year 1971 to redress the grievances of the government employees and the general public.

- **The Rajasthan Guaranteed Delivery of Public Services Act, 2011**

The Government of Rajasthan implemented The Rajasthan Guaranteed Delivery of Public Services Act, 2011 on 14 November 2011 to provide for the delivery of certain services within stipulated time limits to the general public. It includes 221 services of 25 departments. This act has been implemented to ensure transparency, sensitivity and accountability in the administrative system.6

- **The Right to Hearing Act, 2012**

"The act in itself is unique and aims to ensure all complaints of the common man with regard to governance are addressed and disposed in a time-bound manner."

Mr. Ashok Gehlot7

The Right to Hearing Act, 2012 was brought by the Government of Rajasthan on 1stAugust 2012 which empowers citizens to have time bound legal remedies for their grievances on government services.It includes 153 services of 18 departments.Along with the Right to Information (RTI) Act, the implementation of these legislations will also ensure administrative accountability and transparency.

- ***Rajasthan Sampark Portal***

Through Rajasthan Sampark, Government of Rajasthan intends to achieve all important aspects of good governance viz. Robust Delivery System, Transparency, Communication, Grievance Redressal and Sensitivity towards citizens.8

Rajasthan Sampark Portal has been started by the Government of Rajasthan to provide quality administrative services to the citizens of the state and for quick resolution of their grievances. The project has been implemented through the Department of IT and Communications. Through this portal, common citizens can easily register complaints of their problems sitting at home. The concerned officers will take immediate action on the complaint and the problem will be resolved. The general public can register complaints about the schemes run by the state government and any kind of administrative problems by calling the helpline 181 of Rajasthan Sampark. The solutions are provided within the stipulated time frame.

Rajasthan Sampark Portal is an innovative effort started by the government of Rajasthan to register the grievances of the general public and solve the problems.It is an online web-enabled system that enables citizens to lodge complaints with the concerned departments.It is providing the following services:

1. Facility to register problems online without attending office.
2. Facility to register complaints free of cost at Rajasthan Sampark Kendras at Panchayat Samiti and District level.
3. Free facility to register complaints and get information through phone at Citizen Call Center (181).
4. Facility to download native application for smartphone holders.9

Rajasthan Sampark Portal is an innovative effort to solve the problems of the people but it needs to be strengthened on the ground of reality.

"Our bureaucracy is dedicated to fulfill its responsibilities, but when a bureaucrat deviates from the duty towards the general public and becomes devoted to any institution or person, then injustice is done to the general public."

Kajod Mal Duriya11

The general public contacts the administration for their day-to-day administrative work and has to face administrative laziness and indolence to perform these tasks. Bribery is taken through administrative officers and middlemen to perform these tasks. The general public has accepted this system of bribery and corruption as a part of their life and adopted it completely. The general public demands reforms in administration in principle but to get their work done, they demand relaxation of rules and laws and resort to bribery. Unless there is a change in the mindset of the general public, it is not possible to get rid of these problems.

The increasing use of an E-governance in the present times has reduced administrative ailments to a great extent. The goal of e-governance is to enhance administrative efficiency and achieve the goal of good governance through modernization of administration and use of information and communication technology (ICT). Over the years ICT has emerged as a means to strengthen the democratic process. In the present times, the use of Internet in the administrative system has not only contributed significantly in ensuring transparency and efficiency in the

administrative process, but has also led to a significant increase in public participation. According to Jitendra Soni, The use of e-governance has reduced administrative problems to a great extent and has accelerated the administrative processes. They further says that, the Rajasthan Sampark Portal has acted as a milestone to take the problems of the general public to the government.11

- ***Jan Sunwai***

Jan sunwai has been arranged by the Redressal of Public Grievances Department for the hearing of the problems and their speedy resolution in a transparent and sensitive environment to the general public.The cases registered on the Rajasthan Sampark portal are also being resolved through Jansunwai. Through this, arrangements have been made to give due respect to public sentiments and to provide a dialogue platform between the general public and the government to listen and solve local problems.

Major Drawbacks and Challenges of Grievance Redressal Mechanism

- There is a lack of awareness of this mechanism among the general public, due to which the aggrieved persons are not able to take their grievances to the government.
- It is observed that in many cases the prescribed time norms for providing services are not followed by the departments.
- Due to the lack of literacy in the state, the general public is unable to understand the intricacies of the grievance redressal mechanism.
- The unavailability of internet and modern equipment in rural areas also hinders its path.
- There is a need to reduce the grievance disposal time and improve the quality of grievance redressal.

Good governance can be established only when administrative deficiencies are removed and administrative mindset is changed. The Good Governance Index, 2021prepared by the Department of Administration Reforms and Public Grievances was launched on 25 December 2021 on the occasion of Good Governance Day.This index measures the status of good governance in the Indian states and union territories, in which Rajasthan has got second rank in Group 'B'. Rajasthan has topped the Other States (Group B) category in Judiciary and Public Safety, Environment & Citizen Centric Governance.10Which indicates better conditions of governance and administration in Rajasthan.

Conclusion

The Government of Rajasthan is constantly striving to bring excellence in administrative service delivery by ensuring transparency in administrative work and reducing citizen grievances. Rajasthan Sampark Portal enables the administration to provide quality citizen service using Information and Communication Technology for time bound resolution of the problems. The grievance redressal mechanism should be further strengthened by adopting the suggestions made by the Second Administrative Reforms Commission to overcome the existing shortcomings in this system.

References

1. *Laxmikanth, M. 2019. Public Administration.New Delhi: Tata McGraw-Hill Education. p.9.*
2. *Donham, W. B. 1936. The Theory and Practice of Administration. Harvard Business Review, Vol. 14. p.409.*
3. *Citizen Centric Administration - The Heart of Governance, Second ARC, Twelfth Report, Department of Administrative Reforms and Public Grievances, Ministry of Personnel, Public Grievances & Pensions, GOI, February 2009. p.79.*
4. *Ibid., p.1.*
5. *https://darpg.gov.in/sites/default/files/*

decision12.pdf

6. *http://rajpanchayat.rajasthan.gov.in/Portals/_default/RGDPS_Act_2.pdf*
7. *http://www.rtifoundationofindia.com/right-hearing-act-2012-rajasthan-better-government-2024#.YiQsCnpBwVQ*
8. *https://sampark.rajasthan.gov.in/*
9. *https://sampark.rajasthan.gov.in/*
10. *https://pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=1785140#:~:text=GGI%202021%20says%20that%20in%20the%20Union%20Territories%20category%2C%20Delhi,Utilities%20and%20Social%20Welfare%20%26%20Development.*
11. *Kajod Mal Duriya (RAS) posted as Registrar-University of Rajasthan, Jaipur.*
12. *Jitendra Soni (AEN) posted as Assistant Engineer - Municipal Council Pali.*

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.com

Individual Subscription Form

Name .....

Designation .....

Name of Organization .....

.....

Address .....

.....

District .....

State

.....

Pin .....

Tel. No. (R) .....

Mobile .....

e-mail .....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April, July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	**DR S N TAILOR FOUNDATION** (A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR) Union Bank of India, Beawar -305901 UB A/C No. 0326321010000001 **IFS Code :** UBIN0932639 • **MICR Code :** 305026014 **Account Type :** Current • **Subscription Fees :** 2000 Rs.

Membership No. ..... Date .....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I.....

hereby declared that the paper entitled'.....

.....'is unpublished original paper which is not sent any where for publication.

This paper is prepared by me/jointly with.....

.....which is exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature .....

Name .....

Designation .....

Official Address .....

.....

Residential Address .....

.....

.....

Phone No. ..... Pin No. .....

e-mail Address .....

Shodh Shree

(A Peer Reviewed International Referred Journal)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

Published by Dr. S. N. Tailor Foundation

Head Office : "SATYAM" Munot Nagar, Beawar - 305901

Branch Office : 54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

E-mail : shodhshree@gmail.com • Web : www.shodhshree.com

Institutional Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir
I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year	☐ 2 years	☐ 3 years
(Rs. 1200/-)	(Rs. 2000/-)	(Rs. 2800 /-)

I am sending here with Rs..... through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution .....

.....

Address.....

..... Pin Code.....

Phone/Mobile No. .....

E-mail ID .....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. _____ Date _____

Frequency : Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly)
i.e. January, April, July, October.

Mode of Payment : Subscription fees can be deposit through online Banking.

Bank Details : Cheque / DD must be in Favor of DR S N TAILOR FOUNDATION
(A TRIBUTE OF LATE SHRI PARAS HEMENDRA G TAILOR)
Union Bank of India, Beawar - 305901
UB A/C No. 0326321010000001 • Account Type : Current
IFS Code : UBIN0932639 • MICR Code : 305026014

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.

2 All manuscripts must be accompanied by the brief abstract, Abstract including Keywords must not exceed more then 150 words.

3. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.

4. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.

5. Maximum word limit of research paper up to 3000 words.

6. Special care must be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper, otherwise it will not be accepted for publication.

7. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.

8. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.

9. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

राजस्थान इतिहास कांग्रेस के 36 वें अधिवेशन में अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका शोध श्री के 41 वे अंक का विमोचन करते हुए बाएं से दाएं- डॉ.रविन्द्र टेलर (संपादक), प्रो.मीना गौड़ (अध्यक्ष, राजस्थान इतिहास कांग्रेस), प्रो.के.एस.गुप्ता (विश्व विख्यात इतिहासकार), प्रो.एस.पी.व्यास (सचिव, राजस्थान इतिहास कांग्रेस), डॉ.वीरेन्द्र शर्मा (प्रधान संपादक)

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – डॉ. वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54–ए, जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर–302018 मो. 9460124401